Bachelor of Arts

(IInd Semester)

POLS-103

POLITICAL SCIENCE

Directorate of Distance Education
Guru Jambheshwar University of Science & Technology, HISAR-125001

CONTENTS

No.	Title	Author	Edited/Updated by	Page
1.	संघीय: भारतीय संघवाद की प्रकृति और विशेषताएं, केंद्र राज्य संबंध।	Dr. Parveen Sharma	Dr. Parveen Sharma	3
2	राज्य स्वायत्तता की मांग, भारतीय संघवाद में उभरती प्रवृत्तियाँ, नीति आयोग	Dr. Parveen Sharma	Dr. Parveen Sharma	31
3	चुनाव आयोग चुनावी प्रक्रिया और इसके दोष और मतदान व्यवहार	Dr. Parveen Sharma	Dr. Parveen Sharma	62
4	चुनावी सुधार, दल-बदल की समस्या	Dr. Parveen Sharma	Dr. Parveen Sharma	91
5	गठबंधन राजनीति: आधार, प्रकृति और भारतीय राजनीति पर प्रभाव, पार्टी प्रणाली के दोष	Dr. Parveen Sharma	Dr. Parveen Sharma	123
6	राजनीतिक दल और दल–प्रणालियां	Dr. Shakuntla Devi	Dr. Parveen Sharma	153
7.	भारत में जाति, धर्म, भाषा, क्षेत्रवाद और जातीयता की भूमिका	Dr. Shakuntla Devi	Dr. Parveen Sharma	181
8	आरक्षण की राजनीति, उभरती प्रवृत्तियाँ और भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के समक्ष चुनौतियाँ	Dr. Parveen Sharma	Dr. Parveen Sharma	215

Subject: राजनीति विज्ञान	
Course Code: POLS.103	Author: Dr. Parveen Sharma
Lesson No.: 1	Vetter: Updated by:
अध्याय की संरचना- 1-संघीय: भारतीय संघवाद की प्रकृति और विशेषताएं, केंद्र राज्य संबंध। (Federal: Nature and features of Indian federalism, Centre-State relations)	

1-1-अधिगम के उद्देश्य (Learning Objectives)

1-2-परिचय (Introduction)

1-3-विषय वास्तु का प्रस्तुतिकरण (Presentation of Contents)

1-3-1-संघात्मक सरकार का अर्थ (Meaning of Federal Government)

1-3-2-संघात्मक सरकार की परिभाषाएँ (Definitions of Federal Government)

1-3-3-संघात्मक सरकार के लक्षण (Features of Federal Government)

1-3-4-भारतीय संघवाद का स्वरूप (Nature of Indian Federalism)

1-3-4-1 भारतीय संविधान के एकात्मक लक्षण या विशेषताएँ (Unitary Features of Indian Constitution)

1-3-4-2 भारतीय संघवाद की विशेषताएँ (Characteristics of Indian Federalism)

1-3-5 भारतीय संघवाद की कार्यप्रणाली (Working of Indian Federalism)

1-3-6 भारत में संघवाद का महत्त्व (Importance of federalism in India)

1-4-विषय वास्तु का पुन: प्रस्तुतिकरण (Presentation of further Contents)

1-4-1- केन्द्र-राज्य के सम्बन्ध (Centre-State Relations)

1-4-1-1-केन्द्र-राज्य के विधायी संबंध (अनुच्छेद245-255) (Centre-State Legislative Relations)

1-4-1-2-केन्द्र-राज्य के प्रशासनिक संबंध (अनुच्छेद256-263) (Centre-State Administrative Relations)

1-4-1-3 केन्द्र-राज्य के वित्तीय संबंध (अनुच्छेद268-293) (Centre-State financial relations)

1-4-2-केंद्र व राज्यों के बीच तनाव के कारण (Due to the tension between the center and the states)

1-5-स्वयं प्रगति जाँच (Check your progress)

1-6-सारांश (Summary)

1-7-सूचक शब्द (Key Words)

1-8-स्वयं समीक्षा हेतु प्रश्न (Self-Assessment Questions)

1-9-उतर-स्वयं प्रगति जाँच (Answer to check your progress)

1-10. संदर्भ ग्रन्थ/निर्देशित पुस्तके (References/Suggested Readings)

1-1-अधिगम के उद्देशय **(Learning Objectives)**

- विद्यार्थियों को केन्द्र-राज्य के सम्बन्धों से अवगत करवाना।

- विद्यार्थियों को संघात्मक सरकार के अर्थ है, संघात्मक लक्षणों से अवगत करवाना।
- भारतीय संघवाद की विशेषताओं से अवगत करवाना।

1-2-परिचय (Introduction)

आधुनिक युग में प्रजातन्त्र को शासन का सबसे अधिक लोकप्रिय स्वरूप माना जाता है। प्राचीन समय में नगर-राज्य होते थे, जिनकी जनसंख्या व उनका क्षेत्र सीमित होता था। वर्तमान काल में राज्यों की जनसंख्या और कार्य-क्षेत्र इतना बढ़ गया है कि उन्हें राष्ट्रीय राज्य (National State) कहा जाने लगा है। इन राष्ट्र-राज्यों का प्रशासन एक-स्थान से चलाना कठिन कार्य है। इसलिए शासन सुविधा की दृष्टि से राज्य को कई इकाइयों में बाँट दिया जाता है। इन इकाइयों में अलग-अलग शासन-व्यवस्था स्थापित कर दी जाती है तथा उन्हें स्थानीय मामलों का प्रबन्ध करने की शकितयाँ या अधिकार प्रदान कर दिए जाते हैं और राष्ट्रीय स्तर के मामलों का प्रबन्ध केन्द्रीय या राष्ट्रीय सरकार को सौंप दिया जाता है। इन इकाइयों की सरकारों व राष्ट्रीय सरकार में सम्बन्धों के आधार पर शासन-व्यवस्था को दो भागों,एकात्मक व संघात्मक में बाँटा जाता है।

भारतीय संविधान के अनुसार भारत में संघीय शासन-प्रणाली की व्यवस्था की गई है। यद्यपि संविधान में 'संघ' (Federation) शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है। संविधान में भारत को 'राज्यों का संघ' (Union of States) कहा गया है।

1-3-विषय वस्तु का प्रस्तुतिकरण (Presentation of Contents)

1-3-1-संघात्मक सरकार का अर्थ (Meaning of Federal Government)

संघीय सरकार उसे कहते हैं जहाँ केन्द्र तथा राज्यों में शक्तियों का विभाजन होता है। केन्द्र व राज्य सरकारें अपने-अपने क्षेत्र में स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करती हैं। सत्ता का विकेन्द्रीयकरण संविधान द्वारा

निश्चित किया जाता है। केन्द्र व राज्यों को संविधान से शक्तियाँ प्राप्त होती हैं। संघ जिसे अंग्रेजी में 'फेडरेशन' (Federation) अथवा 'फेडरल' (Federal) कहा जाता है, जो लैटिन भाषा के एक शब्द 'फोडस' (Foedus) से बना है, जिसका अर्थ है 'सन्धि या समझौता' इस प्रकार संघ सरकार कुछ स्वतन्त्र राज्यों का एक ऐसा स्थायी संगठन है जिसकी स्थापना कुछ सामान्य उद्देश्यों की पूर्ति के लिए एक समझौते के आधार पर की जाती है। जिसमे एक केन्द्रीय सरकार संगठित करते हैं जो कुछ उद्देश्यों की पूर्ति करते हैं तथा शेष उद्देश्यों की पूर्ति वे स्वयं करते हैं। इस प्रकार संघात्मक शासन की स्थापना हो जाती है।

केंद्र व इकाइयों के सम्बन्धों के आधार पर शासन-व्यवस्था को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। जब इकाइयाँ अपनी शक्तियों के लिए केन्द्र पर निर्भर करती हैं और केन्द्र से ही शक्तियाँ प्राप्त करती हैं तो उसे एकात्मक शासन-व्यवस्था कहा जाता है। इसके विपरीत जब केन्द्र व इकाइयों में शक्तियाँ संविधान द्वारा बँटी होती हैं तो उसे संघात्मक शासन-व्यवस्था कहा जाता है। संघात्मक शासन-व्यवस्था के निर्माण के दो पक्ष हैं-एकीकरण व पृथक्करण अर्थात संघात्मक सरकार का निर्माण दो आधारों पर हो सकता है। प्रथम, एकीकरण में जब कुछ छोटे- बड़े प्रभुसत्ता-सम्पन्न राज्य मिलकर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए समझौते या संधि द्वारा एक संघ का निर्माण करते हैं तो संघात्मक शासन-व्यवस्था की स्थापना होती है; जैसे संयक्त राज्य अमेरिका में इसी तरह संघ सरकार की स्थापना हुई। ऐसी संघात्मक सरकार में सम्मिलित राज्यों की प्रभुसत्ता समाप्त हो जाती है और वे सभी एकीकरण द्वारा स्थापित संघ सरकार की प्रभुसत्ता को ही स्वीकार करते हैं। इसीलिए ऐसी संघ सरकार को 'अभिकेन्द्री संघ' (Centripetal Federation) कहा जाता है। ऐसी संघ व्यवस्था में संघ एवं उसकी इकाइयों या राज्या में शक्तियों का विभाजन एक सर्वोच्च संविधान द्वारा किया जाता है। दूसरे, प्रथक्करण में जब एक बड़े राज्य को शासन सुविधा की दृष्टि से या अन्य सामाजिक व आर्थिक

आवश्यकताओं की पूर्ति की दृष्टि से अनेक राजनीतिक इकाइयों में विभाजित कर दिया जाता है और संविधान में केन्द्र व इकाइयों की शक्तियों का वर्णन कर दिया जाता है: जैसे भारत में स्थापित संघ व्यवस्था ऐसी संघीय व्यवस्था का उपयुक्त उदाहरण है। ऐसी संघ व्यवस्था को 'अपकेन्द्री संघ' (Centrifugal Federation) भी कहा जाता है।

1-3-2-संघात्मक सरकार की परिभाषाएँ (Definitions of Federal Government): -संघात्मक सरकार को भिन्न-भिन्न विद्वानों ने विभिन्न ढंगों से परिभाषित करने का प्रयत्न किया है। कुछ मुख्य परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं: -

- मॉण्टेस्क्यू (Montesquieu) के शब्दों में, “संघात्मक सरकार एक ऐसा समझौता है जहाँ बहुत-से एक-जैसे राज्य बड़े राज्य के सदस्य बनने के लिए सहमत हो।"
- हेमिल्टन (Hamilton) का कथन है, "संघ राज्य, राज्यों का एक ऐसा समुदाय है जो एक नवीन राज्य की स्थापना करता है।
- गार्नर (Garner) का कथन है, "संघ सरकार एक ऐसी प्रणाली है जिसमें केन्द्रीय तथा स्थानीय सरकारें एक ही प्रभुसत्ता के अधीन होती हैं। ये सरकारें संविधान द्वारा अयवा संसदीय कानून द्वारा निर्धारित अपने-अपने क्षेत्रों में सर्वोच्च होती हैं।
- डॉ०फाइनर (Dr. Finer) के शब्दों में, “संघात्मक राज्य वह राज्य है जिसमें अधिकार और शक्ति का कुछ भाग स्यानीय राज्यों को दिया जाए, दूसरा भाग संघात्मक सरकार को दिया जाए जो कि अपने स्यानीय राज्यों की इच्छा से बनी होती है।"
- जैलीनेक (Jellinek) के अनुसार, "संघात्मक राज्य कई राज्यों के मेल से बना हुआ एक प्रभुसत्ता सम्पन्न राज्य है।"

- प्रो० डायसी (Prof. Dicey) के अनुसार, "यह एक राजनीतिक ढाँचा है जिसका उद्देश्य राष्ट्रीय एकता और राज्यों के अधिकारों की सुरक्षा के बीच मेल बनाए रखना है।"
- के0सी0 व्हीयर के अनुसार-**" संघ** शासन का अर्थ एक ऐसी पद्धति है जिसके सामान्य और प्रादेशिक शासकों में सामंजस्य होते हुए भी वे अपने क्षेत्र में स्वतन्त्र होते हैं।"
- सी0एफ0 स्ट्रांग के अनुसार-" संघ राज्य एक ऐसी राजनीतिक योजना है जिसका उद्देश्य राज्यों के अधिकारों का राष्ट्रीय एकता तथा शक्ति के साथ सामंजस्य स्थापित करता है।"
- डेनियल जे0 एलाजारा के अनुसार-" संघीय व्यवस्था अलग-अलग राजनीतिक इकाइयों को एक ऐसी बृहत्तर राजनीतिक व्यवस्था में संगठित व एकताबद्ध करती है जिसमें हर राजनीतिक इकाई अपनी आधारभूत राजनीतिक अखण्डता से युक्त रहती है।"
- कोरी के अनुसार-" संघवाद सरकार एक ऐसा दोहरापन है जो विविधता के साथ एकता का समन्वय करने की दृष्टि से शक्तियों के प्रादेशिक व प्रकार्यात्मक विभाजन पर आधारित होता है।" नाथन के अनुसार-" संघात्मक राज्य छोटे छोटे राज्यों का एक योग होता है जिसमें प्रत्येक अपनी पृथक सत्ता का रखते हुए परिभाषित समान उद्देश्य के लिए संघ के रूप में एक दूसरे से मिलते हैं जो कम-से-कम सैद्धान्तिक रूप में विघटनशील नहीं हैं।"

उपर्युक्त परिभाषाओं के विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकलता है कि संघीय व्यवस्था ऐसे राज्यों का संघ है जिनमें संघ बनाने की इच्छा है। संघ का निर्माण करते ही वे अपनी-अपनी सर्वोच्च सत्ता खो देते हैं। राज्य सरकारों की अलग अलग विधायिका, कार्यपालिका व न्यायपालिका होती हैं। ऐसी सरकार में संविधान ही सर्वोच्च होता है। दोनों सरकारें को संविधान की मर्यादाओं के अन्तर्गत ही देश का शासन चलाना होता है। इस प्रकार संघात्मक शासन वह होता है जहां संविधान के द्वारा शक्तियाँ केन्द्र और

राज्यों में बंटी होती हैं और दोनों अपने कार्यों में स्वतन्त्र होते हुए भी संघात्मक शासन की सफलता के लिए सह-अस्तित्व की भावना के आधार पर कार्य करते हैं।

1-3-3-संघात्मक सरकार के लक्षण (Features of Federal Government)

संघात्मक सरकार के आवश्यक तत्त्व अथवा लक्षण निम्नलिखित हैं: -

(i) संघात्मक सरकार में शक्तियों का बंटवारा केन्द्रीय व प्रान्तीय सरकारों के बीच में होता है।

(ii) संघात्मक सरकार में सम्प्रभुसत्तात्मक शक्तियां राज्य या संविधान के पास ही रहती हैं।

(iii) संघात्मक सरकार में दोहरी शासन-व्यवस्था होती है। इसमें प्रान्तीय व केन्दीय सरकारें अपने-अपने क्षेत्रों में स्वतन्त्र होते हुए भी संघात्मक शासन को सफल बनाने के लिए सह अस्तित्व के आधार पर ही कार्य करती है।

(iv) संघात्मक शासन में संविधान लिखित, कठोर व सर्वोच्च होता है।

(v) संघात्मक सरकार दोहरी नागरिकता के सिद्धान्त पर आधारित होती है।

(vi) संघात्मक सरकार राष्ट्रीय एकता और प्रान्तों की स्वतन्त्रता का सामंजस्य स्थापित करती है।संघात्मक सरकार में इकाइयों को संघ से पृथक होने की स्वतन्त्रता नहीं होती है।

(vii) संघात्मक सरकार द्विसदनीय विधानमण्डल की व्यवस्था करती है।

(viii) संघात्मक शासन व्यवस्था में न्यायपालिका स्वतन्त्र व सर्वोच्च होती है।

(ix) संघात्मक शासन में शिक्त्यों का स्पष्ट विभाजन होता है। इसमें राष्ट्रीय महत्व के विषय तो केन्द्रीय सरकार के पास तथा कम महत्व के विषय प्रांतीय सरकारों के पास होते हैं।

(x) संघात्मक सरकार स्वयं उत्पन्न नहीं होती, बल्कि उसका निर्माण संविधानिक प्रावधानों के तहत किया जाता है।

(xi)संघात्मक शासन में केन्द्र व इकाइयों के बीच समन्वय की भावना का पाया जाना ही संघात्मक शासन की सफलता का आधार है।

1-3-4- भारतीय संघवाद का स्वरूप [Nature of Indian Federalism]

भारतीय संविधान के अनसार भारत में संघीय शासन-प्रणाली की व्यवस्था की गई है। यद्धपि संविधान में 'संघ' (Federation) शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है, तथापि संविधान में भारत को 'राज्यों का संघ' (Union of States) कहा गया है। भारत एक संघ है यह संघ राज्यों के द्वारा संघ में शामिल होने के लिए किसी समझौते का परिणाम नहीं है और किसी भी राज्य को इससे अलग होने का अधिकार नहीं है। यद्यपि देश तथा जनता को शासन की सविधा के लिए विभिन्न राज्यों में बांटा गया है, परन्तु देश अखण्ड तथा एक पूर्ण इकाई है।

भारतीय संविधान संघात्मक शासन की स्थापना करता है अथवा एकात्मक शासन की। डी०एन० बैनर्जी का विचार है कि “भारतीय संविधान का ढाँचा संघाय है, परन्तु उसका झुकाव एकात्मक की ओर है।" डी०डी० बसु के अनसार. “भारत का संविधान न तो पूर्ण रूप से एकात्मक है और न ही पूर्ण रूप से संघात्मक है, बल्कि दोनों का सम्मिश्रण है। नार्मन डी० पामर के अनुसार, “भारतीय गणतन्त्र एक संघ है तथा उसकी अपनी विशेषताएँ हैं, जिन्होंने संघीय स्वरूप को अपने ढंग से ढाला है।"

इस प्रकार भारतीय संघ के स्वरूप के बारे में दो विचार सामने आते हैं। प्रथम, भारतीय संविधान पूर्ण रूप से संघात्मक है और दूसरा, भारत का संविधान संघात्मक तथा एकात्मक, दोनों का ही सम्मिश्रण है। हमारे संविधान के निर्माताओं ने संविधान में ऐसी व्यवस्था की, जिसमें राज्यों की उचित स्वायत्तता के साथ-साथ राष्ट्र की एकता भी बनी रहे। इसी कारण से, जहाँ संविधान में संघीय तत्त्व मौजूद हैं, वहाँ कुछ एकात्मक तत्त्व भी पाए जाते हैं।

1-3-4-1-भारतीय संघवाद की विशेषताएँ (Characteristics of Indian Federalism)

यद्यपि हमारे संविधान में 'संघ' (Federation) शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है, परन्तु इसमें संघीय सरकार के सभी लक्षण मौजुद हैं। ये लक्षण निम्नलिखित हैं

(i) **लिखित संविधान (Written Constitution)- -** संघ राज्य कई राज्यों के बीच एक समझौते का परिणाम होता है, इसलिए किसी भी संघ का सबसे प्रमुख लक्षण होता है। कि उनके पास एक लिखित संविधान हो जिससे कि जरूरत पड़ने पर केन्द्र तथा राज्य सरकार मार्ग दर्शन प्राप्त कर सकें। भारतीय संविधान एक लिखित संविधान है और दुनिया का सबसे विस्तृत संविधान है। इसमें 395 अनुच्छेद, 12 अनसचियाँ तथा 22 अध्याय हैं। संविधान में शासन के सभी अंगों तथा केन्द्र एवं राज्यों की शक्तियों का बड़ा ही विस्तृत तथा स्पष्ट रूप से वर्णन किया गया है। ऐसी स्थिति में यदि केंन्द्र एवं राज्यों में शक्तियों के प्रयोग सम्बन्धी किसी भी प्रकार का विवाद होता है तो उन्हें संविधान के अनुसार बड़ी आसानी से सुलझाया जा सकता है।

(ii) **कठोर संविधान (Rigid Constitution) -**संघीय संविधान केवल लिखित ही नहीं है बल्कि कठोर भी होता है। जिससे कोई भी इकाई मनमाने ढंग से इसमें परिवर्तन न कर सके। संघीय सरकार के अनुरूप भारतीय संविधान को कठोर स्वरूप भी दिया गया है क्योंकि संविधान का अधिकतर भाग ऐसा है जिसमें संघीय संसद अपनी इच्छानुसार अपने साधारण बहुमत से संशोधन नहीं कर सकती। संविधान में संशोधन करने के लिए एक विशेष विधि अपनाई जाती है. ताकि केन्द्र और राज्य दोनों की सहमति से संशोधन किया जा सके ।संविधान में महत्वपूर्ण संशोधनों के लिए संसद की स्वीकृति के साथ-साथ कम से कम आधे राज्यों के विधान मण्डलों की अनुमति भी आवश्यक हैं।

(iii) **शक्तियों का विभाजन (Distribution of Powers)-**संघात्मक सरकार में केन्द्रीय महत्त्व के विषय केन्द्रीय सरकार को तथा प्रान्तीय और स्थानीय महत्त्व के विषय राज्य सरकारों को सौंप दिए जाते

हैं। दोनों सरकारें अपने-अपने क्षेत्र में कानून बनाती तथा प्रशासन चलाती हैं। वे एक-दूसरे के मामले में हस्तक्षेप नहीं करतीं। हमारे संविधान में शक्तियों का स्पष्ट विभाजन है विधायी शक्तियों को तीन सूचियों में बांटा गया है- संघसूची, राज्य सूची तथा समवर्ती सूची।

(iv) **उच्चतम न्यायालय की विशेष स्थिति (Independent and Supreme Judiciary)-** संघ के अन्य लक्षणों में एक अन्य महत्वपूर्ण लक्षण है कि उसके पास् एक स्वतंत्र निष्पक्ष न्यायपालिका। संघ सरकार में यद्यपि केन्द्र व राज्यों में अधिकारों का स्पष्ट विभाजन किया जाता है फिर भी उनमें कई बातों में विवाद होना स्वाभाविक है। यदि केन्द्र अथवा राज्य सरकार द्वारा पारित कोई कानून संविधान के किसी किसी प्रावधान का उल्लंधन करता है तो सर्वोच्च न्यायालय उसे असंवैधानिक धोषित कर सकता है।

(v) **न्यायपालिका की सर्वोच्चता (Supremacy of Judiciary)-** भारतीय संविधान में संघीय सरकार की अन्य विशेषता, न्यायपालिका की सर्वोच्चता भी मौजूद है। सर्वोच्च न्यायालय को संविधान की व्याख्या करने तथा उसके रक्षक के रूप में कार्य करने का अधिकार प्राप्त है। वह इस बात को देखता है कि संघीय सरकार तथा राज्य सरकारें अपने-अपने अधिकार क्षेत्र में रहकर कार्य करें और दूसरे के क्षेत्र में हस्तक्षेप न करें। यदि संघीय सरकार तथा कोई राज्य सरकार संविधान का उल्लंधन कर कोई कानून पास करती है अथवा कोई अन्य कार्य करती है, तो सर्वोच्च न्यायालय को उसे अवैध घोषित करने तथा रद्द करने का अधिकार प्राप्त है। उसके निर्णय अंतिम होते हैं जिन्हें संघीय सरकार तथा राज्य सरकार दोनों को मानना पड़ता है

(vi) **द्विसदनीय विधानपालिका (Bi-cameral Legislature)-**संघात्मक सरकार में दो सदनीय विधानमण्डल की आवश्यकता पड़ती है। विधानमण्डल का निम्न सदन सारे राष्ट्र की जनता का तथा उच्च सदन संघ की इकाइयों का प्रतिनिधित्व करता है। भारतीय संघात्मक सरकार के दो सदन

हैं। निचला सदन अर्थात् 'लोक सभा (House of the People) समस्त राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है और ऊपरी सदन अर्थात 'राज्यसभा' (Council of States) सघ की विभिन्न इकाइयों का प्रतिनिधित्व करता है।

(vii) **संविधान की सर्वोच्चता (Supremacy of the Constitution)-**संघात्मक शासन-प्रणाली में संविधान की सर्वोच्चता स्थापित की जाती है। इसका अर्थ है कि संविधान को देश का सर्वोच्च कानून घोषित किया जाता है और इसके विरुद्ध कार्य करने और कानून बनाने का अधिकार किसी को भी नहीं होता।

(viii) **दोहरी शासन-प्रणाली (Dual Administration System)-**संघात्मक सरकार में दोहरा शासन प्रबन्ध होता है। एक केन्द्रीय शासन तथा दूसरा स्थानीय अथवा प्रान्तीय शासन। संघ तथा प्रान्तों के अधिकार संविधान द्वारा निश्चित होते हैं। दोनों सरकारें अपने-अपने क्षेत्र में स्वतन्त्र होती हैं। भारतीय संविधान दोहरी शासन व्यवस्वा की स्थापना करता है, जिसके केन्द्र में संघीय और परिथि पर राज्यों की सरकारें हैं। दोनों को संविधान के द्वारा अपने-अपने क्षेत्रों में सार्वभौम शक्तियाँ प्रदान की गई हैं।

1-3-4-2 भारतीय संविधान के एकात्मक लक्षण या विशेषताएँ (Unitary Features of Indian Constitution)

भारतीय संविधान में संघात्मक शासन-प्रणाली के गणों के साथ-साथ एकात्मक शासन-प्रणाली के गुण भी विद्यमान हैं। भारतीय संविधान में निम्नलिखित एकात्मक सरकार की विशेषताएँ पाई जाती हैं

(i) **शक्तियों का विभाजन केन्द्र के पक्ष में (Division of Powers in the favour of Centre)-** भारतीय संविधान में केन्द्र तथा राज्यों के बीच शक्तियों का जो विभाजन किया गया है, उसमें केन्द्रीय सरकार को बहत अधिक शक्तिशाली बनाया गया है सभी महत्त्वपूर्ण विषय संघीय-सूची में

शामिल किए गए हैं समवर्ती सूची में दिए गए 52 विषयों (मूलतः 47) पर यद्यपि संसद तथा राज्य विधानमण्डल दोनों को ही कानून बनाने का अधिकार दिया गया है, परन्तु गतिरोध की स्थिति में राज्य विधानमण्डल का कानून उस सीमा तक रद्द समझा जाएगा जिस सीमा तक वह कानून केन्द्र संसद द्वारा बनाए गए कानून से टकराता है।

(ii) **राष्ट्रपति की संकटकालीन शक्तियाँ (Emergency Powers of the President) -**संविधान के अनुच्छेद 352 के अनुसार राष्ट्रपति को तीन स्थितियों में संकटकालीन घोषणा करने का अधिकार प्राप्त है। यदि भारत पर कोई अन्य देश आक्रमण कर दे अथवा देश में कोई सशस्त्र विद्रोह (Armed Rebellion) हो जाए अथवा आन्तरिक शान्ति भंग हो जाए तो राष्ट्रपति देश में संकटकालीन स्थिति की घोषणा कर सकता है। ऐसी अवस्था में वह राज्यों की समस्त स्वायत्तता समाप्त हो जाती है और सरकार का संघीय रूप एकात्मक में बदल जाता है। राष्टपति संविधान के अनुच्छेद 356 के अनुसार दूसरी प्रकार की संकटकालीन घोषणा उस समय कर सकता है जब उसे राज्य के गवर्नर की रिपोर्ट पर अथवा किसी अन्य प्रकार से यह विश्वास हो जाए उस राज्य के शासन को संविधान के अनुच्छेदों के अनुसार चलाना असम्भव हो गया है। राष्ट्रपति की ऐसी घोषणा के पश्चात उस राज्य का मन्त्रिमण्डल तथा विधानसभा भंग हो जाती है और वहाँ पर राष्ट्रपति शासन लागू हो जाता है। राष्ट्रपति द्वारा संविधान के अनुच्छेद 360 के अनसार. तीसरी प्रकार की संकटकालीन घोषणा उस समय की जा सकता जब देश पर वित्तीय सकट आ जाए अर्थात देश की वित्तीय साख खतरे में हो। राष्ट्रपति द्वारा संकटकालीन घोषणा करने पर शासन की शकितयाँ संधीय सरकार के हाथों में केन्द्रित हो जाती हैं, जो कि एकात्मक सरकार का ही लक्षण है।

(iii) **साधारण स्थितियों में भी संसद को राज्य सूची में दिए गए विषय पर कानून बनाने का अधिकार-** अनुच्छेद 249 के अधीन यदि राज्यसभा अपने उपस्थित तथा मत देने वाले सदस्यों के 2/3 बहुमत से यह प्रस्ताव पास कर दे कि राज्य सूची में दिया गया कोई भी विषय अब राष्ट्रीय महत्त्व का बन गया है और उस पर संघीय संसद द्वारा कानून बनाना सारे राष्ट्र के लिए हितकारी होगा, तो संसद को उस विषय पर कानून बनाने का अधिकार मिल जाता है। राज्य सूची में अंकित विषय भी केन्द्र के अधिकार क्षेत्र से पूर्णतया बाहर नहीं हैं।

(iv) **राज्यों के राज्यपाल की राष्ट्रपति द्वारा नियुक्ति (Appointment of State Governors by the President)-**राज्यों के राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है और वह संविधान के अनुच्छेद 156 के अनुसार, राष्ट्रपति के प्रसाद-पर्यन्त अपने पद पर कायम रहता है। राष्ट्रपति अपनी इच्छानुसार जब भी चाहे, किसी भी गवर्नर को पद से हटा सकता है।भारत में राज्यपालों की नियुक्ति एवं पदमुक्ति पर केन्द्र का नियन्त्रण भारत को एकात्मकता की ओर ले जाता है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति द्वारा संकटकालीन स्थिति की घोषणा करने पर वह राष्ट्रपति के एजेण्ट के रूप में कार्य करता है। इस स्थिति में भी राष्ट्रपति को राज्यों के प्रशासन पर नियन्त्रण रखने का अवसर मिल जाता है जिसके परिणामस्वरूप केन्द्र की स्थिति सशक्त बन जाती है।

(v) **राज्यों की सीमाओं में परिवर्तन (Changes in the Boundaries of the States)-**संविधान के अनुसार संघीय संसद को, कानून पास करके राज्यों की वर्तमान सीमाओं में परिवर्तन करने का अधिकार दिया गया है। वह इस प्रकार से किसी भी राज्य के क्षेत्रफल को बढ़ा अथवा घटा सकती है।

(vi) **आर्थिक दृष्टि से राज्यों का केन्द्र पर निर्भर होना (Financial Dependence of the States on the Centre)-** राज्यों के अपने आर्थिक साधन पर्याप्त नहीं है. इसलिए राज्यों को केन्द्र पर निर्भर

रहना पड़ता है। केन्द्र के द्‌वारा राज्यों को विभिन्न प्रकार के अनुदान दिए जाते हैं। वितीय क्षेत्र में आत्मनिर्भर न होने के कारण राज्यों की अपनी सत्ता सीमित हो जाती है ।

(vii) **नीति आयोग पर केन्द्र का प्रभुत्व (Dominance of Centre on NITI)-** नीति आयोग पर भी केन्द्र का ही प्रभुत्व है। नीति आयोग का अध्यक्ष भी योजना आयोग की तरह प्रधानमन्त्री होगा तथा उपाध्यक्ष की नियुक्ति भी प्रधानमन्त्री करता है। इसके अतिरिक्त दो पूर्णकालिक सदस्यों की नियुक्ति भी प्रधानमन्त्री द्‌वारा की जाती है। समय- समय पर विशिष्ट सदस्यों को भी प्रधानमन्त्री द्‌वारा ही आमंत्रित किया जाता है। पदेन सदस्यों में भी केन्द्रीय मन्त्री ही सम्मिलित होते हैं। नीति आयोग में उल्लेखित प्रशासनिक परिषद में राज्यों के मख्यमन्त्री सदस्य होंगे परन्तु इसकी अध्यक्षता प्रधानमन्त्री द्‌वारा की जाएगी । इसके अतिरिक्त विशिष्ट क्षेत्रीय परिषदों का गठन भी प्रधानमन्त्री द्‌वारा ही किया जाएगा। इस प्रकार नीति आयोग में केन्द्र का ही प्रभत्व बना हआ है जो भारतीय शासन को एकात्मकता की ओर ले जाता है।

(viii) **राज्यपाल राज्य विधानमण्डल के द्‌वारा पास किए गए बिल को राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए रोक सकता है** (Governor has the power to withhold a particular Bill for the approval of the President)- विधानमण्डल द्‌वारा पास किए गए कुछ बिलों को राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए सुरक्षित रख सकता राज्यों के विधेयकों के विरुद्ध ऐसी शक्ति का प्रयोग ही केन्द्र सरकार को अधिक शक्तिशाली बनाता है।

(ix)**संघीय सशस्त्र सेनाओं को राज्य में भेजना(Deployment of Central Armed Forces in the State)**-सामान्यतया केन्द्र राज्यों में सशस्त्र सेनाओं को राज्यों की प्रार्थना पर ही भेजता है। परन्तु केन्द्र राज्यों के द्‌वारा प्रार्थना किए बिना भी राज्यों मे सशस्त्र सेनाएँ भेज सकता है। इस तरह केन्द्र सरकार राज्यों के अनुरोध के बिना भी केन्द्रीय संपत्ति की सुरक्षा के नाम पर राज्यों में

अनावश्यक हस्तक्षेप एवं प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयास कर सकती है। ऐसी स्थिति केन्द्र को राज्यों पर आधिपत्य स्थापित करने वाली बनाती है।

(x) **एकीकृत न्यायपालिका (Intergrated Judiciary)** भारतीय संविधान में दूसरे संधीय संविधानों के विपरीत दोहरी व्यवस्था की अपेक्षा एकीकत या इकहरी न्यायपालिका की व्यवस्था को अपनाया गया है। यद्‌यपि भारत में राज्यों में अलग उच्च न्यायालय स्थापित किए गए हैं परन्तु देश के सर्वोच्च न्यायालय का सभी राज्यों के उच्च न्यायालयों पर नियन्त्रण है।

(xi) **राज्य सरकारों के लिए केन्द्रीय सरकार का आदेश मानना आवश्यक (States must abide by the directions of the Central Govermment)-** भारतीय संविधान में किए गए प्रावधानों के अनुसार राज्य सरकारें केन्द्रीय सरकार का आदेश मानने के लिए बाध्य हैं। संविधान के अनुच्छेद 256 व अनुछेद 257 के अनुसार, "प्रत्येक राज्य को अपनी कार्यकारी शक्ति का प्रयोग इस प्रकार करना चाहिए, जिससे संसद द्‌वारा निर्मित कानूनों का पालन अवश्य हो। केन्द्र सरकार इस उद्देश्य के लिए राज्य सरकारों को आदेश दे सकती है।

परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि भारत में एकात्मक सरकार है। साधारण स्थितियों में एक संघात्मक प्रणाली की तरह ही कार्य चलता है। इसलिए हम कह सकते हैं कि भारत में सरकार का स्वरूप संघात्मक ही है, परन्तु संघीय सरकार को अधिक शक्तिशाली बनाया गया है, अतः यह एक 'केन्द्रीयकृत संघ' (Centralised Federation) है।

1-3-5-भारतीय संघवाद की कार्यप्रणाली (Working of Indian Federalism)

भारतीय संविधान के लागू होने के समय से ही अर्थात 26 जनवरी, 1950 से ही भारत में संघात्मक प्रणाली कार्य कर रही है परन्तु समय- समय पर हुए राजनीतिक परिर्वतनों एवं उत्पन्न परिस्थितियों के

कारण भारतीय संघवाद का स्वरूप एक-जैसा नहीं रहा जिसके परिणामस्वरूप इसकी कार्यप्रणाली के स्वरूप में भी परिवर्तन होता रहा जिन्हें हम निम्नलिखित शीर्षकों के माध्यम से समझ सकते हैं

(i) **सहयोगी संघवाद का काल (Period of Co-operative Federalism)-** भारत में सन 1952 से 1967 तक का काल सहयोगी संघवाद का काल माना जाता है, क्योंकि इस काल में केवल सन 1957 में केरल राज्य में स्थापित साम्यवादी सरकार को छोड़कर शेष सभी राज्यों में एवं संघीय स्तर पर एक ही दल काँग्रेस की सरकार रही जिसके कारण संघ एवं राज्यों के बीच मनमुटाव के मामले उभरकर सामने नहीं आए, क्योंकि उनके बीच यदि कोई विवाद उत्पन्न हो भी जाता था तो केन्द्रीय स्तर के शीर्ष नेताओं के स्तर पर ही ऐसे विवाद सुलझ जाते थे। इस तरह यह काल एक सहयोगी संघवाद का काल कहा जाता है।

(ii) **तनाव का काल (Era of Confrontation)-** भारत में हुए चौथे लोकसभा चनाव, सन 1967 के साथ-साथ कई राज्यों में भी विधानसभा के चुनाव हुए। स्वतन्त्र भारत के इतिहास में पहली बार कई राज्यों में काँग्रेस की पराजय के कारण अन्य दलों की सरकारों का अस्तित्व हआ। यद्यपि संघीय स्तर पर काँग्रेस ही सरकार बनाने में सफल रही, परन्तु राज्यों पर काँग्रेस की पकड़ टीली पड गई। ऐसी स्थिति में काँग्रेस द्वारा राज्यों पर शिकंजा कसने के उद्देश्य से एवं संघ सरकार के माध्यम से कई राज्य सरकारों पर अनुच्छेद 356 का प्रयोग करके राज्य सरकारों को भंग करने का प्रयास किया गया। संघ सरकार की इसी नीति के कारण केन्द्र एवं राज्यों में टकराव उत्पन्न हो गया, जिसके परिणामस्वरूप सहयोगी संघवाद को गहरा झटका लगा।

(iii) **संघवाद का एकात्मक स्वरूप (Unitary Nature of Federalism)**-सन् 1971 में पाँचवीं लोकसभा चुनावों के साथ-साथ कई राज्यों में भी विधानसभा के चनाव हए जिनमें काँग्रेस पार्टी को

श्रीमती इन्दिरा गाँधी के नेतृत्व में केन्द्र एवं राज्यों में अच्छी सफलता प्राप्त हुई। इस तरह यह कहा जाता है कि आपातुकाल में भारतीय संघवाद एकात्मकतावाद में बदल गया

(iv) **पुनः तनाव का काल (Era of Re-confrontation)-** सन् 1977 से 1980 के काल में भारतीय संघवाद में तनाव उत्पन्न होता रहा, क्योंकि सन् 1977 में हुए छठे लोकसभा चुनावों के पश्चात् जहाँ पहली बार संघीय स्तर पर गैर-काँग्रेसी सरकार का गठन हुआ, वहाँ प्रथम गैर-कॉग्रेसी सरकार (जनता पार्टी सरकार) ने उस समय काँग्रेस शासित 9 राज्यों में अनुच्छेद 356 का प्रयोग करते हुए राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया। जनता पार्टी सरकार की यह कार्य संघवाद के सिद्धान्तों के विपरीत थी। इसके अतिरिक्त यहाँ यह भी जनता पार्टी की सरकार का समय पूर्ण होने से पहले ही पतन होने के कारण सन 1980 में सातवीं लोकसभा के चुनाव हुए जिसमें श्रीमती इन्दिरा गाँधी के नेतृत्व में पुनः काँग्रेस की सत्ता स्थापित हुई, लेकिन इन्दिरा गाँधी सरकार के द्वारा भी सन् 1977 की जनता पार्टी सरकार द्वारा की हुई बर्खास्तगी की तरह ही उस समय 9 ही राज्यों में स्थापित गैर-काँग्रेसी राज्य सरकारों को अनुच्छेद 356 का प्रयोग करते हुए बर्खास्त कर दिया गया। इस तरह सत्तारूढ़ पार्टियों की संघवाद विरोधी गतिविधियों के कारण यह काल केन्द्र एवं राज्यों के बीच तनाव काल के रूप में ही जाना जाता है।

(v) सौदेबाजी वाली संघ व्यवस्था (Model of Bargaining Federalism)- सन 1989 में हुए 9वीं लोकसभा चुनावों से लेक सन् 2009 में हुए 15वीं लोकसभा चुनावों तक भारतीय संघवाद को 'सौदेबाजी वाला प्रतिमान' कहा जा सकता है क्योंकि इस का में संधीय स्तर पर बनने वाली सभी सरकारें एक तरह से अल्पकालीन सरकारें थी जिन्हें सत्ता में बने रहने के लिए उन दलों का लेना पड़ा जो राज्यों में शक्तिशाली हैं। भारतीय संघवाद की एक नई अवस्था अर्थात सौदेबाजी वाली अवस्था को जन्म दिया।

(vi) **पुनः सहयोगी संघवाद का स्वरूप (Nature of Re-co-operative Federalism)** -अप्रैल-मई, 2014 में हुए 16वीं लोकसम तथा अप्रैल-मई, 2019 में हए 17वीं लोकसभा चुनाव के बाद भारतीय लोकतन्त्र में एक बार पुनः सहयोगी संघवाद का स्वरूप उभरने की प्रवृत्ति दिखाई देने लगी है, क्योंकि जहाँ केन्द्र में एन०डी०ए० की भाजपा नेतृत्व वाली सरकार को अकेले भाजपा को क्रमश 282 एवं 309 सीटों के साथ स्पष्ट बहमत प्राप्त हआ है। भारतीय संघ की ऐसी स्थिति पनः भारतीय संघवाद को सहयोगी संघवाद की ओर ले जा सकती है। अतः भारतीय संघवाद की क्रियाशीलता की उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट होता है कि भारतीय संघवाद के विभिन्न कालों में विभिन्न रूप देखने को मिलते हैं।

1-3-6-भारत में संघवाद का महत्त्व (Importance of federalism in India)

(i) भारतीय प्रशासन में शक्ति केंद्र से स्थानीय निकायों यानी पंचायत तक प्रवाहित होती है, इसी कारण देश में सत्ता का विकेंद्रीकरण आवश्यक है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि केंद्र सभी शक्तियों का अधिग्रहण न करे। यही से संघवाद की आवश्यकता का जन्म होता है।

(ii) संघीय प्रणाली प्रशासनिक कार्य के बोझ तले दबे प्रशासन की मदद करती है। केंद्र में बैठे अधिकारी गाँवों तक नहीं पहुँच सकते है जिसके कारण गाँव विकास से अछूते रह जाते हैं। इसलिये स्थानीय सरकार कार्यपालिका को निचले स्तर तक पहुँचने में मदद करती है और देश के सभी नागरिकों की लोकतंत्र में सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करती है।

(iii) भारत में विभिन्न नस्लों और धर्मों के लोग रहते हैं। भारत ने एक धर्मनिरपेक्ष विचार को अपनाया जो 42वें संशोधन अधिनियम, 1976 के माध्यम से प्रस्तावना में जोड़ा गया। संघवाद की अवधारणा देश के अंतर्गत विविधता को कायम रखने में मदद करती है।

1-4- विषय वास्तु का पुन: प्रस्तुतिकरण (Presentation of further Contents)

1-4-1-केन्द्र-राज्य के सम्बन्ध (Centre-State Relations)

भारत की शासन व्यवस्था केन्द्रीय और राज्यीय दोनो सिद्धान्तों का मिश्रण है। लोकसभा, राज्यसभा सर्वोच्च न्यायालय की सर्वोच्चता, संघ लोक सेवा आयोग इत्यादि इसे एक संघीय ढांचे का रूप देते हैं तो राज्यों के मंत्रीमंडल, स्थानीय निकायों की स्वायत्तता इत्यादि जैसे तत्व इसे राज्यों से बनी शासन व्यवस्था की ओर ले जाते हैं।केंद्र-राज्य संबंध से अभिप्राय है कि किसी लोकतांत्रिक राष्ट्रीय-राज्य में संघवादी केंद्र और उसकी इकाइयों के बीच के आपसी संबंध। भारत में आजादी के बाद से केंद्र-राज्य संबंध का मसला अत्याधिक संवेदनशील मामला रहा है। मुद्दा चाहे अलग भाषाई पहचान,आसमान विकास, राज्यों के गठन का हो,या फिर विशेष राज्य का दर्जा देने से जुड़ा हो। ये सब केंद्र-राज्य संबंधों की सीमा में आते हैं। यही नहीं देश में शिक्षा, व्यापार जैसे विषयों पर नीति निर्माण का सवाल हो उसमें जो बात केंद्र में रहती है वह है केंद्र और राज्य के बीच में इनको लेकर क्या आपसी समझ है।भारतीय संविधान में भारत को राज्यों का संघ कहा गया है न कि संघवादी राज्य। भारतीय संविधान में विधायी, प्रशासिनिक और वित्तीय शक्तियों का सुस्पष्ट बंटवारा केंद्र और राज्यों के बीच किया है। विधायी शक्ति के विषयों को तीन सूचियों में बांटा गया है। इसमें पहली सूची है केंद्रीय सूची, दूसरी है राज्य सूची और तीसरी सूची है समवर्त्ती सूची। केंद्र-राज्य संबंध तीन भागों में विभाजित हैं:-

- विधायी संबंध (अनुच्छेद 245-255)
- प्रशासनिक संबंध (अनुच्छेद 256-263)
- वित्तीय संबंध (अनुच्छेद 268-293)

1.4.1.1-विधायी संबंध (Centre-State Relations) -

अनुच्छेद 245-255 केंद्र और राज्यों के बीच विधायी संबंधों के विभिन्न पहलुओं का आदान-प्रदान करता है। इसमे शामिल हैंः

- संसद और राज्यों के विधान मंडलों द्वारा बनाए गए कानूनी क्षेत्राधिकार।
- विधायी विषयों की वितरण।
- राज्य सूची में एक विषय के संबंध में संसद को कानून बनाने की शक्तियां।
- केंद्र सरकार के नियंत्रण वाली राज्य विधान मंडल।

हालांकि, संविधान की सातवीं अनुसूची केंद्र और राज्यों के बीच विधायी शक्तियों का वितरण प्रदान करती है। विधायी विषयों को प्रथम सूची (संघ सूची), द्वितीय सूची (समवर्ती सूची) और तृतीय सूची (राज्य सूची) में बांटा गया है।संघ सूची के अंतर्गत 100 विषय शामिल हैं जिसमें विदेशी मामलों, रक्षा, रेलवे, डाक सेवा, बैंकिंग, परमाणु ऊर्जा, संचार, मुद्रा आदि जैसे विषय शामिल हैं।राज्य सूची में 61 विषय शामिल हैं। सूची में पुलिस, सार्वजनिक व्यवस्था, परिवहन, स्वास्थ्य, कृषि, स्थानीय सरकार, पेयजल की सुविधा, साफ-सफाई आदि जैसे विषय शामिल हैं।समवर्ती सूची में 52 विषय शामिल हैं। सूची में शिक्षा, वन, जंगली जानवरों और पक्षियों की रक्षा, बिजली, श्रम कल्याण, आपराधिक कानून और प्रक्रिया, सिविल प्रक्रिया, जनसंख्या नियंत्रण और परिवार नियोजन, दवा आदि जैसे विषय शामिल हैं।

1.4.1.2- प्रशासनिक संबंध (Centre-State Administrative Relations)-

अनुच्छेद 256-263 का संबंध केंद्र और राज्यों के बीच प्रशासनिक संबंधों के आदान-प्रदान से है। अनुच्छेद 256 यह बताता है कि संसद द्वारा बनाए गये कानूनों का अनुपालन सुनिश्चत करना प्रत्येक राज्य का अधिकार है। कोई भी मौजूदा कानून जो उस राज्य पर लागू होता है और संघ की कार्यकारी शक्ति का विस्तार करने हेतु एक राज्य को इस तरह के दिशा-निर्देश दिए जाते हैं जिसे राज्य को इस उद्देश्य हेतु भारत सरकार के सामने प्रस्तुत करना जरूरी होता है। संविधान में केंद्र और राज्यों के बीच सहयोग और समन्वय को सुरक्षित करने के लिए विभिन्न प्रावधान तय किए गए हैं। इसमें शामिल हैः

- अनुच्छेद 261 यह बताता है कि ''सार्वजनिक कानूनों, रिकॉर्ड और प्रत्येक राज्य तथा संघ की न्यायिक कार्यवाही के लिए पूर्ण विश्वास और पूरा श्रेय भारतीय भूभाग को दिया जाना चाहिए।''
- अनुच्छेद 262 के अनुसार, 'संसद, विधि द्वारा किसी भी अन्तार्रजीय नदी या नदी घाटी के पानी के उपयोग, वितरण या नियंत्रण के संबंध में किसी भी विवाद या शिकायत पर निर्णय या फैसला सुना सकती है।''
- अनुच्छेद 263 राज्यों के बीच विवादों पर चर्चा करने के लिए राष्ट्रपति को जांच कराने के लिए एक अंतर-राज्य परिषद का गठन करने की शक्ति देता है। यह राष्ट्रपति को कुछ या सभी राज्यों या संघ अथवा एक से अधिक राज्यों के उन विषयों पर जांच या चर्चा कराने की भी अनुमति देता है जिन पर सभी का एक साझा हित होता है।
- अनुच्छेद 307 के अनुसार, संसद कानून के द्वारा व्यापार और वाणिज्य के अन्तार्रजीय स्वतंत्रता से संबंधित संवैधानिक प्रावधानों के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए उचित समझे जाने वाले कानून द्वारा ऐसे प्राधिकारी नियुक्त कर सकता है।
- राष्ट्रीय आपातकाल (अनुच्छेद 352) के दौरान राज्य सरकार केंद्र सरकार के अधीनस्थ हो जाती है।राज्य के सभी कार्यकारी कार्य केंद्र सरकार के नियंत्रण में आ जाते हैं।एक राज्य में आपातस्थिति के दौरान (अनुच्छेद 356 के तहत), राज्य के विधान मंडल के अलावा, राष्ट्रपति खुद सभी या राज्य सरकार और राज्य में राज्यपाल या प्राधिकारी द्वारा प्रयोग की जाने वाली शक्तियों और सभी या किसी भी कार्य को अपने हाथों में ले सकते हैं।वित्तीय आपात स्थिति (अनुच्छेद 360) के दौरान संघ अथवा केंद्र किसी भी राज्य सरकार को वित्तीय सिद्धांतों का पालन करने के दिशा-निर्देश दे सकता है जो विशिष्ट दिशा-निर्दिष्ट भी हो सकते हैं। इन दिये जाने वाले दिशा-निर्देशों पर राष्ट्रपति स्पष्ट और आवश्यक निर्णय दे सकते हैं।

1.4.1.3- वित्तीय संबंध (Centre-State financial relations)-

संविधान के बारहवें भाग का अनुच्छेद 268-293 केंद्र और राज्य के वित्तीय संबंधों के संबंधित है।

(i) राजस्व शक्तियों का आवंटनः-

- संविधान, केंद्र सरकार और राज्य सरकारों को राजस्व के स्वतंत्र स्रोत प्रदान करता है। केंद्र और राज्य को आवंटित शक्तियों को निम्नलिखित बिंदुओं द्वारा समझा जा सकता है। संसद के पास संघ सूची में उल्लिखित विषयों पर कर लगाने की अनन्य शक्ति है।
- राज्य विधायिकाओं के पास राज्य सूची में वर्णित विषयों पर कर लगाने की अनन्य शक्ति है।
- संसद और राज्य विधायिका दोनों के पास समवर्ती सूची में वर्णित विषयों पर कर लगाने का अधिकार है।
- संसद के पास अवशिष्ट विषयों से संबंधित मामलों पर कर लगाने की अनन्य शक्ति है।
- हालांकि, कर राजस्व वितरण के मामले में, अनुच्छेद 268 यह बताता है कि कर संघ अथवा केंद्र द्वारा लगाए जाते हैं लेकिन राज्य द्वारा उन्हें एकत्र और विनियोजित किया जाता है।
- सेवा कर, संघ द्वारा लगाए जाता है और संघ एवं राज्यों द्वारा एकत्र और विनियोजित किया जाता है (अनुच्छेद 268-ए)
- करों को संघ द्वारा लगाया और एकत्र किया जाता है लेकिन राज्यों को सौंपा जाता है (अनुच्छेद 269)
- करों को संघ द्वारा लगाया और एकत्र किया जाता है लेकिन राज्यों और संघों के बीच वितरित किया जाता है (अनुच्छेद 270)
- संघ के प्रयोजनों के लिए कुछ खास शुल्कों और करों पर अधिभार लगाया जाता है (अनुच्छेद 271)

- अनुच्छेद 275 के तहत, संसद किसी भी राज्य के लिए अनुदान सहायता प्रदान करने के लिए अधिकृत है। संसद सहायता की जरूरत निर्धारित की जरूरत होने के लिए निर्धारित कर सकते हैं अनुदान सहायता की जरूरत निर्धारित कर सकते हैं और विभिन्न राज्यों के लिए भिन्न राशियां तय की जा सकती है। अनुच्छेद 282 के तहत, संघ या किसी राज्य किसी भी सार्वजनिक उद्देश्य के लिए किसी भी प्रकार का अनुदान कर सकते हैं, बाबजूद इसके भी कि जिस संदर्भ के साथ संसद और राज्य विधायिका, नियमों का निर्माण किया है वो उसका उद्देश्य है ही नहीं।
- अनुच्छेद 352 के तहत, राष्ट्रीय आपातकाल की कार्रवाई के दौरान, केंद्र और राज्यों के बीच राजस्व के वितरण को राष्ट्रपति द्वारा बदला जा सकता है।
- अनुच्छेद 360 के तहत, वित्तीय आपात स्थिति के आपरेशन के दौरान संघ अथवा केंद्र किसी भी राज्य सरकार को वित्तीय सिद्धांतों का पालन करने के दिशा-निर्देश दे सकता है जो विशिष्ट दिशा-निर्दिष्ट भी हो सकते हैं। इन दिये जाने वाले दिशा-निर्देशों पर राष्ट्रपति स्पष्ट और आवश्यक निर्णय दे सकते हैं।

1.4.2-केंद्र व राज्यों के बीच तनाव के कारण- (Causes of tension between the center and the states): -

- सबसे अधिक विवाद राज्यपालों की नियुक्ति तथा उनकी भूमिका को लेकर रहता है। आमतौर पर राज्यपालों की नियुक्ति तथा पदविमुक्ति में केन्द्र सरकार मनमाने तरीके से निर्णय लेती हैं। इसमें मुख्यमंत्रियों की सलाह या सहमति को महत्त्व नहीं दिया जाता है। राज्यपाल भी केन्द्र सरकार के एजेन्ट की तरह राज्य सरकारों से बर्ताव करते हैं।
- दूसरा कारण राज्यों द्वारा शासन संविधान के उपबंधों के तहत नहीं चलाया जाने पर केन्द्र सरकार द्वारा राज्य सरकार को बर्खास्त करके राष्ट्रपति शासन लागू करना है। इस प्रावधान का दुरुपयोग किया जा चुका है।

- नौकरशाही भी एक महत्वपूर्ण कारण रहा है जिस पर केन्द्र व राज्यों के बीच मतभेद दिखाई देता है। अखिल भारतीय सेवाएँ राज्यों की स्वायत्तता को कम करती हैं क्योंकि कई बार इनके अधिकारी केन्द्र के एजेन्ट की भाँति व्यवहार करने लगते हैं। अखिल भारतीय सेवाओं के अधिकारियों का वेतन उच्च स्तर का होता है जो राज्य की वित्तीय स्थिति को प्रभावित करता है। इन अधिकारियों की नियुक्ति, पदोन्नति और बर्खास्तगी का अधिकार केन्द्र का होता है। इसलिए इन अधिकारियों में राज्यों के प्रति अपनत्व की भावना नहीं होती है।
- केन्द्र को यह अधिकार है कि राष्ट्रीय सुरक्षा, सार्वजनिक संपत्ति की सुरक्षा आदि के संदर्भ में केन्द्र राज्य में अर्द्ध सैनिक बलों की नियुक्ति कर सकता है। यह स्थिति और अधिक विवादास्पद तब हो जाती है जब केन्द्र और राज्य में अलग-अलग सरकारें काम करती हैं और राज्य सरकार की नीतियाँ केन्द्र से मेल नहीं खाती हैं।
- आज केन्द्र-राज्यों के संबंध में खटास की एक मुख्य वजह आर्थिक नियोजन है। हालाँकि नीति आयोग द्वारा इस तनाव को कम करने के लिए प्रयास किए गए हैं। इसके बावजूद तनाव बरकरार है।

  निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि केन्द्र और राज्यों के बीच तनाव विकास एवं जनकल्याण को अवरुद्ध कर सकती है। ऐसे में केन्द्र-राज्य संबंधों में समन्वय आवश्यक हो जाता है। इस संदर्भ में कुछ सुझावों को अमल में लाया जा सकता है जो तनाव कम करने में कारगर साबित हो सकते हैं।

1-5-स्वयं प्रगति जाँच (Check your progress)

I. भारतीय संविधान में संघीय शासन-प्रणाली 'संघ' शब्दों के स्थान पर किस शब्द का प्रयोग किया गया है?

II. भारतीय संघात्मक सरकार के दोनो सदनो के नाम क्या हैं?

III. **किस अनुच्छेद के तहत एक राज्य में संवैधानिक तंत्र की विफलता की स्थिति में राष्ट्रपति शासन भी लगाया जा सकता** है।

IV. केंद्र-राज्य संबंध को कितने भागों में विभाजित किया गया है?

V. अखिल भारतीय प्रशासनिक सेवाओं' तथा पुलिस सेवाओं (Police Services) भर्ती कौनसी सरकार करती है

1-6-सारांश (Summary)

संघीय सरकार उसे कहते हैं जहाँ केन्द्र तथा राज्यों में शक्तियों का विभाजन होता है। केन्द्र व राज्य सरकारें अपने-अपने क्षेत्र में स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करती हैं। सत्ता का विकेन्द्रीयकरण संविधान द्वारा निश्चित किया जाता है। केन्द्र व राज्यों को संविधान से शक्तियाँ प्राप्त होती हैं। केंद्र व इकाइयों के सम्बन्धों के आधार पर शासन-व्यवस्था को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। जब इकाइयाँ अपनी शक्तियों के लिए केन्द्र पर निर्भर करती हैं और केन्द्र से ही शक्तियाँ प्राप्त करती हैं तो उसे एकात्मक शासन-व्यवस्था कहा जाता है। इसके विपरीत जब केन्द्र व इकाइयों में शक्तियाँ संविधान द्वारा बँटी होती हैं तो उसे संघात्मक शासन-व्यवस्था कहा जाता है।हैं।केंद्र-राज्य संबंध से अभिप्राय है कि किसी लोकतांत्रिक राष्ट्रीय-राज्य में संघवादी केंद्र और उसकी इकाइयों के बीच के आपसी संबंध। दुनियाभर में लोकतंत्र के उदय के साथ राजनीति में केंद्र-राज्य संबंधों को एक नई परिभाषा मिली। भारत में आजादी के बाद से केंद्र-राज्य संबंध का मसला अत्याधिक संवेदनशील मामला रहा है। मुद्दा चाहे अलग भाषाई पहचान,आसमान विकास, राज्यों के गठन का हो,या फिर विशेष राज्य का दर्जा देने से जुड़ा हो। ये सब केंद्र-राज्य संबंधों की सीमा में आते हैं। यही नहीं देश में शिक्षा, व्यापार जैसे विषयों पर नीति निर्माण का सवाल हो उसमें जो बात केंद्र में रहती है वह है केंद्र और राज्य के बीच में इनको

लेकर क्या आपसी समझ है।भारतीय संविधान में भारत को राज्यों का संघ कहा गया है न कि संघवादी राज्य। भारतीय संविधान में विधायी, प्रशासिनिक और वित्तीय शक्तियों का सुस्पष्ट बंटवारा केंद्र और राज्यों के बीच किया है। विधायी शक्ति के विषयों को तीन सूचियों में बांटा गया है।

1-7-सूचक शब्द (Key Words)

I. **संघ-** संघ संस्कृत का शब्द है- जिसका अर्थ सभा, समुदाय या संगठन है।

II. **अनुच्छेद-** किसी भी शब्द, वाक्य, सूत्र से सम्बद्ध विचार एवं भावों को अपने अर्जित ज्ञान, निजी अनुभूति से संजोकर प्रवाहमयी शैली के माध्यम से गद्यभाषा में अभिव्यक्त करना अनुच्छेद कहलाता है।

III. **संघात्मक सरकार-** संघात्मक शासन उस प्रणाली को कहते हैं जिसमें राज्य-शक्ति संविधान द्वारा केन्द्र तथा संघ की घटक इकाइयों के बीच विभाजित रहती है।

IV. **एकात्मक सरकार-** एकात्मक शासन प्रणाली उस शासन-प्रणाली को कहते है जिसमे राज्य की संपूर्ण शक्ति एक ही सरकार मे निहित होती है,

V. **एकल और दोहरी नागरिकता-**एकल नागरिकता का तात्पर्य जिसमे किसी देश लोगों नागरिक को सिर्फ एक नागरिकता मिलती है, जिससे वह पुरे देश (सभी राज्य व केन्द्र शासित राज्यों) का समान रुप से नागरिक होता है। भारत में एकल नागरिकता है।

VI. **दोहरी नागरिकता-**दोहरी नागरिकता का तात्पर्य जिसमे किसी देश लोगों को देश के साथ- साथ राज्य विशेष की भी नागरिकता लेनी होती है। संयुक्त राज्य अमेरिका में दोहरी नागरिकता का प्रावधान है।

VII. **विधेयक-**दोनो सभाओं व राष्ट्रपति द्वारा प्रारित अधिनियम।

VIII. **संघीय व्यवस्था**-केन्द्र और राज्य दोनो संविधान के द्वारा शक्ति विभाजन अपने-2 क्षेत्र में दोनों संविधान की सीमा में स्वतन्‍्त्रता पूर्वक कार्य करें।

IX. **विधायी शक्ति-**कानून का निर्माण करने से सम्बन्धित शक्ति।

X. **वित्तिय शक्ति-**आय-व्यय करने से सम्बन्धित शक्ति।

XI. **प्रशासनिक शक्ति**-कानून को लागू करने से सम्बन्धित शक्ति।

1-8-स्वयं समीक्षा हेतु प्रश्न (Self- Assessment Questions)

I. संघात्मक सरकार का क्या अर्थ है? संघात्मक सरकार के लक्षणों (विशेषताओं) का वर्णन कीजिए।

II. “भारत का संविधान रूप में संघात्मक है, परन्तु भाव में एकात्मक है।" इस कथन की विवेचना कीजिए।

III. भारतीय संघवाद की विशेषताओं का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।

1-9-उतर-स्वयं प्रगति जाँच (Answer to check your progress)

I. 'राज्यों का संघ' (Union of States) कहा गया है।

II. निचला सदन अर्थात् ' लोक सभा (House of the People), ऊपरी सदन अर्थात ‘राज्यसभा' (Council of States)

III. अनुच्छेद 356 के तहत

IV. तीन, विधायी संबंध (अनुच्छेद 245-255), प्रशासनिक संबंध (अनुच्छेद 256-263), वित्तीय संबंध (अनुच्छेद 268-293)

V. केंद्रीय सरकार

1-10. संदर्भ ग्रन्थ/निर्देशित पुस्तके (References / Suggested Readings)

I. जैन, पुखराज, राजनीति विज्ञान, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।

II. आर.के. जैन, कला जैन, लक्ष्मीकांत त्रिपाठी, राजनीति विज्ञान, आरोही पब्लिकेशन्स, दिल्ली।

III. डॉ. सुरेश कुमार, सोमनाथ वर्मा, डॉ. गुलशन राय, जे. बी. डी प्रिंटिंग प्रेस, जालंधर ।

Subject: राजनीति विज्ञान	
Course Code: POLS.103	Author: Dr. Parveen Sharma
Lesson No.: 2	Vetter: Updated by:
अध्याय की संरचना-2 राज्य स्वायत्तता की मांग, भारतीय संघवाद में उभरती प्रवृत्तियाँ, नीति आयोग **(Demand for state autonomy, emerging trends in Indian federalism, working of NITI Aayog)**	

1-1-अधिगम के उद्देशय (Learning Objectives)

1-2-परिचय (Introduction)

1-3-विषय वास्तु का प्रस्तुतिकरण (Presentation of Contents)

1-3-1-राज्य की स्वायत्तता का अर्थ (Meaning of State Autonomy)

1-3-2-राज्य की स्वायत्तता की माँग के कारण(Reasons for the Demand of State Autonomy)

1-3-3-राज्य स्वायत्तता के पक्ष एवं विपक्ष में तर्क (Arguments in favour and against of State Autonomy)

1-4-विषय वास्तु का पुन: प्रस्तुतिकरण (Presentation of further Contents)

1-4-1-भारतीय संघवाद में उभरती मुख्य अभिवृत्तियां (Emerging Main Trends in Indian Federalism)

1-4-2-नीति आयोग (NITI Aayog)

1-4-3-नीति आयोग की स्थापना के करण (Reasons for the establishment of NITI Aayog)

1-4-4-नीति आयोग की संरचना (Structure of NITI Aayog)

1-4-5-नीति आयोग के लक्ष्य ((Objectives of NITI Aayog)

1-4-6-नीति आयोग के कार्य (Functions of NITI Aayog)

1-4-8-नीति आयोग के मार्गदर्शक सिद्धांत (Guiding principle of NITI Aayog)

1-4-9-नीति आयोग और योजना आयोग में अंतर (Difference between policy commission and planning commission)

1-4-10- नीति आयोग के अन्य तथ्य (Other facts)

1-4-11-नीति आयोग के सामने चुनौतियां (Challenges in front of NITI Aayog)

1-5-स्वयं प्रगति जाँच (Check your progress)

1-6-सारांश (Summary)

1-7-सूचक शब्द (Key Words)

1-8-स्वयं समीक्षा हेतु प्रश्न (Self- Assessment Questions)

1-9-उतर-स्वयं प्रगति जाँच (Answer to check your progress)

1-10- संदर्भ ग्रन्थ/निर्देशित पुस्तके (References / Suggested Reading

1-1-अधिगम के उद्देशय (Learning Objectives)

- विद्यार्थियों को भारतीय संघवाद की उभरती प्रवृत्तियों का ज्ञान करवाना।
- विद्यार्थियों को राज्य स्वायत्तता का अर्थ, राज्य स्वायत्तता के साधन का ज्ञान करवाना।
- विद्यार्थियों को राज्य की स्वायत्तता की माँग के कारण का ज्ञान करवाना।
- विद्यार्थियों को नीति आयोग की कार्यप्रणाली का ज्ञान करवाना।

1-2-परिचय (Introduction)

भारत में केन्द्र तथा राज्यों के बीच शक्तियों का विभाजन प्रारम्भ से ही विवादपूर्ण रहा है। संविधान सभा में भी अनेक सदस्यों ने यह आपत्ति जताई थी। वास्तविकता भी यही है कि भारत के संविधान में केन्द्र सरकार को विस्तृत शक्तियाँ दी गई हैं और राज्य नामक इकाइयों की निश्चित रूप से कमजोर रखा गया है। सन् **1967** तक राज्यों में तथा केन्द्र में एक ही दल- कांग्रेस की सरकार सत्ता में रहने से केन्द्र-राज्यों के बीच विवाद नहीं उठे, किन्तु सन **1967** के बाद जब देश के **8** राज्यों में दूसरे दलों की गैर-कांग्रेसी सरकारें बनीं तो केन्द्र-राज्यों के बीच शक्तियों के वितरण और सामजस्य की समस्या पैदा हो गई। राज्यों की ओर से स्वायत्तता की मांग उठी। राज्यों की स्वायत्तता की मांग के समर्थक यह मानते हैं कि संविधान में कई ऐसे प्रावधान हैं जो राज्यों की स्वायत्तता को सीमित करते हैं।

1-3-विषय वास्तु का प्रस्तुतिकरण (Presentation of Contents)

1-3-1-राज्य की स्वायत्तता का अर्थ (Meaning of State Autonomy)-

साधारण शब्दों में, स्वायत्तता का अर्थ है कि किसी को भी अपने क्षेत्र में निर्वाय कार्य करने की स्वतन्त्रता अर्थात् आन्तरिक व बाहय कार्य क्षेत्र में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप न होना। राज्यों के मामले में स्वायत्तता का अर्थ थोड़ा-सा भिन्न है। राज्यों की स्वायत्तता का अर्थ स्वतन्त्रता नहीं है,

बल्कि इसका अर्थ है कि राज्यों को उनके मामलों में केन्द्रीय सरकार द्वारा किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए। राज्यों को शक्तियाँ संविधान द्वारा उपलब्ध कराई गई हैं और उन्हें उनका प्रयोग करने की पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए। राज्यों को जन-कल्याण की योजनाएं बनाने एवं उन्हें लागू करने की शक्तियां बिना किसी रोक-टोक के प्राप्त होनी चाहिए। यही नहीं वित्तीय क्षेत्र में भी राज्य स्वतन्त्र होने चाहिए। तभी राज्य की स्वायत्तता को लागू किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, केन्द्र का राजनीतिक व प्रशासनिक मामलों में हस्तक्षेप न्यूनतम होना चाहिए। केन्द्र का कार्य-क्षेत्र सीमित होना चाहिए। उसे केवल विदेशों से सम्बन्ध, रक्षा, मुद्रा और जन-संचार के विषयों के मामलों में शक्तियों प्रदान की जानी चाहिए। कराधान के क्षेत्र में भी उनकी शक्तियाँ सीमित होनी चाहिए। उन्हें केवल उतने ही कर लगाने का अधिकार दिया जाना चाहिए, जितने उन्हें उपर्युक्त कार्य सम्पन्न करने के लिए आवश्यक हों राज्यों को कराधान के इतने अधिकार प्रदान किए जाने चाहिए, जिससे कि वे साधनों का जमाव महसूस न करें।

अतः राज्यों की स्वायत्तता का अर्थ न तो राज्यों की स्वतन्त्रता से है और न ही प्रभुसत्ता से यह एक ऐसा वैधानिक दर्जा है जिसमें राज्यों को कुछ क्षेत्रों में पूर्ण स्वतन्त्रता तथा कम-से-कम केन्द्रीय हस्तक्षेप का आश्वासन प्राप्त होता है। राज्यों को अपने एक निश्चित क्षेत्र में स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य के अधिकार का नाम ही राज्यों की स्वायत्तता है।

1-3-2-राज्य की स्वायत्तता की माँग के कारण [Reasons for the Demand of State Autonomy]

भारत में राज्यों पर केन्द्र के नियन्त्रण के अनेक साधन हैं। इन साधनों के कारण ही राज्यों की स्वायत्तता की माँग ने जन्म लिया। उन कारणों का विवरण निम्नलिखित है-

I. **संसद की व्यापक विधि निर्माण शक्तियाँ (Comprehensive LawMaking Powers of the Parliament): -** संविधान द्वारा केन्द्र और राज्यों के बीच विधायी शक्तियों का बंटवारा अवश्य किया गया है, परन्तु दी गई इन परिस्थितियों में संसद उन विषयों पर भी कानून बना सकती है जो राज्य सूची में दिए गए हैं।

II. **वित्तीय दृष्टि से राज्यों की निर्भरता (Dependence of States in Case of Financial Matter):-** भारतीय संविधान में केन्द्र-राज्यों के बीच किए गए वित्तीय विभाजन में राज्य अपने आपको वित्तीय क्षेत्र में असहज अनुभव करते हैं और अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने में पूर्णतः असमर्थ पाते हैं। केन्द्र पर राज्यों की आर्थिक निर्भरता दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। इसके अतिरिक्त केन्द्र सरकार द्वारा राज्यों को दी जाने वाली सहायता (अनुदान) के भी कोई निश्चित नियम नहीं, बल्कि अपनी इच्छानुसार या स्वविवेकानुसार ही राज्यों को दी जाती है।

III. **अखिल भारतीय सेवाएँ तथा राज्यपाल (All India Services and Governor):-** अखिल भारतीय सेवाओं जैसे भारतीय प्रशासनिक सेवा (LA.S.) तथा भारतीय पुलिस सेवा (I.P.S.), पर भारत की संघीय सरकार का नियन्त्रण है। इन सेवाओं से सम्बन्धित उच्च अधिकारी राज्यों में अनेक महत्त्वपूर्ण पदों पर नियुक्त होते हैं। अतएव इन अधिकारियों के माध्यम से ही केन्द्रीय सरकार राज्यों की सरकारों पर नियन्त्रण रखती है। जहाँ तक राज्यपाल का प्रश्न है, उनकी नियुक्ति राष्ट्रपति करता है तथा यह राज्य में केन्द्र के एजेण्ट के रूप में कार्य करता है।

IV. **राज्यों के बीच भाषायी एवं सांस्कृतिक विभिन्नता (Linguistic and Cultural Diversity among the States): -** भारत में राज्यों की भाषायी एवं सांस्कृतिक विभिन्नता भी राज्यों की स्वायत्तता की मांग को बढ़ाने में एक महत्त्वपूर्ण कारक रही इसी भावना से ग्रस्त होकर **1960** के दशक में हिन्दी भाषा के विरोध में गैर-हिन्दी भाषायी राज्यों के द्वारा आन्दोलन चलाए गए। अतः ऐसी माँग

एवं भावनाएं ही भारतीय संघवाद के स्वरूप को चुनौती देने के साथ-साथ राज्यों की स्वायत्तता की मांग के रूप में आगे बढ़ती जा रही हैं।

V. **राज्यपाल की भूमिका एवं राष्ट्रपति शासन (Role of Governor and President's Rule):-** अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, स्विट्ज़रलैण्ड जैसे संघों में केन्द्र को यह शक्ति प्रदान नहीं है कि राज्यों की स्वायत्तता (Autonomy) समाप्त कर सके, किन्तु भारत में आपातकाल की घोषणा किए जाने पर संविधान एकात्मक रूप धारण कर लेता है। जब राष्ट्रपति यह घोषणा कर देता है कि किसी राज्य की सरकार संविधान की धाराओं के अनुसार नहीं चलाई जा सकती तो राज्य की विधानसभा भंग कर दी जाती है और राष्ट्रपति के माध्यम से राज्यपाल की राज्य की सभी प्रशासनिक शक्तियों का प्रयोग करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। राज्य का राज्यपाल जनता के द्वारा निर्वाचित नहीं होता। राज्यपाल केन्द्र सरकार के हस्तक्षेप से राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त होता है। इसलिए राज्यपाल केवल मात्र राज्यों में केन्द्र सरकार का एजेण्ट बनकर कार्य करता है।

VI. **अन्तर्राज्यीय झगड़े (Inter-state Conflicts):-**राज्यों के बीच भाषायी एवं सांस्कृतिक विभिन्नता के साथ-साथ राज्यो बीच सीमा सम्बन्धी एवं नदी जल सम्बन्धी विवादों का केन्द्र सरकार द्वारा समुचित समाधान न करवाने के कारण भी राज्यों स्वायत्तता को माँग को बल दिया गया है।

VII. **संसद किसी नवीन राज्य का निर्माण कर सकती है और किसी भी राज्य की सीमा घटा या बढ़ा सकती है (Power to form New State and Increasing or Decreasing the Boundries of the State)**-केन्द्र बिना राज्यों की इच्छा के किसी नवीन राज्य का निर्माण कर सकती है और किसी भी राज्य की सीमा घटा या बढ़ा सकती है ऐसा करने के लिए संसद को राज्यों की अनुमति नहीं लेनी पड़ती। ऐसी स्थिति में राज्य अपने-आपको केन्द्र के समक्ष एक कमजोर एवं दयनीय स्थिति में पाते हैं।

VIII. राज्यसभा में सभी राज्यों को समान प्रतिनिधित्व नहीं (No Equal Representation of the whole States in Rajya Sabha):- विश्व की अधिकांश संघ व्यवस्थाओं में संसद के उच्च सदन का संगठन राज्यों की समानता के सिद्धान्त के आधार पर किया गया है। समानता का सिद्धान्त इसलिए अपनाया गया है जिससे केन्द्रीय संसद पर बड़े राज्य का आधिपत्य कायम न हो सके, परन्तु भारत के उच्च सदन अर्थात् राज्यसभा में सभी राज्यों का बराबर संख्या में प्रतिनिधित्व नहीं होता, जिसके परिणामस्वरूप राज्य केन्द्र के सामने स्वयं को असहज एवं कमजोर पाते हैं।

IX. राज्यों के अपने संविधान नहीं है(States don't have their OwnConstitutions):- अमेरिका और स्विट्ज़रलैण्ड के राज्यों के अपने पृथक् संविधान है और उनमें संशोधन करने की शक्तियाँ भी राज्यों के विधानमण्डलों को ही प्राप्त हैं, परन्तु भारत में एक ही संविधान है जो केन्द्र और राज्यों दोनों की संरचना और शक्तियों का उल्लेख करता है। राज्यों को यह अधिकार प्राप्त नहीं है कि वे भारतीय संविधान की उन धाराओं में संशोधन कर सकें जिनका उनकी संरचना और प्रकायों से सम्बन्ध है।

X. क्षेत्रीय राजनीतिक दलों का विकास (Growth of Regional Political Parties):- भारतीय राजनीति में बढ़ती क्षेत्रीयवादी प्रवृत्ति के कारण अनेक राज्यों में क्षेत्रीय दलों का विकास हुआ। क्षेत्रीय दल अपने अपने क्षेत्र के लोगों में यह विश्वास पाने की पुरजोर कोशिश में लगे रहते हैं कि राज्यों का विकास केन्द्र सरकार द्वारा नहीं बल्कि क्षेत्रीय दल की सरकार द्वारा ही सम्भव हो सकता है।

XI. राज्यपाल की नियुक्ति (Appointment of Governor) - राज्यपाल की नियुक्ति का अधिकार भारत के राष्ट्रपति का है। वह राज्यपाल की नियुक्ति प्रधानमन्त्री के परामर्श से करता है। साधारणतया राज्यपाल की नियुक्ति में अमुक राज्य के मुख्यमन्त्री की सलाह नहीं ली जाती।

XII. राज्यों के विधेयकों पर राष्ट्रपति की मंजूरी मिलने में देरी (Delay in President's Consent on Stute-Billis); - राज्यों को यह शिकायत रहती है कि जिन विधेयकों को विधानमण्डल पारित कर देती है, उन पर स्वीकृति देने में केन्द्र अनावश्यक देरी करता है। राज्यों के विधेयकों पर राष्ट्रपति की मंजूरी मिलने में देरी होना भी राज्यों की स्वायत्तता की मांग बढ़ाता है।

XIII. केन्द्र का राज्यों के विपक्षी दलों की सरकारों की समस्याओं के प्रति असंवेदनशील एवं उदासीन व्यवहार (Coolness and Indifferent Behaviour of Centre towards the Governments of Opposition Parties of States):- केन्द्र का दृष्टिकोण राज्यों में विपक्षी दलों की सरकारों की समस्याओं के प्रति असंवेदनशील और उदासीन रहता है, जो अन्ततः केन्द्र और राज्यों में टकराव पैदा करती हैं। केन्द्र के राज्यों के प्रति असंवेदनशील व्यवहार ने राज्यों की स्वायत्तता की मांग को न केवल जन्म दिया, बल्कि उसे बढ़ावा भी दिया है।

XIV. राज्यों की वित्तीय दुर्दशा (Bad Economic Condition of States):- राज्यों की वित्तीय स्थिति में निरन्तर गिरावट से न तो विकास गति पकड़ रहा है और न ही पर्याप्त बुनियादी सुविधाएँ मुहैया कराई जा रही हैं।

XV. दूरदर्शन और आकाशवाणी की पक्षपातपूर्ण भूमिका (Partisan Role of T.V. and Radio):- केन्द्र का दूरदर्शन और आकाशवाणी जैसे महत्त्वपूर्ण जन-संचार साधनों पर पूर्ण नियन्त्रण और एकाधिकार है। खबरें निष्पक्ष भाव से एवं पक्षपातरहित होकर प्रसारित नहीं की जातीं। दूरदर्शन एवं आकाशवाणी राज्यों के दृष्टिकोण की उपेक्षा करके केवल केन्द्र में सत्ताधारी पार्टी के दृष्टिकोण को प्रस्तुत करते हैं।राज्यों को विशेषकर चुनाव के समय प्रचार सुविधाएँ नहीं दी जातीं।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि राज्यों का स्वायत्तता की मांग करना उचित कदम है, किन्तु राज्य के स्वायत्तता विषयक उपर्युक्त विचार अतिवादी हैं। वास्तव में आज आवश्यकता इस बात की है

कि राज्यों को उनके विकास के अवसर निश्चित रूप से प्रदान किए जाने चाहिए। सुदृढ़ संघात्मक व्यवस्था तभी सम्भव हो सकती है, जब राज्यों का सम्पूर्ण विकास होगा।

1-3-3-राज्य स्वायत्तता के पक्ष एवं विपक्ष में तर्क [Arguments in favour and against of State Autonomy]

राज्य स्वायत्तता की मांग लम्बे समय से लगातार चल रही है। राज्यों की स्वायत्तता के सम्बन्ध में विविध प्रश्न उठते रहे हैं। जैसे स्वायतता दी जाए या नहीं, राज्यों को स्वायत्तता किस सीमा तक दी जाए ।विद्वान इसके पक्ष व विपक्ष में निम्न तर्क देते हैं:-

राज्य स्वायत्तता के पक्ष में तर्क (Arguments in favour of State Autonomy) राज्य स्वायत्तता के पक्ष में तर्क निम्नलिखित हैं-

(i) स्वायत्तता से राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता पर कोई खतरा उत्पन्न नहीं होता, क्योंकि स्वायत्तता तो भारतीय संघ के अंतर्गत रहते हुए अधिक अधिकारों की मांग है, अलग होने की मांग नहीं है।

(ii) राज्यों की स्वायत्तता के पक्ष में एक मन्तव्य यह भी सामने उभरकर आता है कि लोकतन्त्र में प्रायः केन्द्र और राज्य में अलग-अलग दलों की सरकार होना असामान्य नहीं है, किन्तु ऐसी स्थिति में केन्द्रीय सरकार का राज्य सरकारों के प्रति भेदभावपूर्ण व्यवहार भी देखा जाता है। जिन राज्यों में केन्द्र से विरोधी दल की सरकार का गठन हो जाता है, उन राज्यों के प्रति केन्द्र सरकार का रवैया कठोर रहता है। अनुदान, अन्य सहायता आदि प्रदान करने में केन्द्र सरकार कठोरता दर्शाती है, जबकि समर्थक राजनीतिक दल वाल राज्यों के प्रति केन्द्र सरकार का व्यवहार अति उदारतापूर्ण रहता है। राज्यों को स्वायत्तता प्रदान करने से उक्त भेदभावपूर्ण व्यवहार समाप्त हो जाएगा।

(iii) राज्यों में स्वायत्तता प्रदान किए जाने से देश के सभी राज्यों का सन्तुलित विकास सम्भव हो सकेगा। क्योंकि स्वायतता मिल जाने पर सभी राज्य अपनी विकास योजनाएं स्वयं निर्धारित कर सकते हैं, उन्हें कार्यान्वित करने में सक्षम हो सकते हैं एवं प्रगति की ओर अग्रसर हो सकते हैं। इससे पिछड़ापन स्वतः दूर होता जाएगा।

(iv) वर्तमान व्यवस्था में राज्य केन्द्राश्रित अधिक है। राज्यों के व्यय में तो निरन्तर बढ़ोतरी हो रही है, किन्तु उत्तरदायित्व के लिए राज्य तैयार नहीं है। राज्य स्वायत्तता के समर्थकों का मानना है कि स्वायत्तता से राज्यों में उत्तरदायित्व को भावना विकसित होगी, अधिकतम आय स्रोत के लिए प्रयास करेंगे और अन्ततः आत्मनिर्भर होगे।

कहा जा सकता है कि राज्यों को स्वायत्तता प्रदान करने से राष्ट्रीय एकता व अखण्डता को किसी प्रकार का खतरा नहीं है, बल्कि समग्र राष्ट्र की प्रगति का मार्ग प्रशस्त होगा।

राज्य स्वायत्तता के विपक्ष में तर्क (Arguments against State Autonomy)- राज्य स्वायत्तता के विरोधियों का मानना है कि यदि राज्यों को स्वायत्तता प्रदान कर दी जाती है तो राष्ट्रीय एकता खण्डित हो सकती है और साथ-ही-साथ संघात्मक ढाँचा (Federal Structure) क्षीण हो जाएगा। स्वायत्तता के विरोधी स्वमत की पुष्टि में कुछ तर्क देते हैं, जो इस प्रकार से हैं-

(i) स्वायत्तता विरोधियों का मानना है कि राज्यों को स्वायत्तता प्रदान करने से राज्यों की शक्तियों मुख्यमन्त्रियों में केन्द्रित हो जाएंगी। यह शक्ति केन्द्रीकरण तानाशाही प्रवृत्तियों को बढ़ाएगी जिससे देश का सन्तुलन संखलित हो जाएगा।

(ii) यदि देश सभी तरह से सुदृढ़ हो, तब ही राज्य की स्वायत्तता सफल एवं सार्थक सिद्ध हो सकती है अन्यथा न तो भारतीय संघीय प्रभुसत्ता रह पाएगी और न ही राज्यों की स्वायत्तता ही रह सकेगी।

वर्तमान समय में राजनीतिक, आर्थिक स्थिरता के अभाव में राज्यों द्वारा अधिक स्वायत्तता की मांग करना अनुचित लगता है।

(iii) राज्य स्वायत्तता की लगातार बढ़ती मांग से राष्ट्रीय एकता पूरी तरह से खण्डित हो सकती है, क्योंकि आज स्वायत्तता की मांग करने वाले राज्य भविष्य में स्वतन्त्रता की माँग भी कर सकते हैं।

(iv) राज्यों की स्वायत्तता के माध्यम से कुछ स्वार्थी तत्त्व अपने निहित स्वार्थों की पूर्ति करना चाहते हैं। अतः राज्य स्वायत्तता की मांग तथाकथित क्षेत्रीय दल के स्वार्थी नेताओं की सुनियोजित राजनीतिक चाल ही कही जा सकती है। इस राजनीतिक चाल के द्वारा वे जनता के शुभचिन्तक होने का प्रदर्शन करते हैं ताकि जनमत उनके साथ हो जाए।

(v) स्वायत्तता प्राप्ति के पश्चात् राज्य निश्चित रूपेण विकसित हो सकेंगे, यह नहीं कहा जा सकता है। राज्यों में भीतरघात हो सकता है। राज्यों के अन्दर भी कुछ समुदाय स्वायत्तता की माँग कर सकते हैं। ऐसी स्थिति में राज्य विघटन नजर आने लगेगा तो देश सुदृढ़ कैसे रह सकता है। अतः स्वायत्तता की माँग उचित नहीं है।

1-4-विषय वास्तु का पुन: प्रस्तुतिकरण (Presentation of further Contents)

1-4-1-भारतीय संघवाद में उभरती मुख्य अभिवृत्तियां (Emerging Main Trends in Indian Federalism) -

समय-समय पर उत्पन्न हुई नवीन परिस्थितियों ने भारत की समस्त राजनीतिक प्रणाली एवं भारतीय संघवाद की कार्यप्रणाली के अनेक पक्षों को प्रभावित किया है। इन प्रभावों के कारण भारतीय संघवाद में नवीन प्रवृतियाँ उभरती रही हैं। इनमें से कुछ मुख् प्रवृत्तियों का वर्णन निम्नलिखित है। -

- **केन्द्र एवं राज्यों में राजनीतिक एकरूपता का पतन (Decline of Political Homogeneity between the Centre and the States):-** भारतीय संघात्मक व्यवस्था में सन् 1967 तक के काल को केन्द्र व राज्यों के बीच राजनीतिक एकरूपता के नाम से जाना जाता है, क्योंकि सन 1967 तक केन्द्र तथा सभी राज्यों में काँग्रेस की सरकारें थीं। केन्द्र और राज्यों में एक ही दल की सरकार होने के कारण राजनीतिक एकरूपता थी और केन्द्र-राज्य संबंधों में मधुरता थी। लेकिन इससे केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिला। सनु 1967 में चौथे आम चुनाव हुए। इन चुनावों में यद्यपि केन्द्र में काँग्रेस की सरकार बनी, लेकिन कई राज्यों में गैर-कांग्रेसी सरकारें भी अस्तित्व में आई। इस तरह चौथे आम चुनाव से भारतीय राजनीति में आए परिवर्तनों के परिणामस्वरूप केन्द्र में काँग्रेस की सरकार और राज्यों में गैर-कौंग्रेस की सरकारें बनने से केन्द्र-राज्य संबंधों का नया समीकरण शुरू हुआ। इस तरह काँग्रेस पार्टी का एकाधिकार समाप्त हो गया। 1971 में हए मध्यावधि चुनावों में काँग्रेस पार्टी को भारी विजय प्राप्त हुई। सन् 1972 में जिन राज्यों में चनाव हुए वहां भी काँग्रेस पार्टी को अच्छी सफलता प्राप्त हुई और पार्टी की सरकार बनी। इस प्रकार काँग्रेस पार्टी की वही स्थिति हो गयी जो सन 1967 से पहले बनी हई थी। यद्यपि सभी राज्यों में काँग्रेस पार्टी की सरकार नहीं थी, लेकिन अधिकांश राज्यों में काँग्रेस पार्टी की सरकार बनने से काफी हद तक राजनीतिक एकरूपता पाई जाती थी। सन् 1977 में पहली बार केन्द्र में गैर-कांग्रेसी सरकार का गठन हुआ।। सन् 1977 से सन् 1980 के बीच केन्द्र तथा कई राज्यों में जनता पार्टी की सरकार बनी, लेकिन शीघ्र ही जनता पार्टी की सरकार का पतन हो गया और सन् 1980 में हुए लोकसभा चुनावों में काँग्रेस पार्टी को भारी विजय प्राप्त हुई और पुनः इंदिरा गाँधी के नेतत्व में काँग्रेस सरकार का गठन हुआ। इस तरह अब तक अधिकांश राज्यों में काँग्रेस पार्टी की सरकारें थी जिसके परिणाम स्वरूप पुनः राजनीतिक एकरूपता के अंश देखे जा सकते थे। सन् 1989 के आम

चुनावों में काँग्रेस पार्टी की पराजय हुई और राष्ट्रीय मोर्चा की गठबन्धनवादी सरकार का निर्माण हुआ। यद्यपि 1991 में पुनः केन्द्र में कांग्रेस के नेतृत्व में सरकार बनी तत्पश्चात सन 1996; 1998 एवं 1999 के लोकसभा चुनाव में कांग्रेस को पराजय का सामना कर सत्ता से बाहर होना पड़ा। यद्यपि अप्रैल-मई, 2004 में हुए 14वीं और अप्रैल-मई, 2009 में हुए 15वीं लोकसभा के चुनावों के पश्चात केन्द्र में संयक्त प्रगतिशील गठबन्धन (United Progressive Alliance) की सरकार बनी जिसमें लगभग 10 अन्य राजनीतिक दल शामिल थे। परन्तु अनेक राज्यों में इस गठबन्धन के विरोधी दलों की सरकारें भी रहीं। इस तरह 1989, 1991, 1996, 1998, 1999, 2004 तया 2009 के चनाव परिणामों से यह बात उभरकर सामने आई कि भारत में गठबन्धन की राजनीति (Coalitional Politics) जड़ें जमा चुकी है और आने वाले समय में भी इस तरह की राजनीति का प्रतिमान भारतीय राजनीति का एक विशिष्ट लक्षण रहेगा। अत: अब केन्द्र और राज्यों में एक ही दल की सरकारें स्थापित होने की सम्भावना बहुत कम हो गई है। इस तरह कहा जा सकता है कि भारतीय संघवाद में केन्द्र सरकार और राज्य सरकारों में राजनीतिक एकरूपता के असतित्व की प्रवृत्ति का पतन हो रहा है क्योंकि काँग्रेस अपनी एकाधिकार वाली स्थिति कायम नहीं रख सकी है।

- **अनुच्छेद 356 के दुरुपयोग के प्रति प्रतिक्रिया (Reaction against misuse of Article 356):-** भारतीय संविधान के अनुच्छेद **356** के द्वारा यह प्रावधान किया गया है कि यदि राष्ट्रपति को यह विश्वास हो जाए कि किसी राज्य की संवैधानिक मशीनरी असफल हो गई है तो राष्ट्रपति राज्यपाल की रिपोर्ट मिलने पर या अन्य विश्वस्त सूत्रों से ज्ञात होने पर संबंधित राज्य की सरकार को बर्खास्त करके वहाँ पर राष्ट्रपति शासन लाग कर सकता है। यद्यपि यह व्यवस्था भारतीय राष्ट्रीय एकता की द्रष्टि से उचित मानी जाती है, लेकिन केन्द्र सरकार ने अधिकतर मामलों में इस

व्यवस्था का राजनीतिक उद्देश्यों के लिए प्रयोग किया है, जिसके परिणामस्वरूप यह अनुच्छेद बहुत अधिक विवादित रहा है। विशेष रूप से सन 1967 के बाद तो अनुच्छेद 356 का दुरुपयोग बहुत अधिक बढ़ गया। इसलिए राज्य सरकारों, राजनीतिक दलों, बुद्धिजीवियों, विचारकों आदि द्वारा अनुच्छेद 356 का राजनीतिक उद्देश्यों के लिए प्रयोग करने की आलोचना की गई है। लेकिन बदलते हुए राजनीतिक वातावरण में अनुच्छेद 356 क विरुद्ध एक नई प्रवृत्ति उभरकर सामने आई है। यद्यपि विशेषकर भारत में सन 1989 के बाद उभरी गठबन्धनात्मक राजनीति के कारण अनुच्छेद 356 का दुरुपयोग सीमित हो गया है क्योंकि अब केन्द्र सरकार के निर्माण में क्षेत्रीय दलों की भागीदारी बहुत अधक बढ़ गई है। इसलिए अब एक दल की राजनीतिक प्रमुखता समाप्त हो जाने और भिन्न-भिन्न राजनीतिक दलों की समझौतावादी राजनीति के कारण अनुच्छेद 356 का प्रयोग उतनी आसानी से सम्भव नहीं है, जितना कि एक ही राजनीतिक दल की प्रमुखता के समय प्रायः होता रहा है। जैसाकि तत्कालीन राष्ट्रपति ने अक्तुबर, 1997 में उत्तर प्रदेश और सितम्बर, 1998 में विहार में अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत राष्ट्रपति शासन लागू करने की केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल की सिफारिश को स्वीकार नहीं किया था। इस तरह वर्तमान राजनीतिक परिस्थितियों में जो प्रतिक्रिया उसके विरुद्ध उठी है इससे यह स्पष्ट हो गया है कि अब केन्द्र सरकार इतनी आसानी एवं अत्यधिक स्वतन्त्रता से अपने राजनीतिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए इस अनुच्छेद का दुरुपयोग नहीं कर पाएगी और भारतीय संघात्मक ढाँचे को मनमाने तरीके से एकात्मकता की ओर भी नहीं ले जा पाएगी।

- **क्षेत्रीय दलों की बढ़ती भूमिका एवं केन्द्र सरकार में उनकी भागीदारी (Increasing Role of Regional Parties and their Participation in Central Government):-** यद्यपि 1967 तक कांग्रेस पार्टी का प्रमुख होने के कारण क्षेत्रीय दलों का कोई विशेष प्रभाव नहीं था, परन्तु 1967

में हुए चौथे आम चुनावों के बाद कई राज्यों में क्षेत्रीय दत्तों की सरकार बनने के कारण क्षेत्रीय दलों का महत्त्व बढ़ने लगा। सन् 1977 के चुनावों में क्षेत्रीय दलों के महत्त्व में और वृद्धि हुई क्योंकि कई क्षेत्रीय दल केन्द्र में सत्तारूढ़ जनता पार्टी के घटक दल थे। सन् 1984 में तो मुख्य विपक्षी पार्टी एक क्षेत्रीय पार्टी तेलुगू देशम् ही थी। सन् 1989 में बी० पी० सिंह के नेतृत्व में बनी राष्ट्रीय मोर्चा की सरकार भी क्षेत्रीय दलों के सहयोग से बनी थी। सन् 1991 में लोकसभा के चुनावों के अवसर पर कई राष्ट्रीय दलों ने क्षेत्रीय दलों के साथ गठबन्धन किया। सन् 1991 में कांग्रेस पार्टी ने प्रमुख क्षेत्रीय दल अन्नाद्रमुक के बाहरी समर्थन से सरकार बनाई थी जून, 1996 में एच० डी० देवगौड़ा के नेतृत्व में बनी संयुक्त मोर्चा सरकार में कुल 13 दल सम्मिलित थे जिनमें से 14 राष्ट्रीय और 9 क्षेत्रीय दल थे। मार्च, 1998 में अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व वाली सरकार में 12 दल सम्मिलित थे जिनमें 15 क्षेत्रीय द शामिल थे अक्तूबर, 1999 में बनी राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबन्धन (N.D.A.) सरकार में कुल 24 राजनीतिक दलों में से केवल एक राष्ट्रीय एवं अन्य अधिकतर क्षेत्रीय दल सम्मिलित हुए। 14वीं लोकसभा चुनावों के बाद 22 मई, 2004 को संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (United Progressive Alliance) की सरकार डॉ० मनमोहन सिंह के नेतृत्व में बनी थी। उस सरकार में 19 राजनीतिक दलों के प्रतिनिधि शामिल हुए थे जिसमें क्षेत्रीय दलों की भूमिका प्रमुख थी। 15वीं लोकसभा चुनावों के बाद 22 मई, 2009 में संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन की सरकार डॉ० मनमोहन सिंह के नेतृत्व में बनी, जिसमें 8 क्षेत्रीय दल शामिल थे। 16वीं लोकसभा चुनाव 2014 के बाद एन० डी० ए० की भाजपा नेतृत्व वाली सरकार 26 मई, 2014 को गठित हुई जिसमें 12 क्षेत्रीय सम्मिलित हैं। यद्यपि चुनाव पूर्व गठबन्धन में 25 दल सम्मिलित थे जिनमें **12** दलों को किसी भी सीट पर विजय हासिल नहीं हुई। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि वर्तमान नवगठित सरकार में जहाँ एन०डी०ए० को 337 सीटें प्राप्त हुई हैं। वहीं भाजपा 282

लोकसभा सीटों के साथ स्पष्ट बहुमत के साथ पिछले तीन दशक बाद उभरने वाली प्रथम पार्टी है परन्तु एन० डी० ए० की कुल 337 प्राप्त सीटों में क्षेत्रीय या राज्य स्तरीय दलों की संख्या भी 12 है जोकि 17वीं लोकसभा चुनाव के बाद भी भाजपा 303 लोकसभा सीटों के साथ स्पष्ट बहुमत प्राप्त करने पर भी एन०डी०ए० की कुल 355 सीटों में 12 क्षेत्रीय दल भी सम्मिलित हैं। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि भारतीय राजनीति में क्षेत्रीय दलों का प्रभाव अब भी बना हुआ है। इस तरह केन्द्र सरकार में क्षेत्रीय राजनीतिक दलों की सहभागिता ने भारतीय संघवाद की कार्यप्रणाली में न केवल क्षेत्रीय दलों की भूमिका में वृद्धि की है बल्कि उनकी सत्ता में भागीदारी का भी विस्तार राज्यों में भी हुआ है जिसके परिणामस्वरूप क्षेत्रीय दलों के बढ़ते हुए महत्त्व को अब राष्ट्रीय दल भी समझ चुके हैं। जब किसी भी राष्ट्रीय दल के लिए आम चुनावों से स्पष्ट बहुमत प्राप्त करना कठिन कार्य है। यही कारण है कि राष्ट्रीय दलों को क्षेत्रीय दलों के साथ चुनावी गठबन्धन करने पड़ रहे हैं। राष्ट्रव्यापी प्रभाव रखने वाली भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस पार्टी एवं भारतीय जनता पार्टी भी अब क्षेत्रीय दलों से गठजोड़ करने पर बाध्य हैं। इस प्रकार क्षेत्रीय दलों की बढ़ती हुई भूमिका ने राजनीतिक एकाधिकारवाद की प्रवृत्ति को तोड़ने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है और गठबन्धनात्मक राजनीति को भी बढ़ावा दिया है। इससे भारतीय संघीय अवस्था में राजनीति बहुलवाद की प्रवृत्ति निरन्तर बनी हुई है।

- **राज्यों के लिए अधिक स्वायत्तता की माँग (Demand for More Autonomy to the States):** -भारतीय संघात्मक व्यवस्था में एक अन्य प्रवृत्ति विशेषकर 1967 के बाद यह उभरकर सामने आई है कि राज्यों ने अधिक शक्तियों की मांग करनी शुरू कर दी है। क्षेत्रीय दलों के बढ़ते हुए महत्त्व और केन्द्र सरकार में भागीदारी होने के कारण यह मांग और अधिक बढ़ गई है। क्षेत्रीय दलों की

माँग है कि भारत एक संधात्मक राज्य है और इसलिए संघ की इकाइयों को अपने कार्यक्षेत्र में अधिक स्वायत्तता या स्वतन्त्रता दी जानी चाहिए।

- **भारतीय संघ में नए राज्यों की माँग (Demand for New States in Indian Federation)-** भारत के अलग-अलग क्षेत्रों के लोगों द्वारा पृथक राज्य निर्माण की मांग काफी लम्बे समय से की जा रही है। भारत में प्रारम्भ से ही जाति, भाषा, धर्म तथा आर्थिक पिछड़ेपन को लेकर विभिन्न क्षेत्रों द्वारा पृथक राज्य की मांग समय-समय पर उठाई गई तथा इसके लिए आन्दोलन किए गए। सन् 1953 में भाषायी आन्दोलन के परिणामस्वरूप आन्ध्र प्रदेश राज्य की स्थापना की गई, जिसके कारण देश के विभिन्न भागों से भाषा के आधार पर राज्यों का पुनर्गठन करने की मांग जोर पकड़ने लगी। 1953 में एक राज्य पुनर्गठन आयोग (States Re-organisation Commission) की नियुक्ति की इस आयोग की रिपोर्ट के आधार पर संसद द्वारा राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956 (States Re-organisation Act, 1956) पास किया गया, जिसके अनुसार भारत में भाषा के आधार पर 14 राज्यों का गठन किया गया, परन्तु उससे भी समस्या पूर्ण रूप से हल नहीं हुई और थोड़े ही समय के बाद इस प्रकार की अन्य माँगें सामने आई। सन 1960 में बम्बई राज्य का विभाजन करके दो राज्यों गुजरात तथा महाराष्ट्र की स्थापना हुई। पंजाब में अकाली दल के आन्दोलनों के कारण सन् 1966 में पंजाब का विभाजन करके पंजाब तथा हरियाणा राज्यों की स्थापना हुई। इसी तरह नवम्बर 1999 में उत्तर प्रदेश के क्षेत्र में उत्तराखण्ड (Uttarakhand), बिहार के क्षेत्र में झारखण्ड (Jharkhand) और मध्यप्रदेश के क्षेत्र में छत्तीसगढ़ (Chhattisgarh) आदि राज्यों का निर्माण किया गया था। इसी श्रृंखला में सन् 2014 में आन्ध्र प्रदेश के क्षेत्र में से तेलंगाना के रूप में नए राज्य का निर्माण किया गया है। इस तरह तेलंगाना के रूप में हुए नए राज्य के निर्माण से भारतीय संघ के राज्यों की संख्या 29 तथा संघीय प्रदेशों की संख्या 7 हो गई

थी,जम्मू-कश्मीर पुनर्गठन विशेषक अगस्त, 2019 में पारित होने के बाद जम्मू-कश्मीर एवं लद्दाख के रूप में दो नए केन्द्र शासित प्रदेशों का गठन करने पर भारत संघ में कुल राज्य 28 एवं केन्द्र शासित प्रदेशों की संख्या 8 हो गई है। इस तरह इन नए राज्यों के बनने से दूसरे क्षेत्रों के लोगों की तरफ से पृथक् राज्य बनाने की माँग और अधिक तेज हो गई। देश के विभिन्न भागों जैसे महाराष्ट्र में विदर्भ (Vidarbha), कर्नाटक में कोडवा (Kodava), असम में बोडोलैंड (Bodoland), पश्चिम बंगाल में गोरखालैंड (Garkhaland), उत्तर प्रदेश में हरित प्रदेश (Harit Pradesh) और बुंदेलखण्ड (Bundelkhand) आदि राज्य बनाने की माँग में काफी तेजी आई है। इसीलिए देश में कुछ लोगों द्वारा राज्यों का पुनर्गठन करने के लिए एक नए आयोग की माँग भी की जा रही है। इस तरह स्पष्ट है कि भारतीय संघवादी ढाँचे में नए राज्यों की नित्य बढ़ती मांग एवं आन्दोलनों ने एक नई समस्या उत्पन्न की है।

- **राज्यों के लिए राजस्व के स्रोत बढ़ाने की माँग(Demand for the increase of Resources of Revenue for States):-** संविधान द्वारा जिस प्रकार शासन की शक्तियों का केन्द्रीय सरकार तथा राज्य सरकारों में विभाजन किया गया है, उसी प्रकार उनमें आय के स्रोतों का भी विभाजन किया गया है। संघात्मक व्यवस्था की सफलता के लिए केन्द्र व राज्यों में वित्त का समुचित विभाजन आवश्यक माना जाता है। परंतु वित्तीय क्षेत्र में राज्यों की शक्तियों काफी सीमित हैं। जबकि राज्यों को अपने विकास कार्यों के लिए अधिक धन की आवश्यकता पड़ती है। यद्यपि केन्द्र सरकार राज्यों को वित्तीय सहायता देती है, परन्तु जिन राज्यों में विरोधी दलों की सरकार होती है, केन्द्रीय सरकार प्रायः उन राज्यों के साथ भेदभाव करती है, जिससे उन राज्यों का विकास रुक जाता है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद-282 के अन्तर्गत केन्द्र सरकार को राज्य को अपनी आय में से अनुदान देने का अधिकार प्राप्त है। आलोचकों का मत है कि केन्द्र सरकार अनुदान देते समय

कई प्रकार की शर्तें लगा देती है। इसी बात को ध्यान में रखकर मार्च, 1989 में कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु तथा पाण्डिचेरी के मुख्यमंत्रियों द्वारा बनाई गई परिषद् ने यह मांग उठाई थी कि केन्द्र राज्यों को जो वित्तीय सहायता प्रदान करता है, उसे एक निश्चित कानून द्वारा नियमित किया जाना चाहिए। लगभग सभी राजनीतिक दल इस बात का समर्थन करते हैं कि राज्यों को अधिक वित्तीय संसाधन उपलब्ध करवाए जाने चाहिए ताकि उन्हें अपनी विकासकारी योजनाओं के लिए केन्द्र की दया पर निर्भर न रहना पड़े।

- **केन्द्र एवं राज्यों के सम्बन्धों के पुनर्निर्धारण की माँग (Demand for the Re-organisation of Centre-States Relations):-**भारतीय संधात्मक व्यवस्था में केन्द्रीयकरण की बढ़ती प्रवृत्ति की प्रतिक्रिया के कारण यह माँग जोर पकड़ने लगी कि केन्द्र तथा राज्यों में सम्बन्धों की पुनर्समीक्षा की जाए। इस सम्बन्ध में इस तथ्य पर अधिक बल दिया जाए कि भारतीय संघवाद प्रणाली में राज्यों की स्थिति को शक्तिशाली बनाने की नितान्त आवश्यकता है। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि इस सम्बन्ध में राज्यों को अधिक शक्तिशाली बनाने वाले पक्षकारों का कहना है कि केवल रक्षा, विदेश मामले, संचार, मुद्रा जादि राष्ट्रीय महत्व के विषय केन्द्रीय सरकार के पास होने चाहिए और अन्य शेष विषय राज्य सरकारों को दिए जाने चाहिए। केन्द्र-राज्य सम्बन्धों की पुनर्समीक्षा हेतु गठित सरकारिया आयोग ने भी केंद्र-राज्य संबंधों में सुधार हेतु अनेक सुझाव दिए जिनका उल्लेख हमने पहले भी किया है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि वर्तमान में संघात्मक व्यवस्था के सुव्यवस्थित संचालन के लिए केन्द्र-राज्य सम्बन्धों को पुनर्समीक्षा एवं आवश्यक सुझावों से व्यावहारिक रूप देना अपरिहार्य हो गया है। इस जावश्यकता के अन्तर्गत ही सरकारिया आयोग के बाद केन्द्र सरकार द्वारा अप्रैल, 2007 में केन्द्रराज्य सम्बन्धों की समीक्षा करने एवं सुझाव देने के लिए एक नए आयोग का गठन किया गया है।

- **क्षेत्रवाद को बढ़ावा (Encouragement to Regionalism):-** भारतीय संघवाद में क्षेत्रवाद की प्रवृत्ति मी निरन्तर बढ़ती जा रही है जिसके परिणामस्वरूप क्षेत्रीय दलों का भी विकास हुआ है। इस तरह आज भारतीय राजनीति में क्षेत्रीय दलों का निरन्तर हो रहा विकास भी एक तरह से संकीर्ण क्षेत्रीय भावनाओं का प्रत्यक्ष प्रमाण कहा जा सकता है। जैसे पंजाब में शिरोमणि अकाली दल, असम में असम गण परिषद्, तमिलनाडु में डी० एम० के०, आन्ध्र प्रदेश में तेलुगू देशम्, जम्मू एवं कश्मीर में नेशनल कॉन्फ्रेंस, महाराष्ट्र में शिवसेना, हरियाणा में इण्डियन नेशनल लोकदल आदि प्रमुख क्षेत्रीय दल हैं। इसके अतिरिक्त अन्य राज्यों में भी क्षेत्रीय दलों की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। भारतीय राजनीति में उभरी गठबन्धन सरकार में क्षेत्रीय दलों की बढ़ती महत्ता के कारण ये दल निरन्तर केन्द्रीय सरकार पर क्षेत्रीय हितों की पूर्ति करने का दबाव बनाते हैं। इसके अतिरिक्त भारतीय राजनीति में क्षेत्रीयवाद की अभिव्यक्ति केन्द्र व राज्यों के बीच उत्पन्न हुए विवादों से भी हुई है। राज्य ने कई बार केन्द्र के निर्देशों तथा सुझावों को मानने से इन्कार कर दिया है। सन् 1968 में केन्द्रीय कर्मचारियों की हड़ताल का सामना करने के लिए केन्द्र ने राज्यों को निर्देश दिए। केरल की वामपंथी सरकार ने इस निर्देश को श्रमिक विरोधी कहकर इसे मानने से इन्कार कर दिया था। उसी वर्ष ही पश्चिम बंगाल के दार्जिलिंग तथा नक्सलवादी क्षेत्रों में होने वाले उपद्रवों से चिन्तित होकर केन्द्रीय सरकार ने इन क्षेत्रों में लोगों द्वारा हथियार रखने पर प्रतिबन्ध लगा दिया जिसे राज्य सरकार ने केन्द्र द्वारा राज्यों के क्षेत्र में हस्तक्षेप बतलाया। केन्द्र द्वारा राज्यों में केन्द्रीय रिजर्व पुलिस भेजने का कई राज्यों द्वारा कड़ा विरोध किया गया। इसी प्रकार कई बार केन्द्र से अधिक धन प्राप्त करने के लिए भी राज्यों ने केन्द्र के विरुद्ध संघर्ष का रुख अपनाया है। इस प्रकार राज्यों द्वारा केन्द्र के निर्देशों का पालन न करना वा केन्द्र की नीति का विरोध करना

क्षेत्रीयवाद की नीति का उदाहरण है। अतः भारत में बढ़ती क्षेत्रवाद की प्रवृत्ति भी सुव्यवस्थित संघात्मक व्यवस्था के संचालन में एक चुनौती का कार्य कर रही है।

1-4-2-नीति आयोग (NITI Aayog)

1950 में योजना आयोग का गठन हुआ। देश के पहले प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू इसके पहले अध्यक्ष थे। इसका कार्य देश में उपलब्ध संसाधनों का आंकलन करना और पंचवर्षीय योजनाएं तैयार करना था। इनकी जरूरत के हिसाब से उन संसाधनों का आवंटन करना था। योजना आयोग में केंद्र की भूमिका रहती थी लेकिन वर्तमान में सहकारी संघवाद की आवश्यकता है जिसमें केंद्र और राज्य दोनों की भूमिका हो क्योंकि जितने भी उद्देश्य हैं उनको केवल केंद्र पूरा नहीं कर सकती,इसलिए राज्यों के योगदान की आवश्यकता है । केंद्र और राज्य मिलकर जब योजनाएँ बनाते हैं तो केंद्र व राज्यों को लक्ष्यों की प्राप्ति आसन हो जाती है इसी उद्देश्य को पूरा करने के लिए नीति आयोग की स्थापना की गई। सरकार द्वारा 2014 में योजना आयोग को भंग कर इसके स्थान पर नीति आयोग की स्थापना की घोषणा की गई। 1 जनवरी 2015 नीति आयोग अर्थात राष्ट्रीय भारत परिवर्तन संस्थान यानी नेशनल इंस्टीट्यूट फॉर ट्रांसफॉर्मिंग इंडिया (National Institute for Transforming India)। की स्थापना की की गई,। योजना आयोग की तरह भारत सरकार के केंद्रीय मंत्रिमंडल द्वारा बनाया गया है, इसलिए यह ना तो संवैधानिक है, ना ही वैधानिक है यह एक गैर संवैधानिक निकाय हैं।

नीति आयोग भारत सरकार का "थिंक टैंक" है जो निदेशकीय एवं नीतिगत दोनों प्रकार की सलाह प्रदान करता है तथा यह भारत सरकार के लिए रणनीतिक एवं दीर्घकालीन नीतियों का ड्राफ्ट तैयार करता है एवं केंद्र व राज्य को प्रासंगिक तकनीकी सलाह देता है।

1-4-3-नीति आयोग की स्थापना के करण (Reasons for the establishment of NITI Aayog):

- भारत पिछले कई दशकों से राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, टेक्नोलॉजी, जनसांख्यिकी आदि बदलाव से गुजर रहा है तथा इसी दौर में राष्ट्रीय विकास में सरकार की भूमिका भी बदली है।
- इसी बदलाव को ध्यान में रखते हुए जनता की आवश्यकता व आकांक्षाओं की पूर्ति बेहतर ढंग से करने के उद्देश्य से भारत सरकार ने योजना आयोग को बदलकर नीति आयोग की स्थापना की है।
- नीति आयोग निजी क्षेत्र की भागीदारी को भी बढ़ावा दे रहा है नई संस्था विकासात्मक प्रक्रिया के लिए भारत सरकार के सीमित दायरे से बाहर जाकर विकास के प्रति एक समग्र दृष्टि अपनाते हुए एक सामर्थ्य पूर्ण वातावरण बनाएगी।
- राष्ट्रीय विकास में राज्य की बराबर की भागीदारी होगी ।

- नीति आयोग ज्ञान केंद्र जो कि सुशासन के सर्वोत्तम प्रचलनों के कोष के रूप में एक थिंक टैंक के रूप में कार्य करते हुए सरकार के सभी स्तरों पर ज्ञान व रणनीतिक विशेषज्ञता प्रदान करेगा।
  - यह कार्यान्वयन संभव बनाने वाला एक सहयोगी मंच है, जो केंद्र और राज्यों के विभिन्न मंत्रालयों को एक साथ लाकर विकासात्मक लक्ष्यों को साझे प्रयत्नों से पूर्ति करेगा।
  - यह केंद्र और राज्यों को धरातल पर लाएगा ताकि हमारे जो उद्देश्य हैं उन को हासिल करने में मदद करेगा।

1-4-4-नीति आयोग की संरचना (Structure of NITI Aayog):-

नीति आयोग का अध्यक्ष प्रधानमंत्री हैं। इसमें एक उपाध्यक्ष होता है, जिसकी नियुक्ति प्रधानमंत्री करते हैं। एक मुख्य कार्यकारी अधिकारी यानी सीईओ होता है। उसकी भी नियुक्ति प्रधानमंत्री करता है। यह केंद्र में सचिव स्तर का अधिकारी होता है। इसके अलावा आयोग में पूर्णकालिक सदस्य होते हैं।

अंशकालिक सदस्य होते हैं और पदेन सदस्य होते हैं। जिनमें चार सदस्यों को प्रधानमंत्री खुद कैबिनेट से नामित करते हैं। इसके अलावा आमंत्रित सदस्य भी रखे जाते हैं। ये वे लोग होते हैं, जो अपने क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य कर चुके होते हैं।

अध्यक्ष :- भारत का प्रधानमंत्री (पदेन)

उपाध्यक्ष :- प्रधानमंत्री द्वारा नामित ।

मुख्य कार्यकारी अधिकारी(CEO) /सचिव :- एक निश्चित कार्यकाल के लिए प्रधानमंत्री द्वारा नियुक्त, भारत सरकार के सचिव पद के समकक्ष ।

विशेष आमंत्रित सदस्य - प्रधानमंत्री द्वारा नामित विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञ जिनके पास संबंधित क्षेत्र में विशेष ज्ञान एवं योग्यता हो ।

पूर्णकालिक सदस्य :- इनकी नियुक्ति प्रधानमंत्री द्वारा की जाती है कार्यकाल निश्चित नहीं है तथा उनका दर्जा भारत सरकार के राज्यमंत्री के बराबर होता है ।

पदेन सदस्य :- प्रधानमंत्री द्वारा नामित केंद्रीय मंत्री परिषद के अधिकतम 4 सदस्य ।

अंशकालिक सदस्य / तदर्थ सदस्यता :- अग्रणी विश्वविद्यालय ,अनुसंधान संस्थान से बारी बारी से अधिकतम 2 पदेन सदस्य ।

संचालन परिषद् / अधिशासी परिषद (Governing Council) : - सभी राज्यों के मुख्यमंत्री , संघ राज्य क्षेत्रों के उपराज्यपाल , जिन केंद्र शासित प्रदेशों में विधानसभा है वहां के मुख्यमंत्री शामिल होंगे।

क्षेत्रीय परिषद :- विशिष्ट क्षेत्रीय मुद्दों को संबोधित करने के लिए प्रधानमंत्री या उसके द्वारा नामित व्यक्ति संबंधित राज्यों के मुख्यमंत्रियों और उपराज्यपालो की बैठक की अध्यक्षता करता है ।

1-4-5-नीति आयोग के लक्ष्य (Objectives of NITI Aayog): -

(i) -राष्ट्रीय उद्देश्य के संबंध में राज्यों की सक्रिय सहभागिता से राष्ट्रीय विकास को प्राथमिकता देना एवं रणनीति के साथ मिलकर काम करना, यानी केंद्र और राज्यों द्वारा मिलकर विकास की प्राथमिकता तय करना जिसमें राज्यों की सक्रिय सहभागिता होनी चाहिए।

(ii) सहकारी संघवाद को बढ़ावा देना यह मानते हुए की "मजबूत राज्य ही मजबूत देश का निर्माण" कर सकते हैं।

(iii) ग्राम स्तर पर बेहतर काम करना यानी "नीचे से ऊपर" की ओर विकास करना।

(iv) इसे जो भी विषय दिए जाते हैं जैसे आर्थिक, रणनीति एवं नीति में राष्ट्रीय सुरक्षा हित शामिल रहे।

(v) हमारे समाज में उन वर्गों का विशेष रूप से ध्यान रखना जो आर्थिक प्रगति से पर्याप्त रूप से लाभान्वित नहीं हुए हैं।

(vi) जो रणनीति व दीर्घकालीन नीतियां है उनका ड्राफ्ट तैयार करना कि यह किस तरह काम करेंगी ।

(vii) प्रमुख राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय समान सोच वाले थिंक टैंक, साथ ही जो शैक्षिक व रिसर्च संस्थान है उनके बीच साझेदारी को प्रोत्साहित करना।

(viii) राष्ट्रीय वह अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के जो Experts हैं उनके साथ साझेदारी के सहयोग के द्वारा ज्ञान, नवाचार आदि समन्वय बिठाना।

(ix) जो अलग-अलग विभाग हैं उनके लिए एक मंच के रूप में काम करना।

(x) जो धारणीय व सतत प्रणालियों के विकास के क्षेत्र में काम करना जैसे जलवायु परिवर्तन के हिसाब से कैसे सतत विकास होगा, हर योजना में पर्यावरण को कैसे लागू किया जाए, इस पर काम करना।

(xi) जो कार्यक्रम उनके कार्यान्वयन की समीक्षा करना।

(xii) Technology को Add करना क्योंकि टेक्नोलॉजी विकास के लिए अनिवार्य बन चुकी है।

(xiii) राष्ट्रीय विकास एजेंडे व उपर्युक्त उद्देश्यों के कार्यान्वयन के लिए जरूरी अन्य गतिविधियों को हाथ में लेना।

(xiv) नीति आयोग द्वारा 15 वर्षीय दृष्टिकोण, 7 वर्षीय मध्यकालिक रणनीति तथा 3 वर्षीय कार्य योजना का लक्ष्य रखा गया है ।

(xv) कृषि व उद्योगों में निवेश व तकनीक को बढ़ाना ।

(xvi) देश में गरीबी तथा बेरोजगारी को समाप्त करना ।

(xvii) शिक्षा व स्वास्थ्य स्तर में सुधार करना ।

1-4-6-नीति आयोग के कार्य क्या हैं (Functions of NITI Aayog): - **इसके कार्यों का को चार भागों में बांटा जा सकता है**: -

- नीति एवं कार्यक्रमों में फ्रेमवर्क बनाना
- सहकारी संघवाद को बढ़ावा देना
- सब की बातों को सुनना व उसका मूल्यांकन करना
- थिंक टैंक के रूप में काम करना (विचार समूह एवं ज्ञान व नवाचार केंद्र के रूप में कार्य करना।)

नीति आयोग निम्न के संबंध में कार्य करता है, कृषि, आंकड़ा प्रबंधन एवं विश्लेषण, ऊर्जा, वित्तीय संसाधन, विकास उद्योग, भूमि एवं जल प्रबंधन, नगरीकरण का प्रबंधन, शोध, प्रशासकीय परिषद सचिवालय, स्वास्थ्य, मानव संसाधन, प्राकृतिक संसाधन एवं पर्यावरण, एनजीओ दर्पण, परियोजना मूल्यांकन एवं प्रबंधन संभाग, सार्वजनिक-निजी भागीदारी, ग्रामीण विकास, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, कौशल विकास, सामाजिक न्याय, विकेंद्रीकरण, सतत विकास लक्ष्य, शैक्षिक कार्य को कोषांग, महिला व बाल विकास।

1-4-7-नीति आयोग के मार्गदर्शक सिद्धांत (Guiding principle of NITI Aayog):-

- **अंत्योदय: -**आसान भाषा में जो व्यक्ति अंतिम पंक्ति में खड़ा हो उसका भी कल्याण करना इसी सोच को ध्यान में रखकर नीति आयोग नीतियां बनाएगा।
- **समावेशिता: -** असुरक्षित व हाशियाकृत वर्गों को सशक्त बनाना, पहचान आधारित हर प्रकार के भेदभाव, लिंग, क्षेत्र, धर्म, जाति या वर्ग को समाप्त करना।
- **ग्राम: -** गांवों का विकास प्रक्रिया से जोड़ना, हमारे नैतिक बोध, संस्कृति की ताकत और ऊर्जा अर्जित करना।
- **जनसंख्यात्मक लाभांश: -**सबसे बड़ी परिसंपत्ति, भारतीय जन का उपयोग करना शिक्षा, कौशल विकास तथा उत्पादक आजीविका अवसरों के माध्यम से उनको सशक्तिकरण पर ध्यान देना।
- **जन सहभागिता: -**लोगों की भागीदारी को बढ़ाना।
- **सुशासन: -**खुले, पारदर्शी, उत्तरदायी, सक्रिय उद्देश्यपूर्ण शासन प्रणाली को बढ़ावा देना|
- **सततता: -**पर्यावरण के प्रति सम्मान रखना|

1-4-9-नीति आयोग और योजना आयोग में क्या अंतर है(Difference between policy commission and planning commission):-

(i) नीति आयोग एक सलाहकार थिंक टैंक के रूप में काम करता है जबकि योजना आयोग में इसका अभाव था।

(ii) नीति आयोग सदस्यों की व्यापक विशेषज्ञता पर जोर देता है जो कि योजना आयोग सीमित विशेषज्ञता पर निर्भर था।

(iii)नीति आयोग सहकारी संघवाद पर काम करता है क्योंकि इसमें राज्यों की समान भागीदारी सुनिश्चित की जाती है जबकि योजना आयोग में राज्यों की भागीदारी बहुत कम रहती थी।

(iv)नीति आयोग में प्रधानमंत्री द्वारा सचिवों को CEO के रूप में नियुक्त किया जाता है जबकि योजना आयोग में सचिवों की नियुक्ति सामान्य प्रक्रिया से होती थी।

(v) नीति आयोग "Bottom-up approach नीचे से ऊपर" पर काम करता है जबकि योजना आयोग "Top-down approach ऊपर से नीचे" पर काम करता था।

(vi)नीति आयोग में धन के बंटवारे की शक्तियां नहीं है जो कि वित्त मंत्रालय के अंतर्गत हैं जबकि योजना आयोग को मंत्रालयों और राज्य सरकारों को धन बांटने की शक्तियां प्राप्त थी।

(vii) योजना आयोग का कार्य पंचवर्षीय योजनाओं का निर्माण करना है । जबकि नीति आयोग कार्य पंचवर्षीय योजना का निर्माण करना नहीं है इसका कार्य केंद्र और राज्य को नीति निर्माण के संबंध में परामर्श उपलब्ध कराना है।

(viii) योजना आयोग में सचिवों को सामान्य प्रक्रिया के माध्यम से नियुक्त किया जाता था नीति आयोग में प्रधानमंत्री द्वारा नियुक्त सचिवों को CEO के रूप में नियुक्त किया जाता है। योजना आयोग में क्षेत्रीय मामलों के लिए क्षेत्रीय परिषद नहीं है नीति आयोग में क्षेत्रीय मामलों के लिए क्षेत्रीय परिषद है

1-4-10- नीति आयोग के सामने चुनौतियां (Challenges in front of NITI Aayog):-

- गरीबी को खत्म करना प्रत्येक भारतीय के लिए गरिमा पूर्ण जीवन देना,
- लैगिंक पूर्वाग्रह, जाति तथा आर्थिक विषमता के आधार पर उपजी असमानता का समाधान
- गावों को विकास की प्रक्रिया से जोड़ना,
- छोटे व्यवसायियों की प्रोडक्टिविटी को बढ़ाना ताकि रोजगार के अवसर ज्यादा बढ़े,
- अपने पर्यावरणीय व पारिस्थितिकी परिसंपत्ति की सुरक्षा करना।

- विकास प्रक्रिया से गाँवों को संस्थागत रूप से जोड़ना ।
- सभी पक्षों में महिला सशक्तिकरण ।
- युवाओं के लिए अवसर की समानता ।
- नागरिकों की जरूरतों का अनुमान कर प्रत्युत्तर के प्रति आगे बराबर सक्रियता दिखाना ।
- प्रौद्योगिकी के माध्यम पारदर्शिता स्थापित कर सरकार को दृष्टव्य एवं उत्तरदायी अथवा अनुक्रियात्मक बनाना।
- सभी समूहों की समावेशिता, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग एवं अल्पसंख्यकों पर विशेष ध्यान।
- जन-समर्थक एजेंडा जो कि समाज के साथ-साथ व्यक्ति की आकांक्षाओं की भी पूर्ति करता है।
- नागरिकों की संलग्नता के माध्यम से सहभागी होना।
- सभी समूहों की संलग्नता के माध्यम से सहभागी होना।

1-5-स्वयं प्रगति जाँच (Check your progress)

I. नीति आयोग का अंग्रेजी में पूरा नाम क्या है**?**

II. भारत में नीति आयोग के अध्यक्ष कौन हैं**?**

III. नीति आयोग की स्थापना कब हुई**?**

IV. किस सन् तक भारत में केवल एक ही दल की सरकार रही?

V. किस अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत राष्ट्रपति शासन लागू लागू किया जा सकता हैं?

1-6-सारांश (Summary)

साधारण शब्दों में, स्वायत्तता का अर्थ है कि किसी को भी अपने क्षेत्र में निर्वाय कार्य करने की स्वतन्त्रता अर्थात् आन्तरिक व बाह्य कार्य क्षेत्र में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप न होना। राज्यों के मामले में स्वायत्तता का अर्थ थोड़ा-सा भिन्न है। राज्यों की स्वायत्तता का अर्थ स्वतन्त्रता नहीं है, बल्कि इसका अर्थ है कि राज्यों को उनके मामलों में केन्द्रीय सरकार द्वारा किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए। राज्यों को शक्तियाँ संविधान द्वारा उपलब्ध कराई गई हैं और उन्हें उनका प्रयोग करने की पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए। 1950 में योजना आयोग का गठन हुआ। इसका कार्य देश में उपलब्ध संसाधनों का आंकलन करना और पंचवर्षीय योजनाएं तैयार करना था। इनकी जरूरत के हिसाब से उन संसाधनों का आवंटन करना था। योजना आयोग में केंद्र की भूमिका रहती थी लेकिन वर्तमान में सहकारी संघवाद की आवश्यकता है जिसमें केंद्र और राज्य दोनों की भूमिका हो क्योंकि जितने भी उद्देश्य हैं उनको केवल केंद्र पूरा नहीं कर सकती,इसलिए राज्यों के योगदान की आवश्यकता है । केंद्र और राज्य मिलकर जब योजनाएँ बनाते हैं तो केंद्र व राज्यों को लक्ष्यों की प्राप्ति आसन हो जाती है इसी उद्देश्य को पूरा करने के लिए नीति आयोग की स्थापना की गई। सरकार द्वारा 2014 में योजना आयोग को भंग कर इसके स्थान पर नीति आयोग की स्थापना की घोषणा की गई।1 जनवरी 2015 नीति आयोग अर्थात राष्ट्रीय भारत परिवर्तन संस्थान यानी नेशनल इंस्टीट्यूट फॉर ट्रांसफॉर्मिंग इंडिया (National Institute for Transforming India)। की स्थापना की की गई,। योजना आयोग की तरह भारत सरकार के केंद्रीय मंत्रिमंडल द्वारा बनाया गया है, इसलिए यह ना तो संवैधानिक है, ना ही वैधानिक है यह एक गैर संवैधानिक निकाय हैं। नीति आयोग भारत सरकार का "थिंक टैंक" है जो निदेशकीय एवं नीतिगत दोनों प्रकार की सलाह प्रदान करता है तथा यह भारत सरकार के लिए रणनीतिक एवं दीर्घकालीन नीतियों का ड्राफ्ट तैयार करता है एवं केंद्र व राज्य को प्रासंगिक तकनीकी सलाह देता है।

1-7-सूचक शब्द (Key Words)

I. **संवैधानिक**:-जिसका संविधान में जिक्र हो।

II. **वैधानिक**:-वैधानिक जो एक्ट द्वारा ना बनाया गया हो।

III. **अंत्योदय**:-आर्थिक रूप से कमज़ोर और पिछड़े वर्गों का उदय या विकास करने की क्रिया या भाव।

1-8-स्वयं समीक्षा हेतु प्रश्न (Self- Assessment Questions)

I. भारतीय संघवाद की उभरती प्रवृत्तियों का वर्णन कीजिये।

II. राज्य स्वायत्तता का क्या अर्थ है? इस मांग के उदय होने के प्रमुख कारण लिखिए।

III. राज्य स्वायत्तता से आप क्या समझते हैं? राज्य स्वायत्तता की मांग क्यों उदय हुई और इस माँग में क्या-क्या सम्मिलित है?

IV. राज्य स्वायत्तता का क्या अर्थ है? राज्य स्वायत्तता के पक्ष एवं विपक्ष में तर्क दीजिये।

V. नीति आयोग की संरचना व इसके उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।

1-9-उतर-स्वयं प्रगति जाँच (Answer to check your progress)

I. National Institution for Transforming India

II. भारत में नीति आयोग के अध्यक्ष प्रधानमंत्री होते हैं

III. 1 जनवरी 2015

IV. 1967

V. अनुच्छेद 356

1-10. संदर्भ ग्रन्थ/निर्देशित पुस्तके (References / Suggested Readings)

I. जैन, पुखराज, राजनीति विज्ञान, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।

II. आर.के. जैन, कला जैन, लक्ष्मीकांत त्रिपाठी, राजनीति विज्ञान, आरोही पब्लिकेशन्स, दिल्ली।

III. डॉ. सुरेश कुमार, सोमनाथ वर्मा, डॉ. गुलशन राय, जे. बी. डी प्रिंटिंग प्रेस, जालंधर ।

Subject: राजनीति विज्ञान	
Course Code: POLS.103	Author: Dr. Parveen Sharma
Lesson No.: 3	Vetter: Updated by:
अध्याय की संरचना-3 चुनाव आयोग चुनावी प्रक्रिया और इसके दोष और मतदान व्यवहार (Election commission, Electoral rocess and its defects and voting behaviour)	

1-1-अधिगम के उद्देशय (Learning Objectives)

1-2-परिचय (Introduction)

1-3-विषय वास्तु का प्रस्तुतिकरण (Presentation of Contents)

1-3-1-चुनाव आयोग का गठन (Composition of Election Commission)

1-3-2-चुनाव आयोग के कार्य (Functions of Election Commission)

1-3-3-भारत में चुनावों का महत्व (Importance of Elections in India)

1-4-विषय वास्तु का पुन: प्रस्तुतिकरण (Presentation of further Contents)

1-4-1-भारत में चुनाव प्रक्रिया (Election Process in India)

1-4-2-भारतीय चुनाव प्रणाली के दोष (Defects of the Indian Election System)

1-4-3-मतदान व्यवहार (Voting Behaviour)

1-4-3-1-भारत में मतदान व्यवहार को प्रभावित करने वाले तत्त्व (Factors Influencing the Voting Behaviour in India)

1-5-**स्वयं प्रगति जाँच** (Check your progress)

1-6-सारांश (Summary)

1-7-सूचक शब्द (Key Words)

1-8-स्वयं समीक्षा हेतु प्रश्न (Self-Assessment Questions)

1-9-उतर-स्वयं प्रगति जाँच (Answer to check your progress)

1-10-संदर्भ ग्रन्थ/निर्देशित पुस्तके (References/Suggested Readings)

1-अधिगम के उद्देशय (Learning Objectives)

- विद्यार्थीयों को भारत में चुनाव आयोग की संरचना का ज्ञान करवाना।
- विद्यार्थीयों को चुनाव आयोग के कार्य से अवगत करवाना।
- विद्यार्थीयों को भारत की चुनावी प्रक्रिया से अवगत करवाना।
- विद्यार्थीयों को भारत की चुनावी प्रक्रियके दोष और मतदान व्यवहारसे अवगत करवाना।

1-2-परिचय (Introduction)

चुनाव लोकतन्त्र के आधार है और जनता की इच्छा जानने के आवश्यक बैरोमीटर हैं। इनके माध्यम से साधारण नागरिक राज्य के प्रशासन में सक्रिय भाग ले सकते हैं। निर्वाचन जहाँ शासन और जनता को जोड़ने की आवश्यक कड़ी हैं, वहाँ वे लोकतान्त्रिक प्रक्रिया के आवश्यक अंग हैं। लोकतन्त्र के सफल संचालन के लिए आवश्यक है कि चुनाव निष्पक्ष और स्वतन्त्र हों, उनका संचालन निर्दलीय आधार पर हो और वे सत्तारूढ़ दल के प्रभाव से मुक्त हों। भारत में सार्वजनिक वयस्क मताधिकार द्वारा निष्पक्ष एवं स्वतन्त्र रूप से अपने प्रतिनिधियों के चयन के लिए भारतीय संविधान निर्माताओं ने संविधान का एक पूर्ण भाग 15 निर्वाचकों से ही सम्बद्ध किया है। भारतीय संविधान के भाग 15 में अनुच्छेद 324

से 329 तक निर्वाचकों के सम्बन्ध में विभिन्न संवैधानिक व्यवस्थाओं का प्रावधान किया गया है। भारत में निर्वाचन सम्बन्धी महत्वपूर्ण दायित्व के निर्वहन के लिए एक स्वतन्त्रता प्रशासकीय तन्त्र की व्यवस्था की गई है। यह प्रशासनिक तन्त्र ही निर्वाचन आयोग है।

स्वतन्त्रता से लेकर अब तक सम्पन्न हुआ 16 संसदीय निर्वाचनों तथा विभिन्न राज्य विधानसभाओं के निर्वाचनों को सम्पन्न कराने में निर्वाचन आयोग ने जिस क्षमता का परिचय दिया है। इससे स्पष्ट है कि आज की लोकतान्त्रिक शासन व्यवस्था में निर्वाचन ओर उसकी प्रक्रिया का काफी महत्वपूर्ण स्थान है। काका कालेलकर ने कहा है कि चुनाव से राष्ट्र का विधान शक्तिशाली होता है। अतः हमें लोकतन्त्र की रक्षा के लिए चुनावों की रक्षा करनी चाहिए।

1-3-विषय वास्तु का प्रस्तुतिकरण (Presentation of Contents)

1-3-1-चुनाव आयोग का गठन (Composition of Election Commission): -

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 324 में चुनाव व्यवस्था के अधीक्षण, निर्देशन एवं नियन्त्रण का कार्य भारत में संवैधानिक मान्यता प्राप्त, स्वतन्त्र एवं निष्पक्ष चुनाव आयोग को सौंपा है जिसमें एक मुख्य चुनाव आयुक्त व अन्य चुनाव आयुक्त हो सकते हैं, जिनकी नियुक्ति राष्ट्रपति करता है। संविधान के अनुच्छेद 324 में यह भी प्रावधान है कि मुख्य चुनाव आयुक्त की सलाह के लिए राष्ट्रपति द्वारा अन्य आयुक्तों की नियुक्ति की जा सकती है।

भारत में 25 जनवरी 1950 में पहली बार संविधान के अन्तर्गत एक सदस्यीय निर्वाचन आयोग का गठन किया गया, परन्तु केन्द्र की कांग्रेस सरकार ने 16 अक्तूबर, 1989 को राष्ट्रपति वेंकटरमन द्वारा अन्य दो निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति करवाते हुए निर्वाचन आयोग को पहली बार बहु-सदस्यीय आयोग बनाते हुए इसे व्यापक स्वरूप प्रदान किया, लेकिन 2 जनवरी, 1990 को राष्ट्रीय मोर्चे की

सरकार ने चुनाव आयोग को फिर से एक सदस्यीय बना दिया। 2 अक्तूबर, 1993 में भारत के राष्ट्रपति ने अध्यादेश जारी करके चुनाव आयोग में दो अन्य सदस्यों (एम.एस. गिल एवं जी.वी.जी. कृष्णामूर्ति) की नियुक्ति कर दी। 20 दिसम्बर, 1993 में संसद ने एक विधेयक पास करके चुनाव आयोग को बहु-सदस्यीय बना दिया और दो अन्य आयुक्तों को मुख्य निर्वाचन आयुक्त के बराबर दर्जा प्रदान किया गया। 14 जुलाई, 1995 को सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णय में अन्य दो आयुक्तों की स्थिति को मुख्य निर्वाचन आयुक्त की स्थिति के बराबर दर्जा देने को वैध ठहराया। अतः इस समय चुनाव आयोग बहु-सदस्यीय है और मुख्य चुनाव आयुक्त एवं अन्य दो चुनाव आयुक्तों की स्थिति बराबर है।

चुनाव आयोग का गठन निम्न लोगों को मिलकर होता है:-

मुख्य निर्वाचन आयुक्त: - अनु0 324 के खण्ड (2) के अनुसार एक मुख्य निर्वाचन आयुक्त होगा जिसे उपखण्ड (3) के अनुसार अध्यक्ष के रूप में जाना जायेगा।

अन्य निर्वाचन आयुक्त: - अनु0 324 के खण्ड (2) के अनुसार उतने अन्य निर्वाचन आयुक्त होंगे जितने राष्ट्रपति समय-समय पर नियत करें। खण्ड (2) के अनुसार मुख्य निर्वाचन आयुक्त तथा अन्य निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति राष्ट्रपति संसद द्वारा बनायी गयी विधि के अधीन करेगा।

प्रादेशिक निर्वाचन आयुक्त:-:- अनु0 324 के खण्ड (4) के अनुसार लोकसभा, राज्य की विधानसभा और विधान परिषद के निर्वाचन से पहले राष्ट्रपति निर्वाचन आयोग से सलाह लेकर उतने प्रादेशिक निर्वाचन आयुक्तों को नियुक्त कर सकेगा जितने वह उचित समझता है।

कर्मचारी: -अनु0 324 के खण्ड (5) के अनुसार निर्वाचन आयोग के अनुरोध पर राष्ट्रपति या राज्य का राज्यपाल निर्वाचन आयोग या प्रादेशिक आयुक्तों को उतने कर्मचारी उपलब्ध करायेगा जितने आवश्यक

हो। अनु0 324(2) के अधीन निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति एवं पदच्युति की शक्ति राष्ट्रपति में है और पद समाप्ति के आदेश को चुनौती नहीं दी जा सकती है।

योग्यताएँ - भारतीय संविधान में मुख्य निर्वाचन आयुक्त एवं अन्य आयुक्तों की नियुक्ति सम्बन्धी योग्यताओं का संविधान में कोई उल्लेख नहीं किया गया है अर्थात् इस सम्बन्ध में हमारा संविधान मौन है।

चुनाव आयोग का कार्यकाल भारतीय संसद ने सन् 1995 में चुनाव आयोग के कार्यकाल सम्बन्धी एक कानून पास किया है, जिसके अनुसार चुनाव आयुक्त का कार्यकाल 6 वर्ष होगा। इस कानून में यह भी व्यवस्था की गई है कि यदि चुनाव आयुक्त की आयु 6 वर्ष की अवधि से पहले 65 वर्ष की हो जाती है, तो वह अपने पद से अवकाश ग्रहण कर लेता है अर्थात् 6 वर्ष की अवधि या 65 वर्ष की आयु दोनों में से जो पहले पूरी हो, तब तक चुनाव आयुक्त अपने पद पर बने रहते हैं। विशेष परिस्थितियों में मुख्य चुनाव आयुक्तों की अवधि को बढ़ाया जा सकता है, जैसा कि श्री सुकुमार सेन व श्री एस.पी. सेन वर्मा का कार्यकाल 6 वर्ष से अधिक बढ़ाया गया था।

वेतन तथा सेवा शर्तें - चुनाव आयुक्तों के वेतन, भत्ते व सेवा शर्तें समय-समय पर संसद द्वारा निश्चित की जाती हैं। इनके वेतन व भत्ते भारत सरकार की संचित निधि में से दिए जाते हैं। निर्वाचन आयुक्तों के वेतन, भत्तों व सेवा शर्तों में इनके कार्यकाल में कटौती नहीं की जा सकती। 1 अक्तूबर, 1993 में संसद द्वारा पास किए गए एक विधेयक द्वारा चुनाव आयुक्तों को सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश के वेतन के समान वेतन दिए जाने की व्यवस्था कर दी गई अर्थात् वर्तमान में मुख्य चुनाव आयुक्त एवं अन्य आयुक्तों को 2,50,000 रूपए मासिक वेतन दिया जाता है।

1-3-2-चुनाव आयोग के कार्य (Functions of Election Commission)

निर्वाचन आयोग के निम्नलिखित कार्य हैं -

- **चुनाव प्रबन्ध, निर्देशन व नियन्त्रण**: - निर्वाचन आयोग का प्रमुख कार्य निष्पक्ष चुनाव करवाना है, इसलिए सम्पूर्ण चुनाव व्यवस्था निर्वाचन आयोग के अधीन है। यह चुनावों का प्रबन्ध, निर्देशन व नियन्त्रण करता है तथा चुनावों से सम्बन्धित समस्याओं का समाधान करता है। निर्वाचन आयोग लोकसभा, राज्यसभा एवं राज्यों की विधानसभाओं के निर्वाचन सम्बन्धी सभी प्रबन्ध करता है। इसके अतिरिक्त निर्वाचन आयोग मध्यावधि चुनाव एवं उप-चुनाव की भी व्यवस्था करता है।
- **मतदाता सूचियाँ तैयार करना:-** निर्वाचन आयोग चुनाव से पूर्व चुनाव-क्षेत्र के आधार पर मतदाता सूचियाँ तैयार करवाता है, जिसके लिए यथासमभव उन सभी व्यस्क नागरिकों को मतदाता सूची में सम्मिलित करने का प्रयास किया जाता है जो मतदाता बनने की योग्यता रखते हों। भारत में मतदान की आयु 21 वर्ष से घटाकर 61वें संशोधन के द्‌वारा 18 वर्ष करने पर मतदाताओं की संख्या में अत्यधिक वृद्धि हुई है; जैसे सन् 1991 के संसदीय चुनाव में मतदाताओं की संख्या 51.41 करोड़; 1996 में 59 करोड़, 1998 में 60 करोड़, 1999 में 670 करोड़, 1999 में 62 करोड़, 2004 में 67.5 करोड़, 2009 में 71 करोड़ 40 लाख तथा 2014 में हुए 16वीं लोकसभा चुनाव के समय मतदाताओं की संख्या लगभग 83 करोड़ 41 लाख थी। इस प्रकार प्रत्येक लोकसभा एवं राज्यों की विधानसभा के होने वाले चुनावों से पूर्व चुनाव आयोग मतदाता सूचियों को पूर्णतः अद्‌यतन करने का कार्य करता है।
- **चुनाव क्षेत्रों का परिसीमन करना:-** चुनाव आयोग चुनाव क्षेत्रों का परिसीमन करता है। भारतीय संसद द्‌वारा पारित भारतीय परिसीमन आयोग, 1952 के द्‌वारा यह व्यवस्था की गई कि प्रत्येक दस वर्ष के पश्चात् होने वाली जनगणना के पश्चात् क्षेत्रों का परिसीमन किया जाना चाहिए। निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन निर्वाचन आयोग की देख-रेख में होता है। परिसीमन आयोग का

अध्यक्ष मुख्य निर्वाचन आयुक्त होता है। इसके अतिरिक्त इस आयोग में सर्वोच्च एवं उच्च न्यायालय के दो सेनानिवृत्त न्यायाधीश भी सदस्य होते हैं। आयोग की सहायता के लिए प्रत्येक राज्य से 2 से 7 तक सहायक सदस्य भी लिए जाते हैं। ये सहायक सदस्य लोकसभा एवं राज्य विधानसभा के सदस्य होते हैं। आयोग के सामने जनता अपने विचार एवं सुझाव भी रख सकती है। इसके बाद चुनाव आयोग 'सीमांकन आदेश की घोषणा करता है जो अन्तिम है। उसके विरूद्ध किसी न्यायालय में अपील नहीं की जा सकती। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि परिसीमन अधिनियम, 2003 के अनुसार निर्वाचन क्षेत्रों के परिसीमन या निर्धारण का आधार 2001 की जनगणना होगी जो कि पूर्व में 1971 की जनगणना को आधार माना हुआ था। 15वीं तथा 16वीं लोकसभा के चुनाव इसी आधार पर करवाए गए।

- **राजनीतिक दलों को निर्वाचन में ठीक व्यवहार रखने के: -** - चुनाव आयोग चुनाव के समय उचित वातावरण बनाए रखने के लिए सभी राजनीतिक दलों और आम जनता के लिए आचार संहिता बन सकता है; जैसे कि प्रत्येक दल दूसरे दल की केवल नीतियों की आलोचना करेगा, किसी दल के कार्यकत्र्ता दूसरे दल की सभाओं को भंग करने का प्रयास नहीं करेंगे। मत प्राप्त करने के लिए राजनीतिक दल जातिवाद या साम्प्रदायिकता की भावना को नहीं भड़काएंगे तथा ऐसे तरीकों को नहीं अपनाएंगे जो भ्रष्ट आचरण एवं चुनाव अपराधों की श्रेणी में आते हों।
- **चुनाव की तिथियों की घोषणा करना:-** चुनाव आयोग उम्मीदवारों के लिए नामांकन-पत्र भरने, नाम वापस लेने तथा नामांकन-पत्रों की जाँच करने की तिथि निश्चित करता है। यह आयोग उस तिथि की भी घोषणा करता है, जिस दिन आम चुनाव होने वाले हों और नागरिकों को अपने मतदान के अधिकार का प्रयोग करना हो; जैसे मतदाताओं की दृष्टि से विश्व के सबसे बड़े लोकतान्त्रिक देश के लिए चुनाव आयोग ने 16वीं लोकसभा चुनाव को देश के विभिन्न भागों में विभाजित कर 7 अप्रैल

से 12 मई, 2014 तक 9 चरणों में सम्पन्न करवाने की घोषणा की गई। इस प्रकार चुनाव आयोग स्वतन्त्र एवं निष्पक्ष चुनाव करवाने की दृष्टि से ही विभिन्न चुनाव तिथियों की घोषणा करता है।

- **राजनीतिक दलों को मान्यता प्रदान करना:-** निर्वाचन आयोग ही भारत में राजनीतिक दलों को मान्यता प्रदान करता है। आयोग ही यह निश्चित करता है तथा इस बात की घोषणा करता है कि कौन-सा राजनीतिक दल राष्ट्रीय स्तर का है और कौन-सा क्षेत्रीय स्तर का। यदि किसी राजनीतिक दल में विभाजन या आपसी मतभेद के कारण चुनाव चिह्न से सम्बन्धित या कोई अन्य विवाद पैदा हो जाए, तो इसका निर्णय निर्वाचन आयोग के द्वारा किया जाता है। जिस तरह चुनाव आयोग राजनीतिक दलों को मान्यता प्रदान करता है, उसी तरह राजनीतिक दलों की मान्यता समाप्त भी कर सकता है। यदि कोई दल कानून द्वारा निर्धारित मत प्राप्त नहीं करता, तो चुनाव द्वारा उसकी मान्यता समाप्त कर दी जाती है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि अगस्त, 2016 में नियमों में किए गए परिवर्तन के अनुसार राष्ट्रीय स्तर की पार्टी के दर्जे की समीक्षा अब 10-10 वर्षों के अन्तराल पर चुनाव आयोग द्वारा की जायेगी जोकि पहले यह मूल्यांकन 5-5 वर्ष के अन्तराल पर किया जाता था।
- **चुनाव-चिह्न प्रदान करना:-** निर्वाचन आयोग ही सभी राजनीतिक दलों को उनके चुनाव चिह्न प्रदान करता है या उनके द्वारा सुझाए गए चुनाव चिह्नों पर अपनी स्वीकृति देता है। जो उम्मीदवार किसी राजनीतिक दल के टिकट से नहीं बल्कि स्वतन्त्र रूप से चुनाव लड़ते हैं, उनके चुनाव चिह्न निर्वाचन आयोग द्वारा ही निश्चित किए जाते हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि मान्यता प्राप्त राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय दलों को चुनाव आयोग के द्वारा उन्हें संरक्षित चुनाव चिह्न प्रदान किए जाते हैं जिन्हें कोई अन्य दल या व्यक्ति उन संरक्षित चुनाव चिह्नों का प्रयोग नहीं कर सकता।

- **निर्वाचन से सम्बन्धित कर्मचारियों पर नियन्त्रण:**- वर्तमान समय में भारतीय संघ में 29 राज्य तथा 7 केन्द्र-शासित प्रदेश हैं। चुनाव आयोग ही राज्यों एवं केन्द्र-शासित प्रदेशों में विधानमण्डलों के चुनाव का प्रबन्ध करता है। इसके लिए चुनाव आयोग केन्द्र-शासित प्रदेशों और राज्यों में चुनाव कराने के समय राष्ट्रपति और राज्यपाल से आवश्यक कर्मचारियों की माँग कर सकता है तथा वे कर्मचारी चुनाव आयोग के नियन्त्रण में ही काम करते हैं।
- **राष्ट्रपति व उप-राष्ट्रपति का चुनाव कराना: -** राष्ट्रपति व उप-राष्ट्रपति के पद के लिए चुनाव करवाना भी निर्वाचन आयोग का कार्य है। इसके लिए चुनाव आयोग चुनाव तिथि की घोषणा से लेकर नामांकन भरने, जाँच-पड़ताल करने, नाम वापस लेने, मतदान करवाने तथा परिणाम घोषित करने आदि कार्य करता है। अभी तक चुनाव आयोग राष्ट्रपति के 15 चुनाव करवा चुका है।
- **चुनाव पुनः करवाने की घोषणा**: - यदि चुनाव के दौरान किसी राजनीतिक दल द्वारा अनुचित तरीके अपनाए जाते हैं; तो निर्वाचन आयोग चुनाव रद्द कर सकता है और पुनः मतदान के आदेश दे सकता है। पुनः मतदान चुनाव-क्षेत्र के एक भाग में करवाया जा सकता है या फिर पूरे निर्वाचन क्षेत्र का चुनाव रद्द किया जा सकता है।
- **वोटिंग मशीनों की सुरक्षा और मतों की गणना:-**निर्वाचन आयोग चुनाव द्वारा घोषित विभिन्न चरणों के अनुसार अन्तिम चरण तक चुनाव होने एवं मतगणना हेतु निर्धारित तिथि तक वोटिंग मशीनों की पूर्णतः सुरक्षा की व्यवस्था करता है और निर्धारित तिथि पर मतगणना का कार्य पूर्ण करवाने का कार्य करता है।
- निर्वचन आयोग के अन्य कार्य

(i) निष्पक्ष चुनाव सम्पन्न कराने हेतु पर्यवेक्षकों की नियुक्ति करना,

(ii) मतदान केन्द्रों की सूची का प्रकाशन करना,

(iii) राजनीतिक दलों के लिए चुनाव प्रचार की उचित उपलब्ध कराना,

(iv) अपने कार्यों के विषय में तथा चुनाव-प्रक्रिया में सुधारों के सम्बन्ध में सरकार को प्रतिवेदन देना,

(v) मतदाताओं को मतदान कार्य का प्रशिक्षण देना,

(vi) राजनीतिक दलों के लिए आचार संहिता तैयार करना,

(vii) प्रत्याशियों द्वारा अपने-अपने प्रचार के नियमों का निर्माण करना,

(viii) किसी चुनाव में हुई अनियमितताओं के आधार पर उस निर्वाचन को रद्द करना,

(ix) जाली मतदान को रोकने के लिए राज्य सरकारों को मतदाताओं को पहचान-पत्र (Identity Card) जारी करने का निर्देश देना,

(x) प्रत्याशियों से चुनाव - व्यय का हिसाब माँगना,

(xi) चुनावों के समय प्रत्याशियों द्वारा चुनाव प्रचार के दौरान दीवारों और सार्वजनिक स्थानों पर चिपकाए पोस्टर और नारे लिखवाने से गन्दी हुई दीवारों की पुनः पुताई करने की व्यवस्था करने के लिए लिए राजनीतिक दलों को निर्देश देना,

(xii) राजनीतिक दलों से चुनाव में किए गए व्यय का हिसाब माँगना,

(xiii) प्रत्याशियों द्वारा चुनाव के व्यय की सीमा निर्धारित करना आदि ।

(xiv) चुनाव की तिथि निश्चित हो जाने के बाद विशेष कारणों से चुनाव आयोग चुनाव को स्थगित कर सकता है।

(xv) चुनावों को अधिक स्वतन्त्र, निष्पक्ष एवं पारदर्शी बनाने के लिए सरकार को समय-समय पर चुनाव

आयोग परामर्श देने का कार्य करता

1-3-3-भारत में चुनावों का महत्व (Importance of Elections in India):-जिस प्रक्रिया द्वारा जनता शासन की गतिविधियों में भाग लेती है, उसे चुनाव कहा जाता है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीयों को चुनाव द्वारा अपने प्रतिनिधियों को निर्वाचित करने का अधिकार दिया गया। इस व्यवस्था का प्रावधान हमारे संविधान के अनुच्छेद 325 व 326 में किया गया है। भारत के संविधान के अनुच्छेद 326 के अनुसार विदेशी, पागल, दिवालिया एवं अपराधी आदि को मताधिकार नहीं दिया गया है। 61वें संशोधन के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति जो 18 वर्ष की आयु प्राप्त कर लेता है, उसे बिना किसी भेदभाव के मतदान करने का अधिकार दिया गया है। अतः भारत में चुनावों का महत्वपूर्ण स्थान है। अब तक भारत में 16 लोकसभा के चुनाव हो चुके हैं। भारत में चुनावों के महत्व का वर्णन निम्नलिखित है:-

I. **जनता अपने शासकों को चुनती है** - चुनाव एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके माध्यम से जनता अपने प्रतिनिधियों का चुनाव करती है। चुनाव के माध्यम से ही विधानपालिका अर्थात् संसद और राज्यों में विधानसभाओं का गठन होता है। लोकसभा या राज्यों की विधानसभाओं में जिस राजनीतिक दल को बहुमत प्राप्त होता है, वे सरकार बनाते हैं। लोकसभा व राज्य विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्यों द्वारा राष्ट्रपति का चुनाव किया जाता है। राष्ट्रपति के द्वारा सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायधीशों की नियुक्ति की जाती है। इस प्रकार चुनावों के आधार पर ही शासन का इतना बड़ा और महत्वपूर्ण ढाँचा खड़ा किया जाता है।

II. **जनता का शासकों पर नियन्त्रण** - विजयी उम्मीदवारों को पाँच वर्ष तक काम करने का अवसर प्राप्त होता है। इस अवधि में वह काम करके जनता को अपनी उपलब्धियों की जानकारी देते हैं

और इन्हें उपलब्धियों के आधार पर वह जनता से वोट माँगने के हकदार बनते हैं। अब तक भारत में 16 लोकसभा के चुनाव हो चुके हैं।

III. **चुनावों में विशेष मुद्दे को समक्ष रखना-** चुनाव के समय प्रत्येक दल द्वारा चुनाव घोषणा-पत्र जारी किया जाता है, जिसमें ऐसी बातें रखी जाती हैं, जिसके आधार पर पार्टी को जन-समर्थन मिल सके। साधारणतः सभी राजनीतिक दलों के घोषणा-पत्र समान होते हैं; जैसे जनता के लिए रोटी, रोज़ी और मकान की व्यवस्था की बात की जाती है, लेकिर कई बार आम चुनाव कुछेक विशेष मुद्दों को लेकर लड़े जाते हैं। सन् 1962 में चुनाव का मुख्य मुद्दा सहकारी खेती था।

IV. **सरकार का वैधीकरण होता है-** सरकार केवल दमन व आतंक के सहारे नहीं चलती। उनका वैधीकरण होना जरूरी है, क्योंकि इससे जनता को यह विश्वास हो जाता है कि अमुक सरकार को कानून द्वारा मान्यता प्राप्त है। इसलिए क्रान्ति के बाद आमतौर पर प्रत्येक शासन का यह प्रयत्न होता है कि चुनावों की घोषणा की जाए और इनके द्वारा सरकार को मान्यता मिल जाए। मान्यता मिलते ही सरकार की प्रतिष्ठा में बढ़ोतरी होती है।

V. **चुनाव सरकार के स्वरूप में परिवर्तन करते** हैं - चुनावों का सबसे बड़ा कार्य यह है कि वह सरकार के स्वरूप में परिवर्तन कर देते हैं। यदि सरकार में राजतन्त्र के तत्व हैं, तो चुनाव के बाद सरकार में प्रजातन्त्रात्मक तत्व आ जाते हैं। जनता सरकार को अपना समझने लगती है। यह बात ठीक है कि शासन के कार्यों में जनता की भागीदारी बहुत सीमित होती है। चुनाव के दिनों में ही वह सरकार पर अपना अधिकार अधिक समझते हैं, बाकी दिनों में कम होता है। फिर भी चुनाव जनता में जागृति, जिम्मेदारी और अपनेपन की भावनाओं को उत्पन्न करते हैं।

VI. **क्रान्ति का भय समाप्त हो जाता है** - बदलाव मनुष्य की प्रकृति है। बदलाव के दो ही ढंग हैं, हिंसक क्रान्ति या फिर शान्तिपूर्ण क्रान्ति। हिंसक क्रांति से जान-माल की हानि होती है, इसलिए

जनता इसे नहीं चाहती। दूसरा ढंग है शान्तिपूर्ण क्रान्ति का। चुनाव शान्तिपूर्ण क्रान्ति का माध्यम है, चुनाव के माध्यम से सरकार में परिवर्तन किया जा सकता है। यह ढंग नागरिकों के हृदयों में शासन के प्रति निष्ठा और भक्ति की भावना उत्पन्न करता है। चुनाव द्वारा या मताधिकार द्वारा नागरिक ऐसी सरकार को बदल सकते हैं जो उनकी इच्छाओं का मान-सम्मान नहीं करती। फलस्वरूप चुनावों में हिंसक क्रान्ति का भय समाप्त हो जाता है।

1-4-विषय वस्तु का पुन: प्रस्तुतिकरण (Presentation of further Contents)

1-4-1-भारत में चुनाव प्रक्रिया (Election Process in India)

चुनाव प्रक्रिया उस विधि का नाम है कि जिसके द्वारा किसी भी देश में चुनाव करवाए जाते हैं। इस विधि को अमुक देश के संविधान में लिखा जाता है। भारतीय चुनाव प्रक्रिया की व्यवस्था का भारतीय प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 (Indian Representative Act of 1951) के अन्तर्गत वर्णन किया गया है। भारतीय चुनाव प्रक्रिया के मुख्य चरण निम्नलिखित हैं-

I. **निर्वाचन क्षेत्रों का सीमांकन (De-limitation of Constituencies): -** चुनावों से पहले सारे भारत वर्ष की चुनाव क्षेत्रों में विभाजित कर दिया जाता है। चुनाव क्षेत्र दो तरह के होते हैं। प्रथम, संसदीय चुनाव क्षेत्र, इन चुनाव क्षेत्र में रहने वाले सभी मतदाता अपने संसद के प्रतिनिधि का चुनाव करते हैं। दूसरे विधानसभा निर्वाचन क्षेत्र, इन क्षेत्रों के नागरिक विधानसभा के लिए प्रतिनिधियों का चुनाव करते हैं। आयोग द्वारा निर्वाचन क्षेत्र की सीमाओं में परिवर्तन किया जाता है और इसका निर्णय अन्तिम होता है ।

II. **निर्वाचक सूची को तैयार करना (Preparation of Electoral Rolls): -** भारतीय संविधान के अनुच्छेद 325 के अनुसार हर चुनाव क्षेत्र के लिए मतदाता सूची तैयार की जाती है तथा उसे प्रकाशित कर दिया जाता है, ताकि मतदाता इस सूची में अपना नाम देख लें, अगर किसी का नाम

किसी कारण से सूची में नहीं आया है, तो उसे प्रार्थना-पत्र देकर अपना नाम सूची में शामिल करवा ले।

III. **चुनाव तिथियों की घोषणा (Announcement of Election dates): -** चुनाव आयोग द्वारा चुनाव की तिथियों की घोषणा की जाती है। इसके साथ ही नामांकन पत्र देने तथा चुनाव से नाम वापिस लेने की तिथियों की भी घोषणा की जाती है।

IV. **नामांकन-पत्र दाखिल करना (Filing of Nominations):-** चुनाव की तारीख घोषित होते ही नामांकन-पत्र व उन्हें वापस लेने की तारीख भी निश्चित कर दी जाती है। प्रत्येक उम्मीदवार को नामांकन-पत्र दाखिल करने के लिए प्रस्तावकों व अनुमोदकों के हस्ताक्षर करवाने होते हैं। संविधान द्वारा लोकसभा और विधानसभाओं के उम्मीदवारों के लिए कुछ योग्यताएँ निश्चित की गई हैं। लोकसभा व विधानसभा के लिए उम्मीदवार को 25 वर्ष का होना चाहिए। राज्यसभा के लिए आयु 30 वर्ष निश्चित की गई है। बाकी योग्यताएँ लगभग समान ही होती हैं। (i) वह सरकारी पद पर न हो। (ii) पागल न हो। (iii) दिवालिया न हो। (iv) किसी अन्य देश का नागरिक न हो। (v) सजा प्राप्त न हो इत्यादि ।

VII. **जमानत राशि (Security): -** नामांकन के साथ ही उम्मीदवार को नियत राशि जमानत (Security) के रूप में जमा करवानी पड़ती है। यदि कोई उम्मीदवार कुल मतों का 1/6 भाग प्राप्त नहीं करता तो उसकी जमानत जब्त हो जाती है।

VIII. **जाँच तथा आक्षेप (Scrutiny and Objections): -** एक निश्चित तिथि को उम्मीदवारों के नामांकन पत्रों की जाँच की जाती है। यदि किसी पत्र में कोई त्रुटि पाई जाती है तो उसे अस्वीकार कर दिया जाता है। यदि कोई अन्य व्यक्ति भी किसी नामांकन-पत्र के बारे में कोई आक्षेप करना

चाहे, तो उसे ऐसा करने का अधिकार होता है। आक्षेप उचित सिद्ध हो जाने पर उस नामांकन-पत्र को अस्वीकार कर दिया जाता है।

IX. **नाम की वापसी (Withdrawl of Nominations): -** नामांकन के समय ही नाम वापस लेने की तारीख भी निश्चित कर दी जाती है। एक निश्चित तारीख और समय तक नामजद किए गए उम्मीदवार अपना नाम वापस ले सकते हैं। अन्त में चुनाव में भाग लेने वाले उम्मीदवारों की सूची बना ली जाती। है और उसे घोषित कर दिया जाता है।

X. **चुनाव अभियान (Election Campaign):-** सभी राजनीतिक दल और उम्मीदवार चुनाव अभियान को प्रभावी व आकर्षक रूप से चलाने का प्रयत्न करते हैं। राजनीतिक दल, उम्मीदवार व उसके समर्थक चुनाव अभियान में विभिन्न तरीकों का प्रयोग करते हैं। चुनाव बैठकें (Election Meetings), नुक्कड़ सभाएँ (Comer Meetings), सभा सम्मेलन, जुलूस और रेलिया आयोजित की जाती हैं। घर-घर जाकर मतदाताओं से सम्पर्क स्थापित किया जाता है। पत्रिकाओं में विज्ञापन दिया जाता है। इसके अतिरिक्त सबसे शक्तिशाली चुनाव तरीके का लाभ उठाया जाता है रेडियो और टी०वी० का प्रयोग प्रत्येक राजनीतिक दल को समान दृष्टि से रेडियो और टी०वी० पर प्रचार के लिए समय दिया जाता है।

XI. **मतदान केन्द्र व पोलिंग अधिकारियों की व्यवस्था (Management of Polling Booths and Polling Officers): -** प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र में मतदाताओं के द्वारा मत प्रयोग करने के लिए मतदान केन्द्र की स्थापना की जाती है। एक मतदान केन्द्र और दूसरे मतदान केन्द्र के बीच दो किलोमीटर से अधिक अन्तर नहीं रखा जाता। मतदान केन्द्रों में एक प्रधान चुनाव अधिकारी और अन्य चुनाव अधिकारी होते हैं।

XII. **मतदान (Voting or Polling): -** निश्चित तिथि को निर्धारित समय के भीतर मतदान होता है। मतदान के लिए केन्द्र स्थान निश्चित होता है। मतदान केन्द्र (Polling Booth) पर जाकर मतदाता अपने मत का प्रयोग करते हैं।

XIII. **पुनः मतदान का आदेश (Order to Repolling): -** किसी भी करण से अगर चुनाव रद्द हो जाता है तो निर्वाचन आयोग ने ऐसे मतदान केन्द्र में पुनः मतदान करवाता है।

XIV. **मतगणना व परिणाम की घोषणा (Counting of Votes and Declaration of Results): -** मतदान के बाद मत पेटिया ई०वी० एम० को सीलबन्द करके सुरक्षित स्थानों पर पहुँचा दिया जाता है। साधारणतः मतगणना का कार्य सभी चरणों के मतदान के तुरन्त बाद आरम्भ हो जाता है। इस तरह विभिन्न चरणों के चुनाव सम्पन्न होने के बाद निश्चित तारीख को वोटिंग मशीनों की गणना कर शीघ्र ही चुनाव परिणामों की घोषणा कर दी जाती है।

XV. **चुनाव व्यय का विवरण देना (Submission of Accounts relating to Elections): -** चुनावों में भ्रष्टाचार को रोकने के लिए चुनाव समाप्त होने के 45 दिन बाद तक प्रत्येक उम्मीदवारों को चुनाव में खर्च किए धन का विवरण देना होता है। कोई भी उम्मीदवार निश्चित धनराशि से अधिक धन चुनाव में खर्च नहीं कर सकता।

XVI. **चुनाव याचिका (Election Petition):-** चुनाव के परिणाम घोषित हो जाने के बाद यदि कोई पराजित उम्मीदवार ऐसा महसूस करता है कि विजयी उम्मीदवार ने चुनावों में भ्रष्ट अथवा गैर-कानूनी तरीकों का प्रयोग किया है, तो उसके विरुद्ध चुनाव याचिका दायर की जा सकती है। चुनाव याचिका की सुनवाई चुनाव अधिकरण (Election Tribunal) के द्वारा की जाती है।

XVII. **उप-चुनाव (By-Election)** यदि किसी प्रतिनिधि का चुनाव रद्द करने, स्वयं द्वारा त्याग-पत्र देने या मृत्यु होने पर उसका स्थान स्थित हो जाता है तो अगले चुनाव तक उस स्थान को रिक्त नहीं रखा

जाता बल्कि 6 महीने के अन्दर ही उस चुनाव क्षेत्र में चुनाव की व्यवस्था की जाती है, जिसे उप-चुनाव कहा जाता है।

1-4-2-भारतीय चुनाव प्रणाली के दोष (Defects of the Indian Election System)

भारत संसार का सबसे बड़ा लोकतन्त्र है। भारत में अब तक लोकसभा के 17 चुनाव हो चुके हैं तथा विभिन्न राज्य विधानसभाओं के चुनाव हो चुके हैं। इन चुनावों की आम प्रशंसा भी हुई है,परन्तु भारतीय व्यवस्था में अनेक दोष भी दिखाई देते है जिसके कारण भारतीय लोकतंत्र के उद्येश्य पुरे नहीं हो पाते हैं ।भारतीय चुनाव प्रणाली के निम्नलिखित दोष दिखाई देते हैं:-

I. **चुनावों में धन की बढ़ती हुई भूमिका (The Increasing Role of Money in Elections)** भारतीय चुनाव प्रणाली का सबसे बड़ा दोष चुनावों में धन की बढ़ती हुई भूमिका है। भारतीय चुनावों में धन के अन्धाधुन्ध प्रयोग और दुरुपयोग ने भारत की राजनीति को काफी भ्रष्ट किया है। भारत में काले धन का बड़ा बोलबाला है और उसका चुनावों में दिल खोलकर प्रयोग किया जाता है। मत खरीदे जाते हैं, उम्मीदवारों को धनी लोगों द्वारा खड़ा किया जाता है और पैसे के बल पर उम्मीदवारों को बैठाया जाता है। आज का चुनाव पैसे के बल पर ही जीता जा सकता है और इस धन ने मतदाताओं, राजनीतिक दलों तथा प्रतिनिधियों आदि सबको भ्रष्ट बना दिया है। किसी भी सामान्य पृष्ठभूमि के कार्यकत्ता के लिए किसी राजनीतिक दल का टिकट प्राप्त करना तथा चुनाव लड़ना लगभग असम्भव हो गया है। राजनीति में धनाढ्य लोगों का ही प्रमुख बनता जा रहा है।

II. **जाति और धर्म के नाम पर बोट (Voting on the basis of of Caste and Religion): -** भारत में साम्प्रदायिकता का बड़ा प्रभाव है। जाति और धर्म के नाम पर खुले रूप से मत मांगे और डाले जाते हैं। राजनीतिक दल भी अपने उम्मीदवार खड़े करते समय इस बात को ध्यान में रखते हैं और उसी जाति और धर्म का उम्मीदवार खड़ा करने का प्रयत्न करते हैं, जिस जाति का उस

निर्वाचन क्षेत्र में बहुमत हो। भारत में अब तक जो चुनाव हुए हैं, उनके आकड़े भी इस बात का समर्थन करते हैं।

III. **मतदाता सूचियों के बनाने में लापरवाही (Carelessness in Preparing the Electoral Rolls)** मतदाता सूचियों के बनाने में बड़ी लापरवाही से काम लिया जाता है और कई बार जान-बूझकर तथा कई बार अनजाने में । नई मतदाता सूची बनाते समय नए मतदाताओं के नाम तो जोड़ दिए जाते हैं परन्तु स्वर्गवासी हो चुके मतदाताओं के नाम मतदाता सूची में ज्यों के त्यों बने रहते हैं। इस प्रकार मतदाता सूचियों में अंकित नामी एवं वास्तविक नामों में पर्याप्त अन्तर हो जाता है।

IV. **सरकारी तन्त्र का दुरुपयोग (Misuse of Official Machinery)-** भारतीय चुनाव व्यवस्था की एक और गम्भीर त्रुटि सामने आई है। मन्त्रियों द्वारा दलीय लाभ के लिए सरकारी तंत्र का प्रयोग किया जाता है। वोट बटोरने के लिए मन्त्रियों द्वारा लोगों को तरह-तरह के आश्वासन दिए जाते हैं। विभिन्न वर्गों के लिए अनेकानेक रियायतें और सुविधाओं की घोषणा की जाती है। अनेक प्रकार की विकास योजनाओं की घोषणा की जाती है। सरकारी कर्मचारियों के वेतन-भत्ते आदि में वृद्धि की जाती है। कर्जे माफ किए जाते हैं। इसके अतिरिक्त सरकार गाड़ियों तथा अन्य सुविधाओं का प्रयोग किया जाता है। यद्यपि चुनाव सम्बन्धी अधिनियम के अनुसार ऐसा करना भ्रष्ट व्यव में सम्मिलित है परन्तु फिर भी चुनावी प्रक्रिया के दौरान यह सब देखने को मिलता है।

V. **राजनीतिक दलों को मतों के अनुपात से स्थानों की प्राप्ति न होना (Seats not in Proportion to Votes): -** चुनावों में राजनीतिक दलों को उस अनुपात में विधानमण्डलों में स्थान प्राप्त नहीं होते, जिस अनुपात में उन्हें मत प्राप्त होते हैं। जैसे कम पर प्रतिशत वोट मिलने के बाद भी अधिक सीट मिल जाती है और अधिक वोट मिलने के बाद काम सीट मिलती है । इस प्रकार एक लोकतान्त्रिक व्यवस्था के अन्तर्गत इस स्थिति को न्यायपूर्ण नहीं कहा जा सकता।

VI. **मतदाताओं की अनुपस्थिति (Absence of the Voters):-** चुनावों में बहुत-से मतदाता चुनावों में रुचि लेते ही नहीं। उनक लिए वोट डालना एक समस्या बन गई है। वे मतपत्र का प्रयोग करते ही नहीं है। ऐसी स्थिति में यह कहना बहुत कठिन है कि जीतने वाला प्रत्याशी लोकतान्त्रिक भावना के अनुरूप बहुमत वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है।

VII. **चुनाव नियमों में दोष (Defective Election Rules):-** चुनाव सम्बन्धी नियमों में बड़ी कमियां हैं और इसी कारण चुनाव में बरती गई अनियमितताओं को न्यायालय के सामने सिद्ध करना बड़ा कठिन हो जाता है। लगभग सभी दत्त धर्म और जाति के आधार पर अपने उम्मीदवार चुनते हैं तथा इसी के नाम पर वोट माँगते हैं, परन्तु इसको सिद्ध करना बड़ा कठिन है।

VIII. **राजनीति का अपराधीकरण (Criminalization of Politics):-** पिछले कुछ वर्षो में भारतीय चुनाव प्रणाली में एक और दोषपूर्ण मोड़ आया है। प्रायः सभी राजनीतिक दलों ने ऐसे बहुत-से उम्मीदवार चुनाव में खड़े किए, जिनका अपराधों की दुनिया में नाम था। ऐसे व्यक्तियों ने राजनीति में अपराधीकरण को बढ़ावा देने का काम किया है। कि भारतीय राजनीति में अपराधीकरण की प्रवृत्ति निरन्तर बढ़ती जा रही है जो कि चिन्तनीय है।

IX. **जाली वोट की समस्या (Problem of Impersonation**) भारतीय चुनाव-प्रणाली में एक और दोष है जाती मतदान,चुनावों में जाली मतदान किया जाता है। यहाँ तक कि मृत व्यक्तियों के वोटों का भुगतान भी होता है।

X. **बहुत अधिक चुनाव प्रत्याशी (Too many Candidates for Election):-** भारतीय चुनाव-प्रणाली में एक और दोष है उम्मीदवारों की बढ़ती हुई। अत्यधिक प्रत्याशियों के कारण जनमत का ठीक प्रदर्शन नहीं हो पाता। वोट अधिक भागों में बंट जाती है। बहुत कम वोट प्राप्त करने वाले

उम्मीदवार को जीतने की संभावना रहती है। इस समस्या को निर्दलीय उम्मीदवारों की बढ़ती हुई संख्या ने और भी जटिल बना दिया है।

XI. **चुनावों में हिंसा का प्रयोग (Use of Violence in Elections**) भारतीय चुनाव प्रणाली का एक अन्य महत्त्वपूर्ण दोष यह भी है कि चुनावी प्रक्रिया में हिंसा की घटनाएँ होती रहती है। हिंसा एवं शारीरिक बल से कई जगह मतदान केन्द्रों पर जबरन कब्जे की कोशिश की जाती है जिसके कारण कई बार कुछ मतदान केन्द्रों पर पुनर्मतदान भी करवाना पड़ता है। इस तरह हिंसक घटनाओं से जहाँ राजनीतिक वातावरण दूषित होता है वहाँ आम जनता का भी लोकतन्त्रीय प्रणाली से मोह भंग होता है।

1-4-3-मतदान व्यवहार (Voting Behaviour)

एक अरब से अधिक की जनसंख्या वाला भारत विश्व का सबसे बड़ा प्रजातन्त्र है। 17वीं लोकसभा चुनाव 2019 में भारतीय मतदाताओं की संख्या 89 करोड़ 78 लाख पहुँच गई। यह जानना आवश्यक है कि इन निर्वाचनों में मतदाता किन बातों से प्रभावित होकर अपने मत का प्रयोग करता है । मतदान व्यवहार का अध्ययन बीसवीं सदी की ही एक प्रक्रिया है। सबसे पहले फ्रांस में सन् 1913 में मतदान व्यवहार का अध्ययन किया गया। इसके बाद अमेरिका में दो विश्वयुद्धों के बीच के काल में और ब्रिटेन में विश्वयुद्ध के बाद मतदान व्यवहार का अध्ययन किया गया। भारत में दूसरे आम चुनाव के बाद इस प्रकार के अध्ययनों को अपनाया गया और अभी हाल ही के वर्षों में इस विषय पर चुनाव से पूर्व एवं चुनाव के बाद आनुभाविक एवं वस्तुनिष्ठ सर्वेक्षण करना एक आम बात हो गई है। मतदान व्यवहार का अर्थ है कि मतदाता मतदान करते समय किन-किन बातों से या तत्त्वों से प्रभावित होता है। मतदान व्यवहार में पहले स्तर पर उन तत्वों का अध्ययन किया जाता है जिनसे प्रभावित होकर व्यक्ति मतदान करने के लिए उत्साहित या निरुत्साहित होते हैं अर्थात् इसमें निर्वाचक कानून, मतदाताओं को

योग्यताएँ निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन (Delimitation of Constituencies), मतदान तन्त्र आदि का अध्ययन किया जाता है। दूसरे स्तर पर इस बात का अध्ययन किया जाता है कि किन तत्त्वों से प्रभावित होकर व्यक्ति एक विशेष राजनीतिक दल या एक विशेष उम्मीदवार के पक्ष में अपने मत का प्रयोग करता है।इस प्रकार मतदान व्यवहार का अर्थ मताधिकार के प्रयोग को व्यक्ति की रुचि और इससे जुड़ी हुई व्यक्ति की प्रवृत्तियों से है। मतदान व्यवहार को निम्नलिखित के रूप में परिभाषित किया गया है:- **गॉर्डन मार्शल के अनुसार:** "मतदान व्यवहार का अध्ययन हमेशा इस बात पर केंद्रित होता है कि लोग सार्वजनिक चुनावों में मतदान क्यों करते हैं और वे कैसे पहुंचते हैं।"

प्रोफेसर-स्टीफन वासबी के अनुसार: "मतदान व्यवहार के अध्ययन में व्यक्तिगत मनोवैज्ञानिक मेकअप और राजनीतिक कार्रवाई के साथ-साथ उनके संबंध का विश्लेषण शामिल है।"

मतदान व्यवहार का अध्ययन निम्नलिखित कारणों से महत्वपूर्ण है:-

- यह राजनीतिक समाजीकरण की प्रक्रिया को समझने में मदद करता है।
- यह अभिजात वर्ग के साथ-साथ जनता के बीच एक मूल्य के रूप में लोकतंत्र के आंतरिककरण की जांच करने में मदद करता है।
- यह क्रांतिकारी मतपेटी के वास्तविक प्रभाव पर जोर देता है।
- यह इस बात पर प्रकाश डालने में सक्षम बनाता है कि चुनावी राजनीति कितनी दूर तक चलती है या अतीत से टूटती है।
- यह मापने में मदद करता है कि यह राजनीतिक विकास के संदर्भ में आधुनिक या आदिम है।

1-4-3-1-भारत में मतदान व्यवहार को प्रभावित करने वाले तत्त्व (Factors Influencing the Voting Behaviour in India)

भारत में मतदान व्यवहार जनसंख्यात्मक लक्षणों और सामाजिक व आर्थिक तत्त्वों के अनुसार बदलता रहता है। भारतीय मतदान व्यवहार को अनेक तत्त्व प्रभावित करते हैं, जिनमें निम्नलिखित प्रमुख हैं-

I. **जाति (Caste)-** प्रो० मोरिस जोन्स ने कहा है, "राजनीति जाति से अधिक महत्त्वपूर्ण है और जाति पहले से राजनीति से अधिक महत्त्वपूर्ण है।" इस कथन से निश्चित ही भारतीय राजनीति में जाति के महत्त्व का पता चलता है। साधारणतः व्यक्ति अपनी जाति से सम्बन्धित प्रत्याशी के पक्ष में ही अपने मत का प्रयोग करते हैं। राजनीतिक दल भी इस व्यावहारिक सत्यता का लाभ उठाते हैं और किसी निर्वाचन क्षेत्र में बहुमत जाति के ही व्यक्ति को अपने राजनीतिक दल का प्रत्याशी बनाते हैं। यह भी देखने को मिलता है कि जिन राज्यों या निर्वाचन क्षेत्रों में कोई जाति बहुसंख्यक है और अपने बलबूते उम्मीदवार के भाग्य का फैसला करने में सक्षम हैं वहाँ पर मतदान व्यवहार जातीय तत्त्व से अधिक प्रभावित होता है। भारत में कुछ राज्यों, जैसे बिहार उत्तर प्रदेश, हरियाणा, राजस्थान, पंजाब, केरल एवं आन्ध्र प्रदेश आदि में जातीय तत्त्व का प्रभाव चुनावों में अधिक पाया जाता है।

II. **धर्म (Religion)-**भारत में विभिन्न धर्मों के अनुयायी हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, जैन, बौद्ध, पारसी तथा ईसाई रहते हैं। भारत विभाजन के बाद हमारे देश में साम्प्रदायिकता बढ़ी है, इसलिए स्वार्थपूर्ति के लिए राजनीतिक दल इसका लाभ उठाने में पीछे नहीं है। वे टिकट बाँटते समय निर्वाचन क्षेत्र की रचना को ध्यान में रखते हैं और प्रायः उसी धर्म के व्यक्ति को टिकट देते हैं जिस धर्म के लोगों की बोटें उस निर्वाचन क्षेत्र में अधिक होती है। आज भारत में अनेक धर्म-आधारित संगठन तथा राजनीतिक दल हैं; मुस्लिम लीग, अकाली दल, केरल में केरल कांग्रेस, पश्चिम बंगाल में क्रिश्चियन डेमोक्रेटिक पार्टी इत्यादि।

III. **आर्थिक स्थिति (Economic Condition)-** जनता की आर्थिक स्थिति मतदान को काफी मात्रा में प्रभावित करती है। साधारणतः जिन लोगों की आर्थिक स्थिति अच्छी होती है, वह सत्तारूढ़ दल के पक्ष में मतदान करते हैं अन्यथा मतदान उसके विरुद्ध जाता है। इसी कारण शासक दल की यह कोशिश रहती है कि चुनाव तब करवाए जाएं, जब आर्थिक वातावरण उनके पक्ष में हो।

IV. **सामाजिक सम्बन्ध (Social Relationship)** मतदान व्यवहार को प्रभावित करने वाले सामाजिक तत्वों में परिवार ,रिश्तेदारी भी महत्वपूर्ण तत्त्व है। यदि चुनाव में मतदाता के परिवार या रिश्ते से कोई प्रत्याशी खड़ा हुआ है, तो प्रायः से उसी के पक्ष में अपने मत का प्रयोग करते हैं। लेकिन परिवारवाद की राजनीति को लोकतन्त्र के लिए उचित नहीं माना जाता, क्योंकि इससे उचित एवं व्यक्तिगत निर्णय लेने पर प्रश्न चिह्न लगता है।

V. **उम्मीदवार का व्यक्तित्व (Personality of the Candidate)-** उम्मीदवार का अपना व्यक्तित्व भी मतदान व्यवहार को प्रभावित करता है। उम्मीदवार के व्यक्तित्व में भारतीय मतदाता दो बातें देखता है-एक ईमानदारी और दूसरी जनकल्याण के प्रति उसकी निष्ठा।

VI. **दल अभिन्नता (Party Identification)-** हमारे देश के कुछ मतदाता ऐसे भी हैं, जो सदैव विशेष दल या उस दल के प्रत्याशी के पक्ष में ही अपने मत का प्रयोग करते हैं। ऐसे मतदाताओं के ऊपर अन्य मातों का कोई प्रभाव नहीं होता। वे दल के प्रति पूर्ण निष्ठा भाव रखते हैं।

VII. **नेतृत्व (Leadership)**- मतदान व्यवहार को नेतृत्व भी प्रभावित करता है। नेतृत्व की स्वच्छ एवं बेदाग छवि दृढ़ निर्णय क्षमता, कार्य व्यवहार में गरिमा, ईमानदारी अथवा नेतृत्व की भूमिल छवि, पष्ट एवं मूल आचरण के संदिग्ध आरोप दोनों ही सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रवृत्तियों ने मतदान व्यवहार को प्रभावित किया है। दल का नेतृत्व भी मतदाताओं को प्रभावित करने में निर्णायक भूमिका निभाता है।।

VIII. **लुभावने नारे (Attractive Slogans):-** राजनीतिक दलों के द्वारा चुनावों के समय दिए जाने वाले सुभावने नारे भी मतदाताओं को आकर्षित करते हैं। प्रत्येक राजनीतिक दल नवयुवक मतदाता को प्रभावित करने के लिए बेरोजगारी समाप्त करने के लुभावने नारे देकर भी मतदाताओं को आकर्षित करने का प्रयास किया जाता है।

IX. **दलीय विचारधारा, कार्यक्रम और नीति (Party's Ideology. Programme and Policy)-** जनता पर दलीय विचार, कार्यक्रम और नीतियों का प्रभाव पड़ता है। हर पार्टी चुनाव से पहले चुनाव घोषणापत्र जा करती है, जिसमें राजनीतिक दल अपनी विचारधारा व नीतियों को प्रदर्शित करते हैं।

X. **क्षेत्रवाद की प्रवृत्ति (Regionalism)-** मतदान व्यवहार पर क्षेत्रीय प्रवृत्ति ने भारी प्रभाव डाला है। भारत में क्षेत्रवाद की प्रवृत्ति प्रवृत्त होती जा रही है। क्षेत्रीय दलों ने क्षेत्रीयवाद की प्रवृत्ति के आधार पर न केवल चुनावों में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है बल्कि सरकार का गठन करने में भी समय-समय पर सफलता प्राप्त की है।

XI. **आर्थिक साधन (Economic Resources)-** राजनीतिक दलों एवं प्रत्याशियों के द्वारा प्रयोग किए गए आर्थिक साधन भी मतदान व्यवहार की काफी मात्रा में प्रभावित करते हैं।

XII. **प्रत्याशी की जीत की सम्भावना (Possibility of winning of Party and Candidate)-** कौन-सा दल कौन-सा उम्मीदवार चुनाव जीतने की स्थिति में है, यह भी मतदान व्यवहार को प्रभावित है। अधिकतर मतदाता उसी के पक्ष में अपने मत का प्रयोग करते हैं जिसकी जीतने की सम्भावना होती है

XIII. **चुनाव प्रचार (Election Election Campaign)**- चुनाव प्रचार भी भारतीय मतदाता की प्रभावित करता है। इसी कारण राजनीतिक दल चुनाव के समय प्रचार करने में अपना पर लगाने

में पीछे नहीं है। राजनीतिक दल अपने राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय स्तर के स्टार प्रचारकों के साथ चुनावी संग्राम में अपने-अपने दलों की उपलब्धियों एवं सत्ता पक्ष की कमियों को जनता के सामने उजागर करके मतदाताओं को प्रभावित करने का प्रयास करते है।

XIV. **प्रेस एवं मीडिया (Press and Media)-** भारतीय मतदाताओं को प्रभावित करने में प्रेस एवं मीडिया की भूमिका भी महत्वपूर्ण रही है क्योंकि अखवारों एवं पत्र-पत्रिकाओं में सत्ता पक्ष एवं अन्य राजनीतिक दलों द्वारा समाजाने याने आरोप-प्रत्यारोप एवं विभिन्न राजनीतिक विश्लेषकों के द्वारा दिए गए लेखों के माध्यम से भी मतदाताओं के व्यवहार पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है जिसके कारण वह किसी दल या प्रत्याशी के पक्ष एवं विरोध में जाने का निर्णय लेता है। इसके अतिरिक्त टेलिविजन पर होने वाले विभिन्न विषयों एवं नीतियों पर राजनीतिक दलों के प्रवक्ताओं के याद-विवाद के माध्यम से उत्पन्न दृष्टिकोण एवं चुनावों के पूर्व दिखाए जाने वाले विश्लेषणों से भी भारतीय मतदाताओं के व्यवहार पर अत्यधिक प्रभाव देखने को मिलता है।

XV. **तात्कालिक विषय (Immediate Issues)-** विगत वर्षों में हुए भारतीय चुनावों पर दृष्टिपात करें तो यह बात भी स्पष्ट रूप से मतदान व्यवहार के सम्बन्ध में उभरकर सामने आती है कि भारतीय मतदाता पर तात्कालिक विषयों का भी बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है; जैसे सन् 1977 के चुनावों में श्रीमती इन्दिरा गांधी द्वारा सन् 1975 में लागू की गई आपातकालीन घोषणा थी। सन् 1984 के चुनाव में काँग्रेस के पक्ष में श्रीमती इन्दिरा गाँधी की हत्या की सहानुभूति की लहर थी। सन् 1991 के चुनावों में राम जन्म भूमि बाबरी मस्जिद विवाद मण्डल आयोग रिपोर्ट एवं आतंकवाद के विषय थे। सन् 1996 के चुनावों में भ्रष्टाचार मुद्दे थे। सन् 1999 के चुनाव में विदेशी मूल के मुद्दे तथा कारगिल मुद्दा रहा। सन् 2004 एवं सन् 2009 में भी महँगाई, भ्रष्टाचार, आतंकवाद के मुद्दे प्रमुखतमाओं को प्रभावित करने में निर्णायक रहे थे। 16वीं

लोकसभा चुनाव 2014-में महँगाई, भ्रष्टाचार, घोटाले, आतंकवाद, विकास एवं विदेशों में जमा काला धन वापिस लाने के मुद्दे भी भारतीय मतदाताओं प्रभावित करने में प्रमुख तात्कालिक मुद्दे के रूप में रहे थे। इसी तरह 17वीं लोकसभा चुनाव में भी पाक पर सर्जिकल स्ट्राइक मुद्दों के साथ आतंकवाद की समाप्ति एवं राष्ट्रवाद जैसे विषय तात्कालिक मुद्दों के रूप में मतदाताओं को बीजेपी के पक्ष में आ में करने में सफल रहे।

यह भी स्पष्ट है कि भारतीय मतदाताओं के मतदान व्यवहार में किसी एक तत्त्व की सर्वप्रमुक्त निर्णायक भूमिका नहीं रही। अतः उपर्युक्त सभी तत्वों ने कम या अधिक मात्रा में भारतीय मतदाताओं को प्रभावित किया है।

1-5-स्वयं प्रगति जाँच (Check your progress)

I. चुनाव आयुक्त का कार्यकाल कितने वर्ष का होता है।

II. भारत में कौनसे संशोधन के द्वारा मतदान की आयु 21 वर्ष से घटाकर 18 वर्ष की गई है।

III. किसके द्वारा सभी राजनीतिक दलों को मान्यता व उनके चुनाव चिह्न प्रदान किये जाते हैं

IV. भारतीय संविधान का कौनसा भाग व अनुच्छेद चुनाव से सम्बंधित है

V. यदि कोई उम्मीदवार कुल मतों का कितने भाग प्राप्त नहीं करता तो उसकी जमानत जब्त हो जाती है।

1-6-सारांश (Summary)

लोकतन्त्र के सफल संचालन के लिए आवश्यक है कि चुनाव निष्पक्ष और स्वतन्त्र हों, उनका संचालन निर्दलीय आधार पर हो और वे सत्तारूढ़ दल के प्रभाव से मुक्त हों। भारत में सार्वजनिक वयस्क मताधिकार द्वारा निष्पक्ष एवं स्वतन्त्र रूप से अपने प्रतिनिधियों के चयन के लिए भारतीय संविधान निर्माताओं ने संविधान का एक पूर्ण भाग 15 निर्वाचकों से ही सम्बद्ध किया है। भारतीय संविधान के

भाग 15 में अनुच्छेद 324 से 329 तक निर्वाचकों के सम्बन्ध में विभिन्न संवैधानिक व्यवस्थाओं का प्रावधान किया गया है। भारत में निर्वाचन सम्बन्धी महत्वपूर्ण दायित्व के निर्वहन के लिए एक स्वतन्त्रता प्रशासकीय तन्त्र की व्यवस्था की गई है। यह प्रशासनिक तन्त्र ही निर्वाचन आयोग है। मतदान व्यवहार का अर्थ है कि मतदाता मतदान करते समय किन-किन बातों से या तत्वों से प्रभावित होता है। मतदान व्यवहार में पहले स्तर पर उन तत्वों का अध्ययन किया जाता है जिनसे प्रभावित होकर व्यक्ति मतदान करने के लिए उत्साहित या निरुत्साहित होते हैं।मतदाताओं के मतदान आचरण को प्रभावित करने वाले कई कारक होते हैं। भारत में जाति, वर्ग, जनजाति, लिंग (जेंडर), धर्म, भाषा तथा जातीयता जैसे अनेक निर्धारित मतदान व्यवहार को निर्धारित करते हैं।मतदाताओं के मतदान आचरण को प्रभावित करने वाले कई कारक होते हैं। भारत में जाति, वर्ग, जनजाति, लिंग (जेंडर), धर्म, भाषा तथा जातीयता जैसे अनेक निर्धारित मतदान व्यवहार को निर्धारित करते हैं।

1-7-सूचक शब्द (Key Words)

I. **निर्वाचन आयोग -**निर्वाचन आयोग से हमारा अभिप्राय उस आयोग से है जो भारतीय क्षेत्र सभी तरह के चुनाव करवाने के लिए उत्तरदायी हो, चुनाव आयोग को अनुच्छेद 324 के तहत संविधानिक अधिकार मिले हुए हैं।

II. **मतदान सूची -**मतदान सूची वह सूची है जिसमें भारतीय क्षेत्र में सभी मतदाताओं की जानकारी होती है।

III. **परिसिमीन आयोग** -इस आयोग के द्वारा चुनाव क्षेत्रों को जनसंख्या के आधार पर विभाजित किया जाता है।

IV. **राजनीतिक दल -**यह लोगों का वह समूह है जो प्रत्यक्ष तौर पर राजनीति में भाग लेते हों और जिसे प्रतिनिधित्व अधिनियम 1951 के तहत मान्यता प्राप्त हो।

V. **आनुपातिक प्रतिनिधित्व -**इस प्रणाली में प्रत्येक मतदाता को चुनाव लड़ने वाले प्रत्येक उम्मीदवार को अपनी पसन्द के आधार पर कार्मिक संख्या में मत देने का अधिकार होता है।

1-8-स्वयं समीक्षा हेतु प्रश्न (Self-Assessment Questions)

I. भारत में निर्वाचन आयोग के संगठन एवं कार्यों / भूमिका की विवेचना कीजिए।

II. भारतीय चुनाव व्यवस्था की मुख्य विशेषताओं की व्याख्या करें।

III. भारतीय चुनाव-प्रक्रिया का वर्णन करें।

IV. भारतीय चुनाव व्यवस्था के दोष और उन्हें दूर करने के सुझावों पर प्रकाश डालिए

V. भारत में मतदान व्यवहार से आप क्या समझते हैं? भारत में मतदान व्यवहार को प्रभावित करने वाले तत्त्वों वर्णन करो।

VI. हाल के समय में भारत सरकार द्वारा किए गए चुनाव सुधारों का वर्णन कीजिए।

VII. भारतीय चुनाव आयोग की रचना एवं शक्तियों स्पष्ट कीजिए।

1-9-उतर-स्वयं प्रगति जाँच (Answer to check your progress)

I. 6 वर्ष

II. 61 वें

III. भारतीय चुनाव आयोग

IV. भाग 15 में अनुच्छेद 324 से 329 तक

V. 1/6 भाग

1-10-संदर्भ ग्रन्थ/निर्देशित पुस्तके (References/Suggested Readings)

I. जैन, पुखराज, राजनीति विज्ञान, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।

II. आर.के. जैन, कला जैन, लक्ष्मीकांत त्रिपाठी, राजनीति विज्ञान, आरोही पब्लिकेशन्स, दिल्ली।

III. डॉ. सुरेश कुमार, सोमनाथ वर्मा, डॉ. गुलशन राय, जे. बी. डी प्रिंटिंग प्रेस, जालंधर ।

Subject: राजनीति विज्ञान	
Course Code: POLS.103	Author: Dr. Parveen Sharma
Lesson No.: 4	Vetter: Updated by:
अध्याय की संरचना-4 चुनावी सुधार, दल-बदल की समस्या (**Electoral reforms, problem of defection**.)	

1-1-अधिगम के उद्देशय (Learning Objectives)

1-2-परिचय (Introduction)

1-3-विषय वास्तु का प्रस्तुतिकरण (Presentation of Contents)

1-3-1-चुनाव सुधार का अर्थ व चुनाव सुधार की आवश्यकता (Meaning of election reform and need for election reform): -

1-3-2-चुनाव सुधार से संबंधित समितियाँ एवं आयोग (Committees and commissions related to election reform)

1-3-2-1-वर्ष 2000 से पूर्व चुनाव सुधार Electoral Reforms before 2000)

1-3-2-2-वर्ष 2000 के बाद चुनाव सुधार (Electoral Reforms after 2000)

1-3-3--भारतीय चुनाव-प्रणाली में सुधार हेतु सुझाव (Suggestions for improving the Indian electoral system)

1-3-4-भारतीय निर्वाचन पद्धति की आलोचना (Criticism of the Indian electoral system)

1-4- विषय वास्तु का पुन: प्रस्तुतिकरण (Presentation of further Contents)

1-4-1- दल-बदल अर्थ व परिभाषा (Meaning and definition of defection)

1-4-**2-**भारत में राजनीतिक दल-बदल (Political Defection in India)

1-4-3-भारत में राजनीतिक दल-बदल के कारण **(**reasons for political Defection in India)

1-4-4-भारतीय राजनीति में राजनीतिक दल-बदल के प्रभाव (Effects of political Defection in Indian politics)

1-4-5-दल-बदल रोकने के लिए प्रयास **(**Efforts to stop Defection)

1-4-6-दल-बदल अधिनियम की प्रासंगिकता (Relevance of the Defection Act)

1-5-स्वयं प्रगति जाँच (Check your progress)

1-6-सारांश (Summary)

1-7-सूचक शब्द (Key Words)

1-8-स्वयं समीक्षा हेतु प्रश्न (Self- Assessment Questions)

1-9-उतर-स्वयं प्रगति जाँच (Answer to check your progress)

1-10. संदर्भ ग्रन्थ/निर्देशित पुस्तके (References / Suggested Readings

1-1-अधिगम के उद्देश्य (Learning Objectives)

- विद्यार्थियों को चुनाव सुधार की आवश्यकता अवगत करवाना।
- विद्यार्थियों को चुनाव सुधार से संबंधित समितियाँ एवं आयोग अवगत करवाना।

- स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव को प्रभावित करने वाले कारकों व उसको दूर करने के उपायों की जानकारी देना
- विद्यार्थियों को भारत में राजनीतिक दल-बदल के अर्थ है, लक्षणों से अवगत करवाना।
- दल-बदल के कारण व भारतीय राजनीति प्रभाव से अवगत करवाना।

1-2-परिचय (Introduction)

राजनीतिक प्रणाली में समाज की स्पष्ट भागीदारी है। हमारी राजनीतिक प्रणाली का व्यवहार समाज के प्रति उनकी प्रतिक्रिया है। इस राजनीतिक प्रणाली को सुधारने के लिये समाज और उसके तंत्रों में सुधार की आवश्यकता है। भारत जैसे जीवंत लोकतंत्र में यह आवश्यक है कि देश में सुशासन के लिये सबसे अच्छे नागरिकों को जन प्रतिनिधियों के रूप में चुना जाए। इससे जनजीवन में नैतिक मूल्यों को बढ़ावा मिलता है, साथ ही ऐसे उम्मीदवारों की संख्या भी बढ़ती है जो सकारात्मक वोट के आधार पर चुनाव जीतते हैं। लोकतंत्र की इस प्रणाली में मतदाता को उम्मीदवार चुनने या अस्वीकार करने का अवसर दिया जाना चाहिये जो राजनीतिक दलों को चुनाव में अच्छे उम्मीदवार उतारने पर मजबूर करे। कोई भी लोकतंत्र इस आस्था पर काम करता है कि चुनाव स्वतंत्र और निष्पक्ष होंगे। यह चुनाव प्रक्रिया ही है जो चुने गए लोगों को गुणवत्ता और उनके प्रदर्शन के माध्यम से हमारे लोकतंत्र को प्रभावी बनाती है।

1-3-विषय वास्तु का प्रस्तुतिकरण (Presentation of Contents)

1-3-1-चुनाव सुधार का अर्थ व चुनाव सुधार की आवश्यकता (Meaning of election reform and need for election reform): -

चुनाव की प्रणाली में करने योग्य उन परिवर्तनों को चुनाव सुधार कहते हैं जिनके करने से जनता की आकांक्षाएँ चुनाव परिणामों के रूप में अधिकाधिक परिणत होने लगें।

भारतीय राजनीति के जटिल होने और गठबंधन की राजनीति अंतहीन के चलते भारत के चुनाव का अनुमान लगाना बेहद कठिन है। स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव को बहुत से करण है जो प्रभावित करते हैं जैसे; -

- भारतीय चुनाव में सत्तारुढ़ दल द्वारा सरकारी मशीनरी का दुरुपयोग आम बात हो गई है। दलीय लाभों के लिये प्रशासनिक तंत्र के दुरुपयोग के विरुद्ध विपक्षी दल हमेशा आवाज़ उठाते रहे हैं। परंतु दुर्भाग्य की बात यह है कि जब भी विपक्षी दल सत्तारुढ़ हुआ तो वह भी इस दोष से मुक्त नहीं हो पाया है। निर्वाचन अधिकारियों पर अनुचित रूप से राजनीतिक दबाव डाले जाते हैं। फलस्वरूप वे निष्पक्ष रूप से अपना कार्य नहीं कर पाते हैं।
- भारतीय चुनाव प्रणाली की सबसे बड़ी खामी यह है कि चुनाव से पूर्व तक मतदाता सूची अपूर्ण रहती है। परिणामस्वरूप अनेक नागरिक अपने मताधिकार का प्रयोग करने से वंचित रह जाते हैं।
- निर्दलीय उम्मीदवारों की संख्या में बहुलता भी चुनावी प्रणाली की एक बड़ी समस्या है। प्रायः निर्दलीय उम्मीदवारों का प्रयोग वोट काटने के लिये किया जाने लगा है।
- इसके अतिरिक्त जाली व फर्ज़ी मतदान की बढ़ती प्रवृत्ति, निर्वाचन आयोग के पास अपने स्वतंत्र कर्मचारी न होना, डाक द्वारा प्राप्त होने वाले मतों के संदर्भ में पर्याप्त अवसंरचना का अभाव इत्यादि हैं।
- प्रायः उम्मीदवार अपने आपराधिक रिकॉर्ड का ब्यौरा नहीं देते हैं। वे अपनी संपत्ति, देनदारियों, आय तथा शैक्षिक योग्यता का विवरण नहीं देते हैं।

- चुनाव में धन की बढ़ती भूमिका हमारी चुनाव व्यवस्था का गंभीर दोष है। चुनाव में पैसा पानी की तरह बहाया जाता है। अत्यधिक चुनावी व्यय के कारण सामान्य व्यक्ति निर्वाचन को प्रक्रिया से दूर होता जा रहा है।
- पिछले कुछ वर्षो में कानून-सम्मत और असल खर्चो के बीच अंतर काफी बढ़ा है।
- चुनाव जीतने के लिये उम्मीदवार बाहुबल का प्रयोग करते हैं। हिंसा, धमकी और बूथ कैप्चरिंग में बाहुबल की बड़ी भूमिका होती है। यह समस्या पहले अमूमन देश के उत्तरी भागों में हुआ करती थी पर अब बाकी प्रांतों में भी फैल रही है।
- अपराधी व्यक्ति अपना रसूख और जनता में पैठ बनाने के लिये राजनीति में प्रवेश करते हैं और पुरजोर कोशिश करते हैं कि उनके खिलाफ मामलों को समाप्त कर दिया जाए या उन पर कार्यवाही न की जाए।
- इसमें उनकी मदद कुछ राजनीतिक दल करते हैं जो धन और रसूख के लिये इन्हें चुनाव मैदान में उतारते हैं और बदले में इन्हें राजनीतिक संरक्षण और सुरक्षा प्रदान करते हैं।
- किसी भी मज़बूत उम्मीदवार के खिलाफ प्रतिद्वंद्वियों द्वारा बड़े पैमाने पर निर्दलीय उम्मीदवारों को उतारा जाता है ताकि उसके वोट काटे जा सकें।
- ऐसे कई राजनीतिक दल हैं जो विशेष जाति या समूह से आते हैं। ये जाति, समूह पार्टियों पर भी दबाव डालते हैं कि उन्हें क्षेत्रीय स्वायत्तता और जाति की संख्या के मुताबिक टिकट दिये जाएँ।
- जाति आधारित राजनीति देश की बुनियाद और एकता पर प्रहार कर रही है और आज जाति चुनाव जीतने में एक प्रमुख कारक बनी हुई है तथा अक्सर उम्मीदवारों का चयन उपलब्धियों, क्षमता और योग्यता के आधार पर न होकर जाति, पंथ और समुदाय के आधार पर होता है।

- स्वतंत्रता के बाद सांप्रदायिकता और धार्मिक कट्टरवाद की राजनीति ने देश के तमाम हिस्सों में आंदोलनों को जन्म दिया। साथ ही सांप्रदायिक ध्रुवीकरण ने बहुलवाद और पंथ निरपेक्षता के संघीय ढ़ांचे के लिये गंभीर खतरा पैदा कर दिया है।

1-3-2-चुनाव सुधार से संबंधित समितियाँ एवं आयोग (Committees and commissions related to election reform): -

विभिन्न समितियों एवं आयोगों ने हमारी चुनाव प्रणाली तथा चुनावी मशीनरी के साथ-साथ चुनाव प्रक्रिया की जाँच की है और सुधार के सुझाव दिये हैं। ये समितियाँ एवं आयोग निम्नलिखित हैं-

- तारकुंडे समिति (वर्ष 1974-75)
- चुनाव सुधार पर दिनेश गोस्वामी समिति (वर्ष 1990)
- राजनीति के अपराधी करण पर वोहरा समिति (वर्ष 1993)
- चुनावों में राज्य वित्तपोषण पर इंद्रजीत गुप्ता समिति (वर्ष 1998)
- चुनाव सुधारों पर विधि आयोग की रिपोर्ट (वर्ष 1999)
- चुनाव सुधारों पर चुनाव आयोग की रिपोर्ट (वर्ष 2004)
- शासन में नैतिकता पर वीरप्पा मोइली समिति (वर्ष 2007)
- चुनाव कानूनों और चुनाव सुधार पर तनखा समिति (वर्ष 2010)

उपरोक्त समितियों एवं आयोगों की अनुशंसाओं के आधार पर चुनाव प्रणाली, चुनाव मशीनरी और चुनाव प्रक्रिया में कई सुधार किये गए हैं। निम्नलिखित दो कालखंडों में बाँट कर इनका अध्ययन किया जा सकता है।

- वर्ष 2000 से पूर्व चुनाव सुधार
- वर्ष 2000 के बाद चुनाव सुधार

1-3-2-1-वर्ष 2000 से पूर्व चुनाव सुधार (Electoral Reforms before 2000): -

- संविधान के 61वें संशोधन अधिनियम, 1989 के तहत अनुच्छेद 326 में संशोधन करके मतदान की आयु 21 से घटाकर 18 वर्ष की गई।
- चुनाव कार्यों में लगे अधिकारी, कर्मचारियों को चुनाव की अवधि के दौरान चुनाव आयोग में प्रतिनियुक्ति पर माना जाएगा।
- इस अवधि में ये कर्मी चुनाव आयोग के नियंत्रण में रहेंगे।
- नामांकन पत्रों को लेकर प्रस्तावकों की संख्या में 10 फीसदी का इज़ाफा किया गया।
- राष्ट्रीय सम्मान अधिनियम, 1971 का अपमान करने पर 6 साल तक चुनाव लड़ने पर प्रतिबंध लगाना।
- दो से अधिक निर्वाचन क्षेत्रों से चुनाव लड़ने पर प्रतिबंध लगाना और उम्मीदवार की मौत पर चुनाव स्थगित न होना।
- इस चरण में अब तक के सबसे बड़े चुनाव सुधारों में इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन (EVM) का प्रचलन में आना शामिल है। इसका लक्ष्य चुनावी प्रक्रिया को निष्पक्ष, सटीक और पारदर्शी बनाना है जिससे प्राप्त परिणामों को स्वतंत्र रूप से सत्यापित किया जा सके।
- अतः सार्वजनिक क्षेत्र के दो उपक्रमों भारतीय इलेक्ट्रॉनिक्स लिमिटेड (बंगलुरू) और इलेक्ट्रॉनिक्स कॉरपोरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड (हैदराबाद) के सहयोग से भारत के चुनाव आयोग द्वारा EVM को तैयार किया गया।

- दिसंबर 1988 में संसद द्वारा कानून में संशोधन किया गया और जन प्रतिनिधित्व कानून 1951 में एक नई धारा जोड़ी गई जिसमें आयोग को EVM मशीनों के उपयोग का अधिकार दिया गया।
- प्रयोग के तौर पर EVM का पहली बार उपयोग वर्ष 1998 में राजस्थान, मध्य प्रदेश और दिल्ली के चुनावों के दौरान किया गया था।
- वर्ष 1999 में गोवा विधानसभा चुनाव में पहली बार EVM का पूरे राज्य में प्रयोग हुआ।

1-3-2-2-वर्ष 2000 के बाद चुनाव सुधार (Electoral Reforms after 2000): -

- **एक्ज़िट पोल पर प्रतिबंध:** जन-प्रतिनिधित्व अधिनियम 1951 के तहत चुनाव आयोग ने मतदान की शुरूआत होने से लेकर मतदान समाप्त होने के आधे घंटे बाद तक एक्ज़िट पोल को प्रतिबंधित कर दिया है।लोकसभा और राज्य विधानसभाओं में चुनाव के दौरान एक्ज़िट पोल के परिणाम प्रकाशित करने पर दो वर्ष का कारावास या जुर्माना अथवा दोनों सज़ा हो सकता है।
- **चुनावी खर्च पर सीलिंग:** कसभा सीट के लिये चुनावी खर्च की सीमा को बढ़ाकर बड़े राज्यों में 70 लाख रुपए कर दिया गया है वहीं छोटे राज्यों में यह सीमा 28 लाख रुपए तक है।
- **पोस्टल बैलेट के माध्यम से मतदान:** सरकारी कर्मचारियों और समस्त बलों को चुनाव आयोग की सहमति के बाद पोस्टल बैलेट के माध्यम से मतदान करने की अनुमति है।विदेशों में रहने वाले ऐसे भारतीय नागरिकों को मतदान का अधिकार है जिन्होंने किसी अन्य देश की नागरिकता हासिल नहीं की है और उनका नाम किसी भी निर्वाचन क्षेत्र की मतदाता सूची में दर्ज हो
- **जागरूकता और प्रसार:** युवा मतदाओं को चुनावी प्रक्रिया में भाग लेने के लिये प्रोत्साहित करने हेतु भारत सरकार हर वर्ष 25 जनवरी को राष्ट्रीय मतदाता दिवस के रूप में मनाती है। यह सिलसिला वर्ष 2011 से शुरू हुआ।

- **नोटा:**वर्ष 2013 से नोटा व्यवस्था लागू करना एक अहम चुनाव सुधार माना जाता है। नोटा का मतलब है उपरोक्त में से कोई नहीं। यानी नन ऑफ द एबव (None of the above) यह व्यवस्था मतदाता को किसी भी उम्मीदवार के पक्ष में वोट नहीं देने और मतदाता की पंसद को रिकॉर्ड करने का विकल्प देती है। पहले जब कोई मतदाता किसी उम्मीदवार को वोट नहीं देने का फैसला करता था तो मतदाता को बूथ के पीठासीन अधिकारी को यह बताना होता था और एक रजिस्टर पर हस्ताक्षर करना होता था। लेकिन इससे मतदाता के वोट आफ सिक्रेट बैलेट के अधिकार को नुकसान पहुँचता था।
- **मतदाता निरीक्षण पेपर ऑडिट ट्रायल:** -यह EVM से जुड़ी एक स्वतंत्र प्रणाली है, जो मतदाताओं को अनुमति देती है कि वे यह सत्यापित कर सकते हैं कि उनका मत उक्त उम्मीदवार को पड़ा है जिसके पक्ष में उसने मत डाला है।जब मत पड़ता है तो एक मुद्रित पर्ची निकलती है जिस पर उस उम्मीदवार का नाम रहता है जिसे मत दिया गया है।
- **तकनीकी का प्रयोग**:निर्वाचकों के लिये कंप्यूटरीकृत डेटाबेस का निर्माण, व्यापक फोटो इलेक्टोरल सेवा, फर्जी और डुप्लीकेट इंट्री को खत्म करने के लिये डी-डुप्लीकेशन तकनीक लाना। मतदान प्रक्रिया की विडियो रिकॉर्डिंग कराना। आयोग ने ऑनलाइन संचार यानी कोमेट नाम की एक प्रणाली विकसित की है, इससे चुनाव के दिन प्रत्येक मतदान केंद्र की निगरानी करना संभव हो गया है।GPS का उपयोग कर मतदान केंद्रों की अब रियल टाइम निगरानी भी की जा रही है। चुनाव आयोग ने चुनाव के दौरान आदर्श आचार संहिता के उल्लंघन की रिपोर्ट दर्ज़ करने में नागरिकों को सक्षम बनाने के लिये 'सीविजिल' एप लॉन्च किया है।

1-3-3--भारतीय चुनाव-प्रणाली में सुधार हेतु सुझाव (Suggestions for improving the Indian electoral system)

भारत में वर्तमान चुनाव-पद्धति में अनेक दोष देखने को मिले हैं। समय-समय पर राजनीतिक विद्वानों व राजनीतिज्ञों ने विभिन्न सुधार सुझाव प्रस्तुत किए हैं। भारतीय चुनावों के दोषों को दूर करने के लिए दिए गए सुझावों निम्नलिखित है -

I. **चुनाव आयोग को अधिक शक्तिशाली और प्रभावी बनाया जाना;** - चुनावी अनियमितताओं को ध्यान में रखते हुए यह जरूरी है कि चुनाव आयोग को अधिक प्रभावी और शक्तिशाली बनाया जाए। सरकार इस सुझाव पर विचार कर रही है कि चुनाव आयोग को दीवानी न्यायालयों द्वारा प्रयुक्त निम्न शक्तियाँ प्रदान की जाएँ -क.ऐसी शक्ति जिससे वह यह निर्णय दे सके कि चुनावी भ्रष्टाचार के कारण कोई व्यक्ति संसद या विधानसभा का सदस्य बना रहने के योग्य नहीं है।ख.चुनावी अनियमितताओं की जाँच-पड़ताल का अधिकार।ग.चुनावी अपराध सिद्ध हो जाने पर लोगों को दण्डित करने का अधिकार, जिसमें जुर्माना वसूल करना या हर्जाना दिलाना शामिल है। एक सुझाव यह दिया जा सकता है कि 'चुनाव आयोग' के पास अपनी 'स्वतन्त्र निधि'होनी चाहिए, जिससे हर छोटी-बड़ी बात के लिए उसे राज्य सरकारों का मुँह न ताकना पड़े।

II. **चुनाव आयोग का पुनर्गठन**; - भारतीय संविधान के अनुच्छेद 324 के अनुसार, चुनाव आयोग बहु-सदस्यीय हो सकता है, परन्तु काफी समय तक चुनाव आयोग एक सदस्यीय रहा। इसे बहु-सदस्यीय बनाने की माँग जोर पकड़ती गई और अब इसे बहु-सदस्यीय बना दिया गया है। वर्तमान चुनाव आयोग के सदस्य मुख्य चुनाव आयोग आयुक्त सहित तीन हैं। मुख्य चुनाव आयुक्त की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा प्रधानमन्त्री के परामर्श पर की जाती है। इसके लिए सुझाव दिया गया है कि चुनाव आयोग का गठन वैसे ही किया जाए; जैसे संघ लोक सेवा आयोग का होता है।

III. **आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली शुरू करना** भारत में चुनाव-प्रणाली का सबसे बड़ा दोष यह है कि कई बार राजनीतिक दल कम मत प्राप्त करते हैं, परन्तु उन्हें अधिक स्थान प्राप्त हो जाते हैं।

उदाहरणतः सन् 1980 में कांग्रेस को लोकसभा के लिए केवल 42.6 प्रतिशत मत मिले, परन्तु संसद में 67 प्रतिशत स्थान मिले। इस बुराई को समाप्त करने के लिए आनुपातिक प्रतिनिधित्व-प्रणाली की सूची प्रणाली को अपनाने का सुझाव दिया जाता है जिससे प्रत्येक राजनीतिक दल को उससे प्राप्त जन-समर्थन के आधार पर विधानमण्डल में स्थान प्राप्त हो सके।

IV. **मतदाता पहचान-पत्र**; - चुनाव आयोग के द्वारा 28 अगस्त, 1993 को मतदान हेतु अनिवार्य पहचान-पत्र बनाने का निर्णय लिया गया था। इस सम्बन्ध में मुख्य चुनाव आयुक्त ने राज्य सरकारों से कहा है कि मतदाताओं को पहचान-पत्र जारी कर दें।

V. **सरकारी तन्त्र का दुरुपयोग नहीं होना चाहिए**: - चुनावों के अवसर पर प्रायः शासन-तन्त्र का दुरुपयोग किया जाता है। वोट बटोरने के लिए मन्त्रियों द्वारा लोगों को तरह-तरह के आश्वासन दिए जाते हैं तथा उद्घाटन और शिलान्यास के बहाने सरकारी गाड़ियों और दूरदर्शन सुविधाओं का दुरुपयोग किया जाता है। 1968 ई0 में उच्चतम न्यायालय ने 'घासी बनाम दलसिंह' नामक केस में यह कहा था कि चुनाव से पूर्व पानी, बिजली, सड़कों की सफाई आदि पर राजकोष से व्यय करके चुनावों को प्रभावित करना 'बुरा आचरण' है। सरकारी खर्च से विज्ञापन छपवाना या सरकारी तन्त्र का चुनाव-कार्य के लिए प्रयोग पूरी तरह से निषिद्ध किया जाए।

VI. **चुनावों के व्यय के बारे में सुझाव; -** चुनाव आयोग ने समय-समय पर होने वाले व्यय को निर्धारित किया है। पहले दो चुनावों में विधानसभा के लिए अधिकतम सात हजार व लोकसभा के लिए 25 हजार रूपए निर्धारित किए गए थे।

VII. **चुने हुए प्रतिनिधियों को वापस बुलाने का अधिकार**; भारत के एक महान् नेता तथा समाज-सुधारक श्री जय प्रकाश नारायण द्वारा चलाए गए आन्दोलनों का मुख्य लक्ष्य यह था कि विधायकों को

उनकी अवधि पूरी होने से पूर्व ही वापस बुलाने का अधिकार लोगों को मिले ताकि वे जनता के प्रति अपने उत्तरदायित्व का पालन करें।

VIII. **चुनाव याचिकाओं के बारे में सुझाव;** - पिछले अनेक वर्षों से चुनाव याचिकाएँ उच्च न्यायालयों के समक्ष आई हैं, जिनका निपटारा करने में कोई वर्ष लगे हैं। चुनाव याचिकाएँ चुनावों से भी अधिक खर्चीली तथा कष्टमय बन गई हैं। इसलिए इन याचिकाओं का निपटारा शीघ्र होना चाहिए, ताकि इसके दोनों पक्षों को बेकार की मुसीबत तथा खर्च से छुटकारा मिल सके।

IX. **निर्दलीय उम्मीदवारों पर रोक;** - निर्दलीय उम्मीदवार निष्पक्ष चुनावों के लिए एक समस्या हैं, इसलिए निर्दलीय उम्मीदवारों पर रोक लगनी चाहिए। यद्यपि कानून द्वारा स्वतन्त्र उम्मीदवारों को रोका नहीं जा सकता, लेकिन फिर भी ऐसा कुछ अवश्य होना चाहिए कि मजाक के लिए चुनाव लड़ने वालों पर रोक लगे। इस सम्बन्ध में यह सुझाव दिया है कि एक तो जमानत की राशि को बढ़ा देना चाहिए।

X. **अपराधियों को चुनाव लड़ने का अधिकार नहीं होना चाहिए -** भारतीय राजनीति में अपराधीकरण की बढ़ती प्रवृति पर अंकुश लगाने के लिए यह आवश्यक है कि किसी भी स्तर पर अपराधिक मामले में संलिप्तता के कारण अदालतों में चल रहे मुकद्दमों के निर्णय होने तक उन पर किसी भी प्रकार के चुनाव लड़ने पर पूर्णतः प्रतिबंध लगाना चाहिए।

XI. **प्रत्याशियों के लिए अधिकतम उम्र सीमा निश्चित होनी चाहिए** ; - हमारे देश में साधारणतौर पर बुजुर्ग पीढ़ी का ही वर्चस्व विभिन्न दलों में देखने को मिलता है जिससे युवा-पीढ़ी का राजनीतिक भविष्य वास्तव में दब जाता है या प्रभावहीन हो जाता है, जैसे अमेरिकी संविधान में व्यवस्था की गई है कि कोई भी व्यक्ति 10 वर्ष से अधिक राष्ट्रपति पद धारण नहीं कर सकता, वैसी ही व्यवस्था हमारे देश में भी उच्च राजनीतिक पदों एवं प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में अधिकतम आयु

सीमा के रूप में कर सकते हैं। जैसे हमारे देश में सरकारी कर्मचारियों के लिए अधिकतम आयु सीमा निश्चित की गई, वैसे ही राजनीतिक दृष्टि से भी ये सीमा 70 या 75 वर्ष के रूप में कर सकते हैं ताकि युवा-पीढ़ी के लिए जहाँ अवसर प्रदान कर सकेंगे वहाँ नए विचारों के नेतृत्व के रूप में भी देश को विकास की ओर अग्रसर करने की सम्भावना विकसित होगी।

XII. **लोकसभा एवं राज्य विधानसभाओं के चुनाव एक साथ करवाना** ; - वर्तमान सरकार के द्वारा चुनाव सुधार के रूप में लोकसभा एवं विधानसभा के चुनाव एक साथ करवाने के लिए महत्वपूर्ण सुझाव दिया जा रहा है जोकि विगत एक-दो वर्षों से एक चर्चा एवं मंथन का विषय बना हुआ है। इस सम्बन्ध में राजनीतिक दलों को अपने संकीर्ण-स्वार्थ को छोड़कर राष्ट्रीय हितों की चिन्ता करनी चाहिए कि हमें देश पर बढ़ते चुनावी आर्थिक बोझ के साथ-साथ आए दिन होने वाले चुनावों में लागू होने वाली आचार संहिता विकास कार्यों पर भी रोक लगाती है। हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि जब छठें दशक तक भारत में लोकसभा एवं विधानसभा चुनाव एक साथ होते रहे तो अब क्यों नहीं हो सकते। यदि इस कदम हेतु हमें संविधान संशोधन की आवश्यक है तो हमें पीछे नहीं हटना चाहिए।

1-3-5-भारतीय निर्वाचन पद्धति की आलोचना (Criticism of the Indian electoral system):

- भारत में फर्स्ट पास्ट द पोस्ट विधि से जनप्रतिनिधि चुने जाते हैं। अर्थात हर सीट पर सबसे ज्यादा वोट पाने वाला उम्मीदवार विजयी होता है। इसलिये जिन राजनीतिक दलों के वोट बिखरे हुए हैं, उन्हें कुल मिलाकर अच्छा-खासा वोट मिलने के बावजूद मुमकिन है कि उसके प्रतिनिधि जीतकर न आएँ।
- ये राजनीतिक दल जिन सामुदायिक वर्गों का प्रतिनिधित्व करते हैं, उन समूहों की आवाज़ सदन में अनसुनी रह सकती है। उदाहरण के तौर पर वर्ष 2014 के लोकसभा चुनाव में बहुजन समाजवादी

पार्टी को यूपी में लगभग 20% और देश में 4.1% वोट मिले। परिणामस्वरूप वह देश की तीसरी सबसे बड़ी पार्टी बनी, फिर भी लोकसभा में उसका कोई प्रतिनिधि नहीं था।

- इसी प्रकार वर्ष 2019 के लोकसभा चुनाव में राष्ट्रीय जनता दल को बिहार में 15% वोट मिले, लेकिन उसका एक भी सदस्य चुनाव नहीं जीत पाया। यह प्रणाली भारत की निर्वाचन पद्धति का एक प्रमुख दोष है।
- साफ-सुथरे चुनावों और राजनीतिक पारदर्शिता से ही लोकतंत्र को वैधता मिलती है। ऐसे में महत्त्वपूर्ण चुनावी सुधारों को लागू कराना बहुत ज़रूरी है ताकि लोकतांत्रिक भारत भ्रष्टाचार और आपराधिक माहौल से मुक्त होकर विकास और समृद्धि की ओर अग्रसर हो सके।
- चुनाव के दौरान नेताओं के धार्मिक स्थलों पर जाने और धार्मिक नारे लगाए जाने पर रोक लगनी चाहिये तथा इसका सख्ती से पालन होना चाहिये।
- पेड न्यूज़ और फेक न्यूज़ पर सख्ती से रोक लगनी चाहिये। इनके ज़रिये जनमत को प्रभावित करने की कोशिश होती है, जिसका असर चुनावों पर होता है।
- सोशल मीडिया प्लेटफार्मों के विनियमन के लिये आचार संहिता निर्मित करने की आवश्यकता है।
- 'वन नेशन वन इलेक्शन' के मुद्दे पर व्यापक विचार-विमर्श आयोजित करने की आवश्यकता है।

1-4- विषय वास्तु का पुन: प्रस्तुतिकरण (Presentation of further Contents)

1-4-1- दल-बदल अर्थ व परिभाषा (Meaning and definition of defection):-

दल-बदल का साधारण अर्थ एक-दल से दूसरे दल में सम्मिलित होना हैं।

चव्हाण समिति ने दल-बदल की परिभाषा इस प्रकार की है, "यदि कोई व्यक्ति किसी राजनीतिक दल के सुरक्षित चुनाव चिह्न पर संसद के किसी सदन अथवा किसी राज्य या संघ शासित क्षेत्र की

विधानसभा या विधान परिषद् का सदस्य निर्वाचित होने के पश्चात् स्वेच्छा से उस राजनीतिक दल के प्रति अपनी निष्ठा का परित्याग करता है या उस राजनीतिक दल से सम्बन्ध तोड़ता है और उसका यह कार्य उसके दल के किसी सामूहिक निर्णय का परिणाम नहीं है, तो ऐसा करना दल-बदल कहलाएगा।"

सुभाष कश्यप ने दल-बदल की परिभाषा अपनी पुस्तक 'दल-बदल और राज्यों की राजनीति' में इस प्रकार दी है, "जब कोई विधायक व्यक्तिगत रूप से अथवा सैद्धान्तिक मतभेदों के कारण अपने दल से त्याग-पत्र दे देता है या नया राजनीतिक दल बना लेता है या दल की सदस्यता का त्याग किए बिना ही उस दल के विरुद्ध सदन में मतदान करता है, तो उसे राजनीतिक दल-बदल कहते हैं।"

जयप्रकाश नारायण के अनुसार, "विधानमण्डल के लिए निर्वाचित कोई भी सदस्य, जिसे किसी राजनीतिक दल का सुरक्षित चुनाव चिह्न मिला था, यदि वह चुने जाने के पश्चात् उस राजनीतिक दल से अपने सम्बन्ध तोड़ लेने या उसमें अपनी आस्था समाप्त करने की घोषणा करता है, तो उसे दल-बदल ही समझा जाना चाहिए, बशर्ते उसकी कार्यवाही सम्बद्ध पार्टी के फैसले के अनुसार न हो।" इस प्रकार राजनीतिक दल-बदल का अर्थ है -

I. किसी विधायक द्वारा उस पार्टी को छोड़ देना जिसके टिकट पर वह चुना गया है और दूसरे दल में चला जाना।
II. किसी दल को छोड़कर विधायक का निर्दलीय हो जाना।
III. निर्दलीय रूप में विधायक बनना और बाद में किसी दल की सदस्यता ग्रहण कर लेना।
IV. किसी विधायक का मूल सिद्धान्तों पर अपने दल की नीतियों के विरुद्ध मतदान करना।
V. दल के द्वारा दिए गए निर्देशों का पालन न करना।
VI. जब एक मिली-जुली सरकार के घटक राजनीतिक दलों के सदस्य उस सरकार के एक घटक दल को छोड़ अन्य घटक दल में शामिल हो जाए ।

VII. या फिर विरोधी दलों में से अपना दल छोड़कर, दूसरे विरोधी दल में शामिल हो जाना।

VIII. या राजनीतिक पदों और निजी स्वार्थ के लिए अपना दल छोड़कर दूसरे दल में शामिल होना।

1-4-2-भारत में राजनीतिक दल-बदल (Political Defection in India): -

भारत में दल-बदल की घटनाएं कोई ऐसी नई बात नहीं है जो चौथे आम चुनाव के बाद ही सामने आई हैं। 1947 के निर्वाचनों के बाद संयुक्त प्रांत से मुख्यमंत्री गोविंद बल्लभ पंत ने मुस्लिम लीग के कुछ सदस्यों को कांग्रेस में शामिल होने का प्रलोभन दिया गया था और हाफिज मुहम्मद इब्राहिम को मंत्रिमंडल में शामिल कर लिया गया था। साल 1962 में मद्रास के राज्यपाल श्री प्रकाश ने राजगोपालाचारी को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया गया था। कांग्रेस के अल्पमत में होते हुए भी जैसे ही राजाजी को सरकार बनाने का अवसर दिया गया वैसे ही 16 विरोधी सदस्यों ने कांग्रेस पार्टी में सम्मिलित होना स्वीकार कर लिया था और इस तरह कांग्रेस को स्पष्ट बहुमत प्राप्त हो गया था। अगस्त 1958 में उत्तर प्रदेश विधानसभा के 98 सदस्यों ने मुख्यमंत्री डॉ. संपूर्णानंद में अविश्वास वक्त किया था, जिसके परिणाम स्वरूप कुछ ही समय बाद मुख्यमंत्री को त्यागपत्र देना पड़ा गया था। साल 1960 में केरल में कांग्रेस दल को सबसे अधिक सीट प्राप्त हुई थी और उसने आर.शंकर के नेतृत्व में वहां मंत्रिमंडल की स्थापना की। 2 सितंबर,1964 को 15 कांग्रेस सदस्यों ने कांग्रसे दल से नाता तोड़ दिया और परिणामस्वरूप मंत्रिमंडल का पतन हो गया था। 1952 में राजस्थान में कांग्रेस सरकार के स्थायित्व की वजह दल-बदल थी। कई निर्दलीय सदस्यों ने कांग्रेस के पक्ष में दल-बदला, जिससे कांग्रेस के विधायकों की संख्या अधिक हो गई। गैर-कांग्रेसी दलों में गठजोड़ होते रहे हैं अनेक बार ये गठजोड़ बिल्कुल विरोधी और विपरीत दलों में भी हुए हैं।

दल-बदल कानून को चुनौती देने वाले मामले दल-बदल कानून की वैधता को पंजाब के पूर्व मुख्यमंत्री प्रकाशसिंह बादल और 25 अन्य विधायकों ने चुनौती दी थी। ये सभी विधायक अकाली दल से पृथक

हो गए थे। पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय ने 1 मई,1987 को एक महत्वपूर्ण निर्णय में दल-बदल रोकने के लिए बनाए गए संविधान के 52वें संविधान संशोधन अधिनियम को वैध ठहराया था, लेकिन कोर्ट ने इसकी धारा 7 को गैर-कानूनी घोषित कर दिया था। अधिनियम की धारा 7 में यह प्रावधान है कि किसी सद्स्य को अयोग्य ठहराए जाने के निर्णय को अदालत में चुनौती नहीं दी जा सकती है। इस निर्णय के कुछ ही समय बाद पंजाब के विधानसभा अध्यक्ष सुरजीतसिंह मिन्हास ने प्रकाशसिंह बादल सहित 11 विधायकों को अयोग्य घोषित कर दिया था, जिससे उनकी सीट खाली हो गई थी। दल-बदल रोकने के लिए 52 वां संविधान संशोधन जैसा कानून बन जाने के बाद भी नागालैंड (1988), मिजोरम (1988), कर्नाटक (1989), गोवा (1990), नागालैंड (1990), मेघालय (1991), मणिपुर (1992), नागालैंड (1992) और मणिपुर (2001) में दल-बदल हुआ था। उस स्थिति में कानून के प्रावधानों को लागू न करके वहां राष्ट्रपति शासन लागू किया गया था। साल 1998-99 में गोवा दल-बदल और बदलती सरकारों के कारण सुर्खियों में रहा था। 17 महीने में गोवा में पांच मुख्यमंत्री बदल गए थे और फरवरी-जून 1999 में चार महीने तक के लिए राष्ट्रपति शासन लागू किया गया था। 28 जुलाई, 1989 को राज्यसभा के सभापति डॉ. शंकरदयाल शर्मा ने मुफ्ती मोहम्मद सईद की राज्यसभा की सदस्यता दल-बदल अधिनियम के तहत समाप्त कर दी थी। नंवबर 1990 में केंद्र में वी.पी सिंह सरकार के पतन के बाद जिस तहर चंद्रशेखर के नेतृत्व में 54 सांसदों के एक गुट ने दल-बदल करते हुए समाजवादी जनता पार्टी के रूप में विपक्षी कांग्रेस के समर्थन से केंद्र में दल-बदल के जरिए नई सरकार बनाई गई, यह भारतीय लोकतंत्र के इतिहास की एक अपूर्व और निराली घटना थी। हालंकि बाद में लोकसभा अध्यक्ष रवि राय ने उनके मंत्रिमंडल के मात्र 5 सदस्यों को 52 वें संविधान संशोधन के तहत दल-बदल का दोषी पाया और उनकी संसद की सदस्यता समाप्त कर दी गई थी। 19 अक्टूबर, 1997 को कल्याण सिंह की सरकार से मायावती द्वारा समर्थन वापस लेने के बाद कल्याण सिंह ने

बहुमत हासिल करने के लिए कांग्रेस, जनता दल और बहुजन समाज पार्टी का जो विभाजन करवाया था, वह एक तरह से दल-बदल ही था। कल्याण सिंह ने विधानसभा में इनकी सरकार को समर्थन देने वाले दल-बदलू को मंत्रिमंडल में शामिल करके 93 सदस्यीय मंत्रिमंडल बना डाला था। साल 2016 में उत्तराखंड और अरूणाचल प्रदेश में दल-बदल के कारण ही राजनीतिक अस्थिरता उत्पन्न हुई थी और फिर राष्ट्रपति शासन लागू करने की स्थिति पैदा हुई थी। 31 दिसंबर, 2016 को अरूणाचल प्रदेश के मुख्यमंत्री पेमा खांडू सहित पीपुल्स पार्टी ऑफ अरूणाचल (पीपीए) के 33 विधायक भाजपा में शामिल हो गए थे। इसके साथ ही बिना मुख्यमंत्री बदले अरूणाचल प्रदेश में भाजपा की पहली पूर्ण बहुमत की सरकार बन गई थी। इससे पहले साल 2016 में ही पेमा खांडू कांग्रेस और पीपीए की सरकार में मुख्यमंत्री रह चुके थे। सुप्रीम कोर्ट के समक्ष दल-बदल कानून से जुड़े मामले सुप्रीम कोर्ट ने नंवबर 1991 में दल-बदल विरोधी कानून के बारे में एक महत्वपूर्ण फैसला सुनाया था। यह फैसला मेघालय, मणिपुर, नागालैंड, गुजरात और मध्य प्रदेश के अयोग्य ठहराए गए विधायकों की याचिकाओं के सिलसिले में दिया गया था। सुप्रीम कोर्ट ने मेघालय विधानसभा के अध्यक्ष के. आर. किंडियाह के उस निर्णय को रद्द कर दिया, जिसमें उन्होंने लिंगदोह मंत्रिमंडल के पाच सदस्यों को बर्खास्त कर दिया था, जो निर्दलीय विधायक थे। इन विधायकों को बर्खास्त किए जाने से एक राजनीतिक संकट उत्पन्न हो गया था, जिसके परिणामस्वरूप राज्य में राष्ट्रपति शासन लगा दिया गया था। कोर्ट ने दल-बदल विरोधी कानून को वैध ठहराया, लेकिन 10 वीं अनुसूची के अनुच्छेद 7 के प्रावधानों को स्पष्ट किया था। अनुच्छेद 7 के अनुसार अध्यक्षों के निर्णयों पर कोर्ट को पुनर्विचार का अधिकार नहीं है। कोर्ट ने दल-बदल विरोधी अधिनिमय के इस प्रावधान को अवैध करार दिया। कोर्ट के मुताबिक किसी सदस्य को अयोग्य करार देते समय अध्यक्ष या सभापति न्यायाधिकरण के रुप में कार्य करते हैं, इसलिए न्यायाधिकरण के निर्णयों की तरह उनके निर्णयों पर भी कोर्ट के द्वारा समीक्षा की जा सकती है।

भारतीय राजनीति में 'दल-बदल' काफी प्रचलित है। इसे आसान भाषा में आप कह सकते हैं कि सांसद या विधायक द्वारा एक दल (अपना दल) छोड़कर दूसरे दल में शामिल होना। जिस तरह से सासंद और विधायक अपने राजनीतिक और निजी लाभ के लिए दल बदलते रहते हैं

वैसे तो भारतीय राजनीति में सन् 1952 से ही दल-बदल की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई थी जब मद्रास के राज्यपाल ने कांग्रेसी नेता राजगोपालाचारी को सरकार बनाने के लिए आमन्त्रित किया और उन्होंने 16 विधायकों को कांग्रेस में मिलाकर सरकार बनाई। परन्तु सन् 1967 के आम चुनावों के बाद से तो दल-बदल अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई। मार्च, 1967 से दिसम्बर, 1970 तक विधायकों ने दल बदले, फलस्वरूप प्रान्तों में नई सरकारें बनती रहीं, टूटती रहीं और राष्ट्रपति शासन लागू होता रहा। कारण यह था कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् पहली बार सन् 1967 में कई राज्यों में कांग्रेस को बहुमत नहीं मिला। अत: सत्ता प्राप्ति के लिए दल-बदल को प्रोत्साहन मिला।

1957 से 1967 तक की अवधि में रिसर्च के अनुसार 542 बार लोगों सांसद या विधायक ने अपने दल बदले। 1967 में चौथे आम चुनाव के प्रथम वर्ष में भारत में 430 बार सासंद या विधायक ने दल बदलने का रिकॉर्ड कायम हुआ है। 1967 के बाद एक और रिकॉर्ड कायम हुआ, जिसमें दल बदलुओं के कारण 16 महीने के भीतर 16 राज्यों की सरकारें गिर गईं। इसी समय हरियाणा के विधायक गयालाल ने 15 दिन में ही तीन बार दल-बदल के हरियाणा की राजनीति में एक नया रिकॉर्ड बनाया था। जुलाई 1979 में जनता पार्टी में दल-बदल के कारण चौधरी चरणसिंह प्रधानमंत्री पर आसीन हो गए थे। जनवरी 1980 के लोकसभा निर्वाचनों के बाद कर्नाटक की कांग्रेस(अर्स) और हरियाणा की जनता पार्टी की सरकार दल-बदल के कारण कांग्रेस की सरकार बन गई थी। हरियाणा के मुख्यमंत्री भजनलाल 47 विधायकों के साथ जनता पार्टी छोड़कर कांग्रेस (आई) में आ गए, जो एक मिसाल के साथ-साथ एक नया रिकॉर्ड कायम हुआ था।

यद्यपि दल-बदल विदेशों में भी होता है, वहाँ केवल विधायक के राजनीतिक विचारों में परिवर्तन व दल से मौलिक मतभेद के कारण दल-बदल होता है। भारत की तरह केवल अपने व्यक्तिगत स्वार्थ या कुर्सी पाने के लिए 'दल-बदल' नहीं होता है।

1-4-3-भारत में राजनीतिक दल-बदल के कारण (reasons for political Defection in India):

भारत में राजनीतिक दल-बदल के कारण निम्नलिखित हैं -

- **कांग्रेस के एकाधिकार की समाप्ति: -** चौथे आम चुनावों (1967) में 4 राज्यों में कांग्रेस का बहुमत समाप्त हो गया था, परन्तु विरोधी दलों को भी बहुमत नहीं मिला। सन् 1967 के आम चुनावों ने तो स्थिति में एकदम परिवर्तन ला दिया। कोई-कोई विधायक तो एक दिन में कई-कई बार दल-बदल करने लगा।
- **राजनेताओं में परस्पर मतभेद व कांग्रेस में गुटबन्दी: - सन् 1967** के चुनावों के पश्चात् भारत में दल-बदल का जो दौर आरम्भ हुआ, उसके लिए विभिन्न राजनीतिक दलों के नेताओं में प्रतिद्वन्द्विता तथा आपसी मतभेद उत्तरदायी थे। उत्तर प्रदेश में श्री चन्द्रभान गुप्त के नेतृत्व में कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल का पतन चौ. चरणसिंह द्वारा दल बदलने के कारण हुआ। चुनावों के पूर्व चौ. चरणसिंह भी मुख्यमन्त्री पद के प्रत्याशी थे, परन्तु चुनावों के पश्चात् चन्द्रभान गुप्त ही कांग्रेस विधायक दल के नेता निर्वाचित हए। संयुक्त विधायक दल (संविद) की ओर से चौ. चरणसिंह को मुख्यमन्त्री बनाने की पेशकश की गई। अत: चौ. चरणसिंह ने सदन में राज्यपाल के अभिभाषण के धन्यवाद प्रस्ताव पर मतदान के समय ही कांग्रेस से त्याग-पत्र देकर 'जन कांग्रेस' नामक नये दल की स्थापना की घोषणा की। चौ. चरणसिंह के इस ऐतिहासिक दल-बदल के पश्चात् उत्तर प्रदेश में गुप्त मन्त्रिमण्डल का पतन हुआ तथा श्री सिंह के नेतृत्व में संविद सरकार बनी।

- **सत्ता एवं मन्त्री पद का प्रलोभन: -** दल-बदल की घटमाओं के पीछे एक महत्त्वपूर्ण कारण राजसत्ता तथा मन्त्री पद का आकर्षण था। सन् 1967 के आम चनावों के पश्चात प्रथम वर्ष में हुई दल-बदल में लगभग 215 दल-बदल विधायकों को विभिन्न सरकारी आयोगों तथा निगमों का अध्यक्ष बनाया गया। इस दौरान विधायकों में प्रबल राजनीतिक महत्त्वाकांक्षाएँ जाग्रत हो गई थीं। अतः दल-बदल का सिलसिला चलता रहा।
- **राज्यों में स्थिर सरकार का होना: -** दल-बदल की घटनाओं के लिए एक महत्त्वपूर्ण कारण सन् 1967 के चुनावों के पश्चात् राज्यों में स्थिर सरकार का न बनना था। अधिकांश राज्यों में कांग्रेस अथवा गैर-कांग्रेस सरकारें एक या दो विधायकों के बहुमत से चल रही थीं। इस राजनीतिक अनिश्चितता की स्थिति ने भी दल-बदल की घटनाओं को बढ़ावा दिया।
- **गैर-कांग्रेसी संविद सरकारों का संगठन राजनीतिक ध्रुवीकरण के आधार पर न होना: -** इस दौर में राजनीतिक दल-बदल के लिए संविद सरकारों में सम्मिलित घटकों के राजनीतिक विचार में विरोधाभास पाया जाना भी उत्तरदायी था। कांग्रेस के विकल्प के रूप में जहाँ-जहाँ संविद सरकारें बनीं, वहाँ उनमें एक ओर तो जनसंघ तथा स्वतन्त्र पार्टी जैसे कट्टर दक्षिणपंथी दल और दूसरी ओर भारतीय साम्यवादी दल जैसे वामपंथी दल भी सम्मिलित थे, जिनके फलस्वरूप दल-बदल को प्रोत्साहन मिला।
- **शक्तिशाली लॉबियों तथा दबाव गुटों की भी भारतीय राजनीति में महत्त्वपूर्ण भूमिका: - सन् 1967** के आम चुनावों के पश्चात् राजनीतिक अस्थिरता के दौर से भारतीय राजनीति में विभिन्न लॉबियों तथा दबाव गुटों का महत्त्व बढ़ गया। इन लॉबियों के दबाव के कारण विधायकों को भी विवश होकर अपनी राजनीतिक निष्ठा में परिवर्तन करना पड़ा। कोई विधायक

इन लॉबियों तथा दबाव गुटों को नाराज करके अपने भविष्य को असुरक्षित नहीं करना चाहता था।

- **राष्ट्रीय स्तर के नेता का अभाव: -** दल-बदल की घटनाओं में वृद्धि का एक उल्लेखनीय कारण एक ऐसे राष्ट्रीय स्तर के नेता का अभाव था जो विभिन्न घटकों में समन्वय रख सकता।
- **चुनाव के लिए पार्टी का टिकट न मिलना: -** जब किसी दल के किसी सदस्य को या उसके साथी को पार्टी टिकट नहीं मिलता है, तो वह उस दल को छोड़ देता

1-4-4-भारतीय राजनीति में राजनीतिक दल-बदल के प्रभाव (Effects of political Defection in Indian politics): -

इसके अनेक दूषित प्रभाव निम्न प्रकार दृष्टिगोचर हुए हैं। -

I. राजनीतिक अस्थिरता उत्पन्न हुई है।
II. नैतिक मूल्यों में गिरावट आई है।
III. छोटे-छोटे दलों का उदय हुआ है।
IV. मन्त्रिमण्डलों का अनावश्यक विस्तार होता रहता है।
V. जन-कल्याण की उपेक्षा की जाती रही है।
VI. प्रजातान्त्रिक आस्थाओं में जनता का विश्वास कम हुआ है।

1-4-5-दल-बदल रोकने के लिए प्रयास (Efforts to stop Defection): -

वर्तमान समय में हम विभिन जनप्रतिनिधियों को सत्ता के लालच, मंत्रीपद, वित्तीय लाभ एवं अन्य प्रकार के लाभ प्रस्तावों के लिए एक पार्टी से दूसरी पार्टी में जाने की घटनाओं को प्रतिदिन देखते है। जनप्रतिनिधि द्वारा चुनाव एक पार्टी के टिकट पर लड़ा गया एवं इसके बाद जनप्रतिनिधि ने अपनी

पार्टी बदल दी, इस प्रकार की घटनाएँ चुनावों के पश्चात आम है। दल-बदल रोकने के लिए प्रयास शुरुआत 60 के दशक में हुयी थी जब दल-बदल की राजनीति अपने जोरों पर थी। वर्ष 1967 में हरियाणा से विधानसभा सदस्य विधायक 'गया लाल' द्वारा एक दिन में ही 3 पार्टी बदलने के कारण इस मुद्दे को राजनीतिक मुख्यधारा में ला खड़ा किया था। सरकारों को अस्थिरता से बचाने एवं दल-बदल को हतोत्साहित करने के लिए दल-बदल रोकने के लिए विभिन्न प्रयास किये गये जिनका विवरण निम्न प्रकार से है :-

I. **श्री वाई. बी. चहवाण समिति की सिफारिशें:-**

- सन् 1968 में कांग्रेसी संसद सदस्य बैंकट सुबैय्या द्वारा लोकसभा में एक गैर-सरकारी प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया। 24 नवम्बर को इस विधेयक को लोकसभा द्वारा पारित किया गया। फरवरी, 1969 में लोकसभा ने दल-बदल की समस्या का अध्ययन करने, इसे रोकने एवं सुझाव देने के लिए तत्कालीन गृह मन्त्री श्री वाई. बी. चहवाण की अध्यक्षता में एक समिति गठित की, जिसने निम्नलिखित सिफारिशें प्रस्तुत की है।:-सभी राजनीतिक दल आम सहमति से एक ऐसी संहिता बनाएँ जो लोकतान्त्रिक तथा नैतिक मूल्यों पर आधारित हो। सभी राजनीतिक दल स्वेच्छा से इसका पालन करें।
- चहवाण समिति की दूसरी महत्त्वपूर्ण सिफारिश यह थी कि जो विधायक दल-बदल करें, उन्हें मन्त्री न बनाया जाए। अतः जब विधायकों के सामने सत्ता तथा मन्त्री पद का आकर्षण नहीं होगा, तो दल-बदल के लिए उन्हें प्रोत्साहन नहीं मिलेगा।
- समिति ने अपनी रिपोर्ट में कहा कि प्रधानमन्त्री अथवा मुख्यमन्त्री को निचले सदन का प्रतिनिधित्व करना चाहिए।

- चह्वाण समिति की एक सिफारिश यह थी कि मन्त्रिमण्डल का आकार सीमित किया जाना चाहिए।
- समिति की एक सिफारिश यह भी थी कि देश के राजनीतिक संगठनों तथा प्रतिनिधि संस्थाओं का मार्गदर्शन करके समुचित व्यवस्था की जानी चाहिए तथा इसके लिए निर्देशक सिद्धान्त निश्चित किए जाने चाहिए।
- समिति ने अपनी रिपोर्ट में सिफारिश की थी कि मन्त्रिपरिषद को । विधानसभा भंग करने की सिफारिश करने का अधिकार प्राप्त करना चाहिए, ताकि दल-बदलुओं की सरकार के निर्माण तथा पतन में कोई भूमिका न रहे।
- इस समिति ने यह भी सुझाव दिया कि जनता द्वारा मनोनीत प्रतिनिधियों को यदि आवश्यक हो तो निर्वाचन द्वारा प्रत्यावर्तन की व्यवस्था की जाए।
- समिति ने दल-बदल को रोकने के लिए यह सिफारिश की थी कि दल-बदलुओं को विधानमण्डल की सदस्यता के लिए अयोग्य ठहरा दिया जाए। इसके लिए 'जनप्रतिनिधित्व कानून' में आवश्यक संशोधन भी किया जाए।
- निर्वाचित विधायकों को तब तक उसी दल से सम्बन्धित माना जाए जिसके चुनाव चिह्न पर उन्होंने चुनाव जीता है, जब तक कि वे विधानसभा की सदस्यता से त्याग-पत्र देकर दोबारा चुनाव नहीं लड़ते।

II. **दल-बदल रोकने हेतु 48वाँ संशोधन विधेयक 1978:-**

जनता पार्टी की सरकार ने दल-बदल को रोकने के लिए एक विधेयक (48वाँ संशोधन विधेयक) 1978 में रखा, परन्तु जनता पार्टी में ही सदस्यों के परस्पर विरोधी विचारों के कारण यह विधेयक वापस ले लिया गया।

III. **52वाँ संविधान संशोधन दल-बदल अधिनियम** (**anti-defection law**): **-** भारतीय संसद द्वारा वर्ष 1985 में दल-बदल अधिनियम को भारतीय संविधान में शामिल किया गया था। भारतीय संविधान में दल-बदल अधिनियम को 52वें संविधान द्वारा वर्ष 1985 में जोड़ा गया था जिससे की दल-बदल को हतोत्साहित किया जा सके। भारतीय संविधान की 10वीं अनुसूची दल-बदल अधिनियम से सम्बंधित है जिसके तहत निर्वाचित सदस्यों के दल-बदल सम्बंधित प्रावधानों की विस्तृत जानकारी प्रदान की गयी है। वर्ष 1991 एवं वर्ष 2003 में दल-बदल अधिनियम में संशोधन के माध्यम से इस कानून को और भी मजबूत बनाया गया है। संसद ने दल-बदल पर रोक लगाने के लिए 52वाँ संविधान संशोधन अधिनियम सन् 1985 में सर्वसम्मति से पारित कर दिया। इसकी प्रमुख व्यवस्थाएँ निम्नलिखित हैं:-

- निम्न परिस्थितियों में संसद/विधानसभा की सदस्यता की समाप्ति हो।

(i) यदि वह स्वेच्छा से अपने दल से त्याग-पत्र दे दे।

(ii) यदि वह अपने दल या उसके द्वारा अधिकृत व्यक्ति की अनुमति के बिना सदन में उसके निर्देश के प्रतिकूल मतदान करे या मतदान में अनुपस्थित रहे, परन्तु यदि 15 दिन के अन्दर दल उसे इस उल्लंघन के लिए क्षमा कर दे, तो उसकी सदस्यता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

(iii) यदि कोई निर्दलीय निर्वाचित सदस्य किसी राजनीतिक दल में सम्मिलित हो जाए।

(iv) यदि कोई मनोनीत सदस्य शपथ लेने के 6 माह बाद किसी राजनीतिक दल में सम्मिलित हो जाए।

- किसी राजनीतिक दल के विघटन पर सदस्यता समाप्त नहीं होगी, यदि मूल दल के एक-तिहाई सांसद/विधायक दल छोड़ दें।

- इसी प्रकार विलय की स्थिति में भी दल-बदल नहीं माना जाएगा, यदि किसी दल के कम-से-कम दो-तिहाई सदस्य उसकी स्वीकृति दें।
- दल-बदल पर उठे किसी भी प्रश्न पर अन्तिम निर्णय सदन के अध्यक्ष का होगा और किसी भी न्यायालय को उसमें हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं होगा।
- सदन के अध्यक्ष को इस विधेयक को कार्यान्वित करने के लिए नियम बनाने का अधिकार होगा।

IV. **91 वां संवैधानिक संशोधन, 2003 दल:** -बदल पर पूर्ण रोक लगाने और मंत्रिपरिषद का आकार सीमित करने के उद्देश्य से 91 वां संवैधानिक संशोधन, 2003 ऐतिहासिक सीमा-चिन्ह है। इस अधिनियम की निम्नलिखित विशेषताएं हैं;

- दल-बदल करने वाले सांसद एंव विधायक की सदस्यता स्वत: ही समाप्त हो जाएगी, भले ही उनकी संख्या कितनी भी क्यों न हो।
- (2) दल-बदल करने वाले सदस्य किसी भी प्रकार का सरकारी एंव लाभ का पद प्राप्त नहीं कर सकता है।
- सदन की सदस्यता हासिल करने के लिए पुन: चुनाव जीतना अनिवार्य है।
- मंत्रिपरिषद का आकार केंद्र एंव बड़े राज्यों में लोकप्रिय सदन की सदस्य संख्या का 15 फीसदी ही हो सकेगा।
- छोटे राज्यों में मंत्रियों की न्यूनतम संख्या 12 निर्धारित की गई है।
- जहां अभी मंत्रिपरिषद का आकार 15 प्रतिशत से ज्यादा है, इस अधिनियम के लागू होने के छह महिने के अंदर आकार को 15 प्रतिशत तक करना होगा।

- अधिनियम द्वारा 1985 के 52वें संविधान संशोधन के एक-तिहाई वाले प्रावधान को हटा दिया गया है। अब एक-तिहाई सदस्यों के विभाजन को मान्यता नहीं दी जा सकेगी।

V. **दिनेश गोस्वामी समिति:** - वर्ष 1990 में चुनावी सुधारों को लेकर गठित दिनेश गोस्वामी समिति ने कहा था कि

(1)-दल-बदल कानून के तहत प्रतिनिधियों को अयोग्य ठहराने का निर्णय चुनाव आयोग की सलाह पर राष्ट्रपति/राज्यपाल द्वारा लिया जाना चाहिये।

(2)-संबंधित सदन के मनोनीत सदस्यों को उस स्थिति में अयोग्य ठहराया जाना चाहिये यदि वे किसी भी समय किसी भी राजनीतिक दल में शामिल होते हैं।

VI. **फरवरी, 1992** में तत्कालीन लोकसभा स्पीकर शिवराज पाटिल ने एक सर्वदलीय बैठक बुलाई, जिसमें इस प्रश्न पर आम सहमति थी कि दल-बदल विरोधी कानून में उपयुक्त संशोधन किए जाएँ, ताकि न्यायपालिका और विधायिका के मध्य टकराव की स्थिति न आए।

VII. **विधि आयोग की 170वीं रिपोर्ट: -**वर्ष 1999 में विधि आयोग ने अपनी 170वीं रिपोर्ट में कहा था कि:-

- चुनाव से पूर्व दो या दो से अधिक पार्टियाँ यदि गठबंधन कर चुनाव लड़ती हैं तो दल-बदल विरोधी प्रावधानों में उस गठबंधन को ही एक पार्टी के तौर पर माना जाए।
- जनीतिक दलों को व्हिप (Whip) केवल तभी जारी करनी चाहिये, जब सरकार की स्थिरता पर खतरा हो। जैसे- दल के पक्ष में वोट न देने या किसी भी पक्ष को वोट न देने की स्थिति में अयोग्य घोषित करने का आदेश।

अक्टूबर, 1997 में शिमला में आयोजित विधानमण्डलों के स्पीकरों के सम्मेलन में सभी प्रकार के दल-बदल को रोकने के लिए कानून बनाए जाने के सम्बन्ध में प्रस्ताव पारित किया गया।

1-4-6-दल-बदल अधिनियम की प्रासंगिकता (Relevance of the Defection Act): -

I. दल-बदल विरोधी कानून ने राजनीतिक दल के सदस्यों को दल बदलने से रोक कर सरकार को स्थिरता प्रदान करने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। 1985 से पूर्व कई बार यह देखा गया कि राजनेता अपने लाभ के लिये सत्ताधारी दल को छोड़कर किसी अन्य दल में शामिल होकर सरकार बना लेते थे जिसके कारण जल्द ही सरकार गिरने की संभावना बनी रहती थी। ऐसी स्थिति में सबसे अधिक प्रभाव आम लोगों हेतु बनाई जा रही कल्याणकारी योजनाओं पर पड़ता था। दल-बदल विरोधी कानून ने सत्ताधारी राजनीतिक दल को अपनी सत्ता की स्थिरता के बजाय विकास संबंधी अन्य मुद्दों पर ध्यान केंद्रित करने के लिये प्रेरित किया है।

II. कानून के प्रावधानों ने धन या पद लोलुपता के कारण की जाने वाली अवसरवादी राजनीति पर रोक लगाने और अनियमित चुनाव के कारण होने वाले व्यय को नियंत्रित करने में भी मदद की है।

III. साथ ही इस कानून ने राजनीतिक दलों की प्रभाविता में वृद्धि की है और प्रतिनिधि केंद्रित व्यवस्था को कमज़ोर किया है।

IV. लोकतंत्र में संवाद की संस्कृति का अत्यंत महत्त्व है, परंतु दल-बदल विरोधी कानून की वज़ह से पार्टी लाइन से अलग किंतु महत्त्वपूर्ण विचारों को नहीं सुना जाता है। अन्य शब्दों में कहा जा सकता है कि इसके कारण अंतर-दलीय लोकतंत्र पर प्रभाव पड़ता है और दल से जुड़े सदस्यों की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता खतरे में पड़ जाती है।

V. जनता का, जनता के लिये और जनता द्वारा शासन ही लोकतंत्र है। लोकतंत्र में जनता ही सत्ताधारी होती है, उसकी अनुमति से शासन होता है, उसकी प्रगति ही शासन का एकमात्र

लक्ष्य माना जाता है। परंतु यह कानून जनता का नहीं बल्कि दलों के शासन की व्यवस्था अर्थात् 'पार्टी राज' को बढ़ावा देता है।

VI. कई विशेषज्ञ यह भी तर्क देते हैं कि दुनिया के कई परिपक्व लोकतंत्रों में दल-बदल विरोधी कानून जैसी कोई व्यवस्था नहीं है। उदाहरण के लिये इंग्लैण्ड, ऑस्ट्रेलिया, अमेरिका आदि देशों में यदि जनप्रतिनिधि अपने दलों के विपरीत मत रखते हैं या पार्टी लाइन से अलग जाकर वोट करते हैं, तो भी वे उसी पार्टी में बने रहते हैं।

1-5-स्वयं प्रगति जाँच (Check your progress)

I. दल-बदल अधिनियम (anti-defection law) भारतीय संविधान में किस वर्ष शामिल किया गया।

II. किसी पार्टी के कितने प्रतिशत सांसद या विधायक एक साथ पार्टी छोड़ते हैं तो उन पर दल-बदल अधिनियम कानून लागू नहीं होता है ।

III. प्रयोग के तौर पर EVM का पहली बार उपयोग कौनसे वर्ष और किन राज्यों के चुनावों में किया गया था।

IV. चुनाव आयोग के द्वारा मतदान हेतु अनिवार्य पहचान-पत्र बनाने का निर्णय कब लिया गया था।

V. 52वाँ संविधान संशोधन किस विषय से सम्बंधित है ।

VI. किस विधायक ने एक दिन में तीन बार दल बदला।

1-6-सारांश (Summary)

चुनाव की प्रणाली में करने योग्य उन परिवर्तनों को चुनाव सुधार कहते हैं जिनके करने से जनता की आकांक्षाएँ चुनाव परिणामों के रूप में अधिकाधिक परिणत होने लगें।

भारतीय राजनीति के जटिल होने और गठबंधन की राजनीति अंतहीन के चलते भारत के चुनाव का अनुमान लगाना बेहद कठिन है। स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव को बहुत से करण है जो प्रभावित करते हैं को जाति,धर्म,आर्थिक स्थिति,भाषा,क्षेत्रवाद,आदि कई ऐसे कारण है जो चुनावी प्रकिया को और मतदान व्यव्हार को प्रभावित करते हैं जब तक इन का समाधान नहीं हो सकता तब न चुनावी प्रकिया सुधर सकती है और न मतदान वव्यवहार। जब कोई व्यक्ति या फिर कोई जनप्रतिनिधि किसी दल के चुनाव चिन्ह पर चुनाव लड़ता हैं और अगर वह व्यक्ति या जनप्रतिनिधि उस दल के चुनाव चिन्ह पर चुनाव जीत जाता हैं और अगर वह व्यक्ति या जनप्रतिनिधि उस दल पर चुनाव जीत जाने के बाद उस दल को छोड़कर किसी अन्य दल में शामिल हो जाता हैं तो ऐसे में इस घटना को ही दल बदल कहते हैं? इसके अनेक दूषित प्रभाव निम्न प्रकार दृष्टिगोचर हुए हैं राजनीतिक अस्थिरता उत्पन्न हुई है।नैतिक मूल्यों में गिरावट आई है।छोटे-छोटे दलों का उदय हुआ है।मन्त्रिमण्डलों का अनावश्यक विस्तार होता रहता है। जन-कल्याण की उपेक्षा की जाती रही है। प्रजातान्त्रिक आस्थाओं में जनता का विश्वास कम हुआ है। राजनीतिक स्थिरता के लिए दल -बदल की समस्या का समाधान आवश्यक है

1-7-सूचक शब्द (Key Words)

- **अधिनियम: -** केन्द्र में संसद या राज्य में विधानसभा द्वारा पारित किसी विधान को कहते हैं। जब संसद या विधानसभा में किसी विषय को प्रस्तावित करते हैं तो उसे विधेयक या बिल कहते हैं। संसद या विधानसभा की सर्वसम्मति से पारित होने के बाद उस बिल या विधेयक को अधिनियम का दर्जा मिल जाता है।
- **दल-बदल: -** किसी विधायक का किसी दल के टिकट पर निर्वाचित होकर उसे छोड़ देना और अन्य किसी दल में शामिल हो जाना।

- **नोटा-** उपरोक्त में से कोई नहीं (English: None of the above) एक विकल्प के रूप में अधिकांश चुनावों में भारत के मतदाताओं को प्रदान किया गया है। नोटा के उपयोग के माध्यम से, कोई भी नागरिक चुनाव लड़ने वाले किसी भी उम्मीदवार को वोट नहीं देने का विकल्प चुन सकता है।
- **सुधार: -** किसी के दोष अथवा कमियों को दूर करने की प्रक्रिया।

1-8-स्वयं समीक्षा हेतु प्रश्न (Self- Assessment Questions)

I. भारतीय चुनाव-प्रणाली में चुनाव सुधार की आवश्यकता का वर्णन कीजिए।

II. भारतीय चुनाव-प्रणाली में चुनाव सुधार के लिए कौन -कौनसे सुझाव दिए जा सकते है व्याख्या कीजिए।

III. भारत में राजनीतिक दल-बदल का क्या अर्थ है और भारतीय राजनीति पर इसके प्रभावों की व्याख्या कीजिए।

IV. दल-बदल अधिनियम की व्याख्या कीजिए।

1-9-उतर-स्वयं प्रगति जाँच (Answer to check your progress)

I. दल-बदल अधिनियम (anti-defection law) 1985 में संविधान में शामिल किया ।

II. दो तिहाई (2/3)

III. वर्ष 1998 में राजस्थान, मध्य प्रदेश और दिल्ली के चुनावों के दौरान किया गया था।

IV. 28 अगस्त, 1993 को

V. दल-बदल से

VI. गया लाल

1-10. संदर्भ ग्रन्थ/निर्देशित पुस्तके (References / Suggested Readings)

I. जैन, पुखराज, राजनीति विज्ञान, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।

II. आर.के. जैन कला जैन, लक्ष्मीकांत त्रिपाठी, राजनीति विज्ञान, आरोही पब्लिकेशन्स, दिल्ली।

III. डॉ. सुरेश कुमार, सोमनाथ वर्मा, डॉ. गुलशन राय, जे. बी. डी प्रिंटिंग प्रेस, जालंधर ।

Subject: राजनीति विज्ञान	
Course Code: POLS.103	Author: Dr. Parveen Sharma
Lesson No.: 5	Vetter: Updated by:
अध्याय की संरचना-5 भारत में पार्टी प्रणाली; विशेषताएं, राष्ट्रीय और क्षेत्रीय दल और दबाब समूह (Federal: Nature and features of Indian federalism, Centre-State relations)	

1-2-परिचय (Introduction)

1-3-विषय वास्तु का प्रस्तुतिकरण (Presentation of Contents)

1-3-1- राजनीतिक दल (Political Party)

1-3-2- राजनीतिक दल की विशेषताएं (Characteristics of a Political Party)

1-3-3- राष्ट्रीय दल (National Party)

1-3-4 क्षेत्रीय दल (Regional Party)

1-3-4-1 क्षेत्रीय दलों के उदय के कारण (Reasons for the rise of regional parties)

1-3-4-2 क्षेत्रीय दलों का स्वरूप (Nature of regional parties-)

1-3-4-3 वर्तमान राजनीति में क्षेत्रीय दलों की भूमिका(Role of regional parties in current politics)

1-4-विषय वास्तु का पुन: प्रस्तुतिकरण (Presentation of further Contents)

1-4-1- दबाव समूह (Pressure Groups)

1-4-1-1-दबाव समूह की विशेषताएं (Characteristics of a pressure group)

1-4-1-2-हित समूह व दबाव समूह में अन्तर (Difference Between Interest Groups and Pressure Groups)

1-4-1-3- दबाव समूह व राजनीतिक दल में अन्तर (Difference Between Pressure Group and Political Party)

1-4-1-4- दबाव समूह के प्रकार (Types of Pressure Groups)

1-4-1-5-दबाव समूह के कार्यात्मक तरीके (Functional Methods of Pressure Groups)

1-4-1-6-दबाव समूह के कार्य व भूमिका (Functions and Role of Pressure Groups)

1-4-1-7- दबाव समूह की भूमिका (Role of Pressure Groups)

1-4-1-8- दबाव समूह की आलोचना (pressure group criticism)

1-5-स्वयं प्रगति जाँच (Check your progress)

1-6-सारांश (Summary)

1-7-सूचक शब्द (Key Words)

1-8-स्वयं समीक्षा हेतु प्रश्न (Self-Assessment Questions)

1-9-उतर-स्वयं प्रगति जाँच (Answer to check your progress)

1-10. संदर्भ ग्रन्थ/निर्देशित पुस्तके (References/Suggested Readings)

1-1-अधिगम के उद्देशय (Learning Objectives)

- विद्यार्थियों को राजनैतिक दलों के अर्थ है, कार्य ,विशेषताओं से अवगत करवाना।
- दबाव समूह के स्वरूप, विशेषताओं व राजनिति में उसके प्रभाव का ज्ञान करवाना करवाना।
- विद्यार्थियों को राष्ट्रीय दल व क्षेत्रीय दल के । स्वरूप से अवगत करवाना।

1-3-विषय वास्तु का प्रस्तुतिकरण (Presentation of Contents)

1-3-1-परिचय (Introduction)

लोकतान्त्रिक राजनैतिक व्यवस्था में राजनैतिक दलों का स्थान केन्द्रीय अवधारणा के रूप में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। राजनैतिक दल किसी समाज व्यवस्था में शक्ति के वितरण और सत्ता के आकांक्षी व्यक्तियों एवं समूहों का प्रतिनिधित्व करते हैं। वे परस्पर विरोधी हितों के सारणीकरण, अनुशासन और सामंजस्य का प्रमुख साधन रहे हैं। इस तरह से राजनैतिक दल समाज व्यवस्था के लक्ष्यों, सामाजिक गतिशीलता, सामाजिक परिवर्तनों, परिवर्तनों के अवरोधों और सामाजिक आन्दोलनों से भी सम्बन्धित होते हैं। राजनैतिक दलों का अध्ययन समाजशास्त्री और राजनीतिशास्त्री दोनों करते हैं, लेकिन दोनों के दृष्टिकोणों में पर्याप्त अन्तर है। समाजशास्त्री राजनैतिक दल को सामाजिक समूह मानते हैं जबकि राजनीतिज्ञ राजनीतिक दलों को आधुनिक राज्य में सरकार बनाने की एक प्रमुख संस्था के रूप में देखते हैं।

1-3-2-राजनीतिक दल (political party)

यह दल चुनावों में उम्मीदवार उतारते हैं और उन्हें निर्वाचित करवा कर दल के कार्यक्रम लागू करवाने क प्रयास करते हैं। राजनैतिक दलों के सिद्धान्त या लक्ष्य प्रायः लिखित दस्तावेज के रूप में होता है।विभिन्न देशों में राजनीतिक दलों की अलग-अलग स्थिति व व्यवस्था है। कुछ देशों में कोई भी

राजनीतिक दल नहीं होता। कहीं एक ही दल होता है। कहीं मुख्यतः दो दल होते हैं। किन्तु बहुत से देशों में दो से अधिक दल होते हैं।

1-3-3-राजनीतिक दल की विशेषताएं (Characteristics of a political party)

- राजनीतिक दल ऐसा संगठन है जिसका प्राथमिक उद्देश्य राजनीतिक नेतृत्व की प्राप्ति होता है। इसमें दल का नेता संगठित अल्पतंत्र (कार्यकारिणी) द्वारा शक्ति हथियाने का पूरा-पूरा प्रयत्न करता है।
- सामाजिक एवं आर्थिक उद्देश्यों को लेकर उप संरचनाएं एवं समितियां होती है, जो भौगोलिक सीमाओं, सामाजिक समग्रताओं के आधार पर होती हैं। दल में कई परस्पर विरोधी समूह किसी उद्देश्य तथा राजनीतिक विचारधारा को लेकर साथ जुड़े हुए रहते हैं।
- हर राजनीतिक दल में अल्पतन्त्र होता है। प्रथम अवस्था में शक्ति का केन्द्रीकरण कुछ अनुभवी नेताओं के हाथ में होता है, जो प्रमुख पदाधिकारी होते हैं, जबकि दूसरी अवस्था में दल का संगठन एक विशेष स्तरीकरण व्यवस्था में विभाजित होता है और हर स्तर पर कुछ स्वायत्तता पाई जाती है।
- दल में सदस्यता निरन्तर बनी रहती है। एक सदस्य दूसरे सदस्य को दल की गतिविधियों की जानकारी देते रहते हैं। नए सदस्यों के लिए दल में सदस्यता के द्वार हमेशा खुले रहते हैं। यहीं यह एक खुली संरचना होती है। कुछ लोग दल के सदस्य इसलिए होते हैं कि उन्हें समाज में उसके कारण एक विशेष स्थान मिल जाता है।

1-3-3_राष्ट्रीय दल (National Party)

भारत में सक्रीय राजनीतिक दलों की बड़ी संख्या के बावजूद, बहुत कम लोग राष्ट्रीय स्तर पर अपनी उपस्थिति प्रदर्शित करने में सक्षम हो पाते हैं। इसका वास्तविक कारण यह है कि किसी भी पार्टी को

क्षेत्र में विकसित होने में काफी समय लगता है और इसकी विचारधारा आबादी के एक बड़े हिस्से द्वारा स्वीकार की जाती है। एक दल को राष्ट्रीय दल के रूप में मान्यता प्राप्त करने के लिए निम्न योग्यता में से कम से कम एक पर खरा उतरना पड़ता हैः

- इसे लोकसभा में कम से कम तीन अलग-अलग राज्यों से न्यूनतम दो प्रतिशत सीटें जीतनी होंगी।
- आम चुनावों में, पार्टी को छह प्रतिशत वोट जीतने और कम से कम चार लोकसभा सीटों पर जीत हासिल करने का प्रबंधन करना चाहिए।
- पार्टी को चार या चार से अधिक राज्यों में 'राज्य स्तरीय पार्टी' के रूप में पहचाना जाता हो।

प्रमुख राष्ट्रीय राजनीतिक दल निम्न हैं: - भारतीय जनता पार्टी,भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस,मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी , भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ,बहुजन समाज पार्टी ,राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी ,तृणमूल कांग्रेस पार्टी

1-3-4-क्षेत्रीय दल (Regional Party)

संघीय शासन प्रणाली में नीतियाँ एवं कार्यक्रम राष्ट्रीय हितों को ध्यान में रखकर बनाए जाते हैं जिसके कारण क्षेत्रीय समस्याएं या तो उपेक्षित हो जाती हैं या उन पर कम ध्यान दिया जाता है । ऐसी परिस्थिति में उन क्षेत्रीय समस्याओं या मुद्दों को आवाज देने और उन पर राष्ट्र का ध्यान आकर्षित करने के लिए क्षेत्रीय दलों का उदय होता है ।प्रजातान्त्रिक शासन प्रणाली में क्षेत्रीय दलों की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है क्योंकि ये न केवल क्षेत्रीय समस्याएँ या मुद्दे जो उपेक्षित हैं कि तरफ देश का ध्यान आकर्षित करती हैं बल्कि उसके निवारण के लिए प्रयास भी करती हैं ।भारत में बहु-दलीय पार्टी व्यवस्था है जिसमें छोटे क्षेत्रीय दल अधिक प्रबल हैं।

एक पार्टी को राज्य स्तरीय दलका दर्जा तभी प्रदान किया जा सकता है यदि वह निम्नलिखित शर्तों में से कम से कम किसी एक शर्त को पूरा करती हैः यदि कोई पार्टी राज्य विधानसभा की कुल सीटों में से

कम-से-कम 3 प्रतिशत सीट या कम-से-कम 3 सीटें, जो भी ज्यादा हो प्राप्त करती है या यदि कोई पार्टी लोकसभा के लिए उस राज्य के लिए आवंटित प्रत्येक 25 सीटों या उस संख्या की किसी भिन्न के पीछे कम से कम 1 सीट प्राप्त करती है या यदि कोई पार्टी लोकसभा या राज्य विधानसभा के चुनाव में कुल वैध मतों में से कम से कम 6 प्रतिशत मत प्राप्त करती है और साथ ही कम से कम 1 लोकसभा सीट या 2 विधानसभा सीट जीतती है या एक अन्य मापदंड के अनुसार यदि कोई पार्टी लोकसभा या राज्य विधानसभा के आम चुनाव में किसी राज्य में एक भी सीट जीतने में विफल रहती है लेकिन वह उस राज्य में डाले गए कुल वैध मतों में से 8 प्रतिशत मत प्राप्त करती है, तो उस राज्य में उस पार्टी को क्षेत्रीय पार्टी का दर्जा दिया जा सकता है. आम चुनावों के प्रदर्शन के आधार पर मान्यता प्राप्त दलों की संख्या बदलती रहती है ।देश के प्रमुख क्षेत्रीय दल इस प्रकार हैं: -

Ukke	xBu	jkT; dsUæ 'kkflr çns'k
आम आदमी पार्टी	2012	दिल्ली, पंजाब
ऑल इंडिया अन्ना द्रविड़ मुनेत्र कड़गम	1972	पुदुचेरी, तमिलनाडु
ऑल इंडिया फॉरवर्ड ब्लॉक	1939	पश्चिम बंगाल
ऑल इंडिया मजलिस–ए–इत्तेहादुल मुस्लिमीन	1927	तेलंगाना
ऑल इंडिया एन. आर. कांग्रेस	2011	पुदुचेरी
ऑल इंडिया यूनाइटेड डेमोक्रेटिक फ्रंट	2004	असम
ऑल झारखण्ड स्टूडेंटयूनियन	1986	झारखण्ड
असम गण परिषद	1985	असम
बीजू जनता दल	1997	ओडिशा
बोडोलैंड पीपुल्स फ्रंट	1985	असम

देसिया मुरपोक्कु द्रविड़ कड़गम	2005	तमिलनाडु
द्रविड़ मुनेत्र कड़गम	1949	पुदुचेरी, तमिलनाडु
हरियाणा जनहित कांग्रेस (बीएल)	2007	हरियाणा
हिल स्टेट पीपुल्स डेमोक्रेटिक पार्टी	1968	मेघालय
इन्डियन नेशनल लोक दल	1999	हरियाणा
इन्डियन नेशनल मुस्लिम लीग	1948	केरल
जम्मू–कश्मीर नेशनल कान्फ्रेंस	1932	जम्मू–कश्मीर
जम्मू–कश्मीर नेशनल पेंथर्स पार्टी	1982	जम्मू–कश्मीर
जनता दल (सेक्युलर)	1999	कर्नाटक, केरल
जनता दल (यूनाइटेड)	1999	बिहार
झारखण्ड मुक्ति मोर्चा	1972	झारखण्ड
झारखण्ड विकास मोर्चा (प्रजातांत्रिक)	2006	झारखण्ड
केरल कांग्रेस (एम)	1979	केरल
लोक जनशक्ति पार्टी	2000	बिहार
महाराष्ट नवनिर्माण सेना	2006	महाराष्ट्र
महाराष्ट्रवादी गोमांतक पार्टी	1963	गोवा
मणिपुर स्टेट कांग्रेस पार्टी	1997	मणिपुर
मिजो नेशनल फ्रंट	1959	मिजोरम
मिजोरम पीपुल्स कांफ्रेंस	1972	मिजोरम
नागा पीपुल्स फ्रंट	2002	मणिपुर, नागालैंड
नेशनल पीपुल्स पार्टी	2013	
पट्टाली मक्कल काची	1989	पुदुचेरी, तमिलनाडु

अरुणाचल पीपुल्स पार्टी	1987	अरुणाचल प्रदेश
राष्ट्रीय जनता दल	1997	बिहार, झारखण्ड
राष्ट्रीय लोक दल	1996	उत्तर प्रदेश
राष्ट्रीय लोक समता पार्टी	2013	बिहार
रिवोल्यूशनरी सोशिलिस्ट पार्टी	1940	केरल, पश्चिम बंगाल
शिरोमणि अकाली दल	1920	पंजाब
शिव सेना	1966	महाराष्ट्र
सिक्किम डेमोक्रेटिक फ्रंट	1993	सिक्किम
सिक्किम क्रांतिकारी मोर्चा	2013	सिक्किम
तेलंगाना राष्ट्र समिति	2001	तेलंगाना
तेलगू देशम पार्टी	1982	आंध्र प्रदेश, तेलंगाना
यूनाइटेड डेमोक्रेटिक पार्टी	1972	मेघालय
वाईएसआर कांग्रेस पार्टी	2011	आंध्र प्रदेश, तेलंगाना
समाजवादी जनता पार्टी (राष्ट्रीय)	1990	उत्तर प्रदेश

1-3-4-1-क्षेत्रीय दल क्षेत्रीय दलों के उदय के कारण (Reasons for the rise of regional parties)-

भारत एक बहुभाषी, बहुजातीय, बहुक्षेत्रीय और विभिन्न धर्मों का देश है । भारत जैसे विशाल एवं विभिन्नताओं से भरे देश में क्षेत्रीय दलों के उदय के मुख्य 4 कारण मान सकते हैं :-

- पहला प्रमुख कारण जातीय, सांस्कृतिक एव भाषायी विभिन्नताएँ हैं। विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले लोगों की अपनी समस्याएँ होती हैं जिन पर राष्ट्रीय दलों या केन्द्रीय नेताओं का ध्यान नहीं जाता परिणामस्वरूप क्षेत्रीय दलों का उदय होता है ।

- दूसरा केन्द्र अपनी शक्तियों का प्रयोग मनमाने ढंग से करता रहा है । केन्द्र की शक्तियों कें केन्द्रीयकरण की इसी प्रवृत्ति के कारण अनेक क्षेत्रीय दलों का जन्म हुआ है ।
- तीसरा, उत्तरी भारत की प्रधानता को लेकर आशंकाएँ भी क्षेत्रीय दलों के उदय का कारण रहा है ।,
- चौथा क्षेत्रीय दलों उदय का कारण जातीय असंतोष भी रहा है । अनुसूचित जातियों, जनजातियों एवं अन्य पिछड़े वर्गो के लिए सामाजिक न्याय की माँग हेतु भी क्षेत्रीय दलों का उदय हुआ है ।

1-3-4-2 क्षेत्रीय दलों का स्वरूप (**Nature of regional parties**-) हमारे देश में मुख्य रूप से तीन प्रकार के क्षेत्रीय दल पाए जाते हैं ।

- पहला वे दल जो जाति, धर्म, क्षेत्र अथवा सामुदायिक हितों का प्रतिनिधित्व करते हैं एवं उन पर आधारित हैं । ऐसे दलों में अकाली दल, द्रमुक, शिवसेना, नेशनल कांफ्रेस, क्षारखण्ड पार्टी, नागालैण्ड नेशनल डेमोक्रेटिक पार्टी आदि प्रमुख हैं ।
- दूसरे वे दल जो किसी समस्या विशेष को लेकर राष्ट्रीय दलों विशेष रूप से कांग्रेस से पृथक होकर बने हैं ।ऐसे दलों में बंगला कांग्रेस, केरल कांग्रेस, उत्कल कांग्रेस, विशाल हरियाणा आदि है ।
- तीसरे प्रकार के दल वे दल हैं जो लक्ष्यों और विचारधारा के आधार पर तो राष्ट्रीय दल हैं किन्तु उनका समर्थन केवल कुछ लक्ष्यों तथा कुछ मुद्दों में केवल कुछ क्षेत्रों तक ही सीमित है। ऐसे दलों में फारवर्ड ब्लॉक मुस्लिम लीग, क्रान्तिकारी सोशलिस्ट पार्टी आदि प्रमुख हैं।
- **1-3-4-3-वर्तमान राजनीति में क्षेत्रीय दलों की भूमिका(Role of regional parties in current politics)-**

भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक गणराज्य है इस नाते इस देश में प्रत्येक व्यक्ति, जाति, वर्ग और समाज की आवाज सत्ता के केन्द्र तक पहुंचे इसकी व्यवस्था की गई है। पिछले कुछ दषकों से हो रहे चुनावों के परिणामों पर गौर करें तो यह समझ आता है कि वर्तमान में ये क्षेत्रीय दल राष्ट्रीय दलों

के लिए बड़ी चुनौती बनते जा रहे हैं। क्षेत्रीय दलों के कारण इन राष्ट्रीय दलों को कईं राज्यों में इनका सहारा लेना पड़ता है और हालात ये है कि भारतीय जनता पार्टी जो वर्तमान में केन्द्र की सत्ता में उसका कईं राज्यों में वजूद तक नहीं है वहीं दूसरी तरफ कांग्रेस जिसने सबसे लम्बे समय तक देश में राज किया है वह अपने वजूद के लिए संघर्ष कर रही है। क्षेत्रीय दलों के बढ़े प्रभाव ने इन राष्ट्रीय दलों के समक्ष कईं जगह तो अस्तित्व का संकट पैदा कर दिया है। वर्तमान राजनीति में क्षेत्रीय दलों की भूमिका बेहद महत्त्वपूर्ण हो गई है ।

आज राजनीतिक महाकुण्ड में क्षेत्रीय दलों को जो महत्त्व दिया जा रहा है उसका देश के एकात्मक संधीय ढाँचे पर गम्भीर बहुमुखी प्रभाव पड़ेगा ये दल वर्ग संघर्ष और प्रांतवाद-भाषावाद के जनक वर्तमान राजनीतिक व्यवरथा को क्षेत्रीय दल विभिन्न प्रकार से प्रभावित कर रहे है एवं उनका महत्त्व बढ़ता जा रहा है। इन दलों की सफलता एवं असफलता से इनकी प्रासंगिकता मे कमी नहीं आई है । सरकार बनाने में इनकी भूमिका महत्त्वपूर्ण हो गई है तथा इनका विधानसभा की सत्ता में शामिल होना लोकतान्त्रिक व्यवस्था के लिए उचित है ।

1-4-विषय वास्तु का पुन: प्रस्तुतिकरण (Presentation of further Contents)

1-4-1- दबाव समूह का अर्थ (Meaning of pressure group)

दबाव समूह का अर्थ साधारण शब्दों में दबाव समूह लोगों के उस संगठित समूह को कहा जाता है जो अपने सदस्यों के हितों की सिद्धि के लिए सरकार की निर्णयकारिता को प्रभावित करता है। यद्यपि दबाव समूह के लिए कुछ विद्वान हित समूह का भी प्रयोग करते हैं, लेकिन बिना राजनीतिक प्रक्रिया को प्रभावित किए कोई भी हित समूह दबाव नहीं कहला सकता। हित समूह में प्रभावकारिता की शक्ति आ जाने पर ही वह दबाव समूह का रूप लेता है। यही प्रभावकारिता समूह के हितों को प्राप्त करने में मददगार होती है।

1-4-2-दबाव समूह की विशेषताएं (characteristics of a pressure group)

1. दबाव समूह औपचारिक रूप से संगठित व्यक्ति समूह होते हैं।
2. दबाव समूह के निर्माण का आधार स्वहित होता है और इसी की प्राप्ति करना इसका ध्येय भी होता है।
3. दबाव समूह सरकार में भाग नहीं लेते, लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से सरकार की नीतियों को प्रचारित करते हैं।
4. दबाव समूह सदस्य संख्या, उद्देश्य, चुनाव आदि की दृष्टि से राजनीतिक दल से अलग होता है।
5. दबाव समूहों का कार्यक्षेत्र राजनीतिक दलों की तुलना में सीमित होता है।
6. दबाव समूह सरकार पर अपना प्रभाव राजनीतिक दलों के माध्यम से ही डालते हैं।
7. दबाव समूह सभी प्रकार की राजनीतिक व्यवस्थाओं में पाए जाते हैं। इसी कारण इनकी प्रकृति सर्वव्यापी होती है।
8. दबाव समूहों की सदस्यता ऐच्छिक होती है। एक व्यक्ति एक समय में अनेक दबाव समूहों का सदस्य बन सकता है।
9. दबाव समूहों का कार्यकाल अनिश्चित होता है।
10. दबाव समूहों गैर-राजनीतिक संगठन होते हैं।

1-4-3-हित समूह व दबाव समूह में अन्तर (Difference Between Interest Groups and Pressure Groups)

यद्यपि कुछ विद्वान हित समूह और दबाव समूह में कोई अन्तर नहीं मानते, लेकिन दोनों में आधारभूत समानताएं होने के बावजूद भी अन्तर है। जब कोई समूह अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए राजनीति को प्रभावित करने को तैयार हो जाता है तो उसे हित समूह कहा जाता हैं जब कोई हित समूह अत्यधिक सक्रिय होकर अन्य हित समूहों को पीछे धकेलकर अपने हितों की सिद्धि के लिए सरकार पर अपने दबाव बढ़ा लेता है तो उसे दबाव समूह की संज्ञा दी जाती है।

कार्टर और हर्ज ने दबाव समूह और हित समूह में अन्तर बताते हुए लिखा है-"विभिन्न आर्थिक व्यावसायिक, धार्मिक, नैतिक और अन्य समूहों से परिपूर्ण आधुनिक बहुलवादी समाज के सामने अनिवार्य रूप से एक बड़ी समस्या यही है कि इन विभिन्न हितों तथा शासन और राजनीति के बीच में सम्बन्ध कैसे हों एक स्वतन्त्र समाज में हित समूहों को स्वतन्त्र रूप में संगठित होने की अनुमति होती है और जब ये समूह सरकारी तन्त्र और प्रक्रिया पर प्रभाव डालने का प्रयास करते हैं और इस प्रकार कानूनों, नियमों और प्रशासकीय कार्यों को अपने अनुकूल ढालने की चेष्टा करते हैं तो वे हित-समूह, दबाव समूहों में बदलकर सरकार पर दबाव डालने वाले हो जाते हैं।" हित समूह व दबाव समूह में निम्न अन्तर दिखाई देते हैं:-

1. हित समूह अपनी हित सुरक्षा के लिए अनुनयनी तरीके काम में लाते हैं। अर्थात् वे सरकार से प्रार्थना करते हैं। इसके विपरीत दबाव समूह अपने हितों की पूर्ति के लिए सरकार पर दबाव के तरीके प्रयोग करते हैं।
2. हित समूह राजनीति से प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं रखते, जबकि दबाव समूह राजनीतिक गतिविधियों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध रखते हैं और सदैव राजनीतिक प्रक्रिया को प्रभावित करने की चेष्टा करते रहते हैं।

3. हित समूहों का सम्बन्ध सामाजिक संरचना व प्रक्रिया से होता है। उनका लक्ष्य तो सदैव सामाजिक गतिशीलता है। इसके विपरीत दबाव समूह राजनीतिक प्रक्रिया को प्रभावित करने का प्रयास करते रहते हैं, क्योंकि यही गुण उन्हें हित समूहों से अलग करता है।
4. समाज में हित समूह तो अनेक होते हैं, लेकिन दबाव समूह संख्या में कम होते हैं, क्योंकि सभी हित समूह राजनीतिक प्रक्रिया को प्रभावित करने में सक्षम नहीं होते।
5. हित समूहों का सम्बन्ध सामाजिक गतिशीलता से है, जबकि दबाव समूहों का सम्बन्ध राजनीतिक व्यवस्था को गतिशील बनाने से है।
6. हित समूह अपने लक्ष्य में कम सफल रहते हैं, क्योंकि उनके पास प्रभावशीलता का गुण नहीं होता। इसके विपरीत दबाव समूह प्रभावशीलता के गुण के कारण अपने लक्ष्य को आसानी से प्राप्त कर लेते हैं।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि हित समूह और दबाव समूह में कुछ अन्तर है, इसलिए दोनों को एक मानना भारी भूल है। लेकिन फिर भी राजनीतिक अध्ययन में इन दोनों का समानार्थी प्रयोग ही होता आया है। आज तक किसी ने भी हित समूह और दबाव समूह को सर्वथा अलग करके अध्ययन करने की चेष्टा नहीं की, इसी कारण इनके समानार्थी प्रयोग की विसंगति जारी है।

1-4-4-दबाव समूह व राजनीतिक दल में अन्तर (Difference Between Pressure Group and Political Party)

किसी भी राजनीतिक व्यवस्था में दबाव समूह और राजनीतिक दल दोनों ही विद्‌यमान होते हैं। दोनों ही राजनीतिक गतिशीलता में अपनी अहम् भूमिका निभाते हैं। दोनों आपस में भी घनिष्ठ रूप से सम्बन्ध

रखते हैं। दबाव समूह राजनीतिक दलों के साथ सहयोग करते हैं और राजनीतिक दल दबाव समूहों के। इसके बावजूद भी दोनों में अन्तर हैं: -

1. राजनीतिक दल समुदाय के बहुत सारे वर्गों के बहुत सारे हितों का प्रतिनिधित्व करते हैं, यहां तक कि वे पूरे राष्ट्र के हितों की चिन्ता करते हैं। इसके विपरीत हित समूहों या दबाव समूहों के उद्देश्य सीमित होते हैं और वे विशेष समूह के हितों की ही देखरेख करते हैं।
2. राजनीतिक दल अपने विशिष्ट हितों को प्राप्त करने के लिए सत्ता प्राप्त करने का प्रयास करते हैं, जबकि दबाव समूह सत्ता प्राप्त करने या सरकार का निर्माण करने की बजाय सरकार को प्रभावित करने तक ही सीमित रहते हैं।
3. राजनीतिक दलों के संगठन का आधार व्यापक होता है, जबकि दबाव समूह का संगठन सीमित होता है। उसके सदस्यों की संख्या राजनीतिक दल की तुलना में कम होती है।
4. राजनीतिक दलों की स्पष्ट राजनीतिक विचारधारा होती है, जबकि दबाव समूह की कोई राजनीतिक विचारधारा या कार्यक्रम नहीं होता। उसका सम्बन्ध तो हितों की प्राप्ति तक ही सीमित रहता है।
5. राजनीतिक दल चुनावों में अपने प्रत्याशी खड़े करते हैं और उनको सफलता दिलाने के लिए हर सम्भव प्रयास करते हैं। इसके विपरीत दबाव समूह चुनावों में अपने प्रत्याशी खड़े नहीं करते, लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से राजनीतिक दलों के प्रत्याशियों की ही मदद करते हैं।
6. राजनीतिक दल एक राजनीतिक संगठन है, जबकि दबाव समूह गैर-राजनीतिक संगठन है।

7. राजनीतिक दलों की सदस्यता अनन्य होती है अर्थात् एक व्यक्ति एक ही समय में केवल एक ही राजनीतिक दल का सदस्य बन सकता है, जबकि एक व्यक्ति एक ही समय में अनेक हित या दबाव समूहों का सदस्य हो सकता है।
8. राजनीतिक दल सरकार के अन्दर तथा बाहर दोनों जगह कार्य करते हैं, जबकि दबाव समूह सरकार के बाहर ही कार्य करते हैं।
9. राजनीतिक दल दीर्घकालिक लक्ष्य रखते हैं जबकि दबाव समूहों के लक्ष्य अल्पकालिक होते हैं। इसी कारण राजनीतिक दलों की तुलना में उनकी प्रकृति कम स्थायी है।
10. राजनीतिक दलों का कार्यक्षेत्र व्यापक होता है, जबकि दबाव समूहों का सम्बन्ध मानव जीवन के किसी विशेष पहलु से होता है। इस तरह राजनीतिक दलों की तुलना में दबाव समूहों का कार्यक्षेत्र संकुचित व विशिष्ट होता है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि दबाव समूह और राजनीतिक दलों में काफी अन्तर है। लेकिन फिर भी राजनीतिक समाज में दोनों की भूमिका महत्वपूर्ण है। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं और राजनीतिक व्यवस्था को गतिशील बनाने में समान भागीदार हैं। दबाव समूहों और राजनीतिक दलों में स्पष्ट अन्तर तो विकसित देशों में ही देखने को मिलता है, विकासशील देशों में नहीं, क्योंकि विकासशील देशों में तो दबाव समूह आंतरिक संगठन की दृष्टि से कमजोर है।

1-4-5-दबाव समूह के प्रकार (Types of Pressure Groups)

आज विश्व के सभी देशों में दबाव समूहों की संख्या इतनी अधिक है कि उनका वर्गीकरण करना कठिन हो गया है। इनमें से आकार, उद्देश्य, प्रकृति की दृष्टि से सभी दबाव समूह अलग-अलग भागों में बांटे

जा सकते हैं। फ्रेडरिक, राबर्टस सी0 बोन, ब्लौण्डल, ऑमण्ड आदि विद्वानों ने दबाव समूहों को वर्गीकृत किया है: -

I. ब्लौण्डल का वर्गीकरण

II. ऑमण्ड का वर्गीकरण

III. राबर्ट सी0 बोन का वर्गीकरण

IV. कार्ल फ्रेडरिक का वर्गीकरण

ब्लौण्डल का वर्गीकरण (Blondel's Classification) -

ब्लौण्डल ने दबाव समूहों के निर्माण के प्रेरक तत्वों के आधार पर इन्हें दो भागों में बांटा है। यह वर्गीकरण (i) साम्प्रदायिक दबाव समूह (ii) साहचर्य दबाव समूहों के रूप में है। ब्लौण्डल का कहना है कि साम्प्रदायिक दबाव समूह सामाजिक सम्बन्धों के आधार पर बनते हैं। इनके निर्माण में परिवार, प्रगति, धर्म, वर्ग आदि तत्वों का महत्वपूर्ण योगदान होता है। ऐसे समूहों की सदस्यता जन्म से ही प्राप्त होती है। ब्लौण्डल ने सामप्रदायिक दबाव समूहों को भी दो भागों - प्रथागत तथा संस्थागत दबाव समूहों में बांटी है। प्रथागत दबाव समूह प्रथाओं, रीति-रिवाजों व रुढ़ियों पर आधारित होते हैं।

भारत में ऐसे ही दबाव समूह हैं। जब एक धर्म व जाति के लोग औपचारिक रूप से संगठित होकर संस्था का निर्माण कर लेते हैं तो उससे संस्थागत दबाव समूहों का जन्म होता है। भारत में जाति व धर्म के आधार पर अनेक दबाव समूह सरकार की नीति को प्रभावित करते हैं। ब्लौण्डल ने दबाव समूह का दूसरा प्रकार साहचर्य दबाव समूह बताया है। इस प्रकार के दबाव समूहों का लक्ष्य विशिष्ट होता है। औद्योगिक विकास के साथ-साथ ऐसे दबाव समूहों की संख्या में भी वृद्धि हुई है।

इन समूहों का विशिष्ट लक्ष्य साधन के रूप में राजनीतिक व्यवस्था में इनकी मांगों को प्रवेश कराने में समर्थ होता है। यह दबाव समूह साम्प्रदायिक दबाव समूहों से सदस्यता की प्रेरणा के दृष्टिकोण से

अलग होता है। ये दबाव समूह भी साम्प्रदायिक दबाव समूहों की तरह - संरक्षाणात्मक व उत्थानात्मक दबाव समूह, दो तरह के होते हैं। संरक्षणात्मक दबाव समूह अपने सदस्यों के सामान्य हितों की रक्षा करता है, जबकि उत्थानात्मक दबाव समूह विशिष्ट लक्ष्यों के साथ जन्म लेता है। गौर संरक्षण संघ, नारी स्वतन्त्रता संघ इसके प्रमुख उदाहरण हैं। श्रमिक कल्याण संघ संरक्षात्मक दबाव समूह का, हरिजन सेवक संघ प्रथागत का तथा सैनिक-कल्याण परिषद संस्थात्मक दबाव समूह का प्रमुख उदाहरण है।

ऑमण्ड का वर्गीकरण (Aumand's classification) -

ऑमण्ड ने संरचना और हित संचारण के आधार पर दबाव समूहों को चार भागों - (i) संस्थात्मक (ii) प्रदर्शनात्मक (iii) असमुदायात्मक (iv) समुदायात्मक में बांटा है। ऑमण्ड ने संस्थागत दबाव समूहों में उनको लिया है जो किसी राजनीतिक दल या अन्य समान हितों वाले वर्गों का भी प्रतिनिधित्व करते हैं। भारत में संसद, नौकरशाही तथा राजनीतिक दलों में ऐसे ही समूह पाए जाते हैं। इसका उद्देश्य सामाजिक और राजनीतिक हितों की पूर्ति करना होता है। ये दबाव समूह विकसित देशों में अधिक पाए जाते हैं। मजबूत संगठन के स्वामी होने के कारण ये हितों का स्पष्टीकरण करने में अधिक सफल रहते हैं। दबाव समूहों का दूसरा प्रकार प्रदर्शनात्मक दबाव समूहों का है जो भीड़, जलूस, दंगों, धरनों, हड़तालों आदि के ्ररूप में अचानक ही राजनीतिक व्यवस्था में प्रवेश कर जाते हैं। इन्हें चमत्कारिक दबाव समूह भी कहा जाता है।

ये दबाव समूह अस्त-व्यस्त प्रकृति के होते हैं। ये शासनतन्त्र को भ्रमग्रस्त करके अपने हितों की प्राप्ति करने में सफल व असफल दोनों हो सकते हैं। भारत, फ्रांस, इटली आदि देशों में इनका बहुत प्रभाव है। तीसरा वर्ग असमुदायात्मक या असाहचर्य दबाव समूहों का है। इनका जन्म, धर्म, रक्त सम्बन्ध, वंशानुगत या हित-संचार आदि तत्वों के आधार पर होता है। ये दबाव समूह धार्मिक नेताओं, विशिष्ट व्यक्तियों आदि द्वारा संगठित व असंगठित होते रहते हैं।

इनकी प्रमुख विशेषता यह होती है कि ये हितों के साधन का काम निरन्तर न करके समय-समय पर ही करते हैं। आधुनिक युग में इनका महत्व सीमित है। दबाव समूहों की चौथी प्रकार, समुदायात्मक या साहचर्य दबाव समूहों का है। इस प्रकार के समूह विशेष व्यक्तियों के हितों का प्रतिनिधित्व करने के लिए औपचारिक रूप से संगठित होते हैं। श्रमिक संघ, व्यापारिक संघ इस प्रकार के ही दबाव समूह हैं। इस प्रकार के दबाव समूह नियमों पर आधारित होते हैं और अपने हितों की प्राप्ति के लिए विधि-सम्मत प्रक्रिया अपनाते हैं। भारत व अमेरिका में इस प्रकार के काफी दबाव समूह हैं।

राबर्ट सी0 बोन का वर्गीकरण (Classification of Robert C. Bone) -

राबर्ट सी0 बोन ने दबाव समूहों को प्रकृति व उद्देश्यों की दृष्टि से दो भागों (i) परिस्थिति-जन्य दबाव समूह (ii) अभिवृति जन्य दबाव समूह में बांटा है। परिस्थिति जन्य दबाव समूहों का उद्देश्य अपने सदस्यों की वर्तमान आर्थिक और सामाजिक अवस्थाओं को सुधारना होता है। इनकी प्रकृति विशिष्ट होती है और यें अपने सदस्यों के हितों को साधने के लिए वैधानिक प्रक्रिया का ही उपयोग करते हैं। इनका ध्येय दीर्घकालीन हितों को प्राप्त करना होता है। दूसरा वर्ग अभिवृति जन्य समूहों का है जो कुछ मूल्यों पर आधारित होते हैं। ये समूह परिस्थिति जन्य समूहों से अलग होते हैं। इनका उद्देश्य सामाजिक परिवर्तन को प्राप्त करना है। इसके लिए ये शांतिपूर्ण तथा क्रांतिकारी दोनों साधनों का प्रयोग करते हैं। ये अपने लक्ष्यों को तेज गति की तकनीकों का प्रयोग करके अल्पकाल में ही प्राप्त करने की क्षमता रखते हैं।

कार्ल फ्रेडरिक का वर्गीकरण (Classification of Karl Friedrich) -

कार्ल फ्रेडरिक ने दबाव समूहों को दो श्रेणियों - सामान्य और विशिष्ट दबाव समूहों में बांटा है। जो दबाव समूह सामान्य लक्ष्यों को लेकर चलते हैं, वे सामान्य दबाव समूह और जिनके हित विशिष्ट प्रकार के होते हैं, वे विशिष्ट दबाव समूह कहलाते हैं।

उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि राबर्ट सी0 बोन का वर्गीकरण सामान्य होते हुए भी दबाव समूहों की प्रकृति, संगठन, उद्देश्यों तथा कार्यविधि को स्पष्ट करने वाला महत्वपूर्ण वर्गीकरण है। यह वर्गीकरण अन्य की अपेक्षा अधिक सुस्पष्ट तथा सुसंगत है। यह वर्गीकरण अपने आप में कुछ विशेष प्रकार के गुण लिए हुए है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि ऑमण्ड, फ्रेडरिक तथा ब्लौण्डल के वर्गीकरण का कोई महत्व नहीं है। ये सभी वर्गीकरण कुछ न कुछ महत्व अवश्य रखते हैं।

1-4-6-दबाव समूह के कार्यात्मक तरीके (Functional Methods of Pressure Groups)

दबाव समूह अपने हितों को प्राप्त करने के लिए प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था में अलग-अलग ढंग से कार्य करने के तरीके अपनाते हैं। प्रत्येक दबाव समूह का कार्यात्मक व्यवहार भी अलग-अलग होता है, इसी कारण उनके द्वारा प्रयोग किए जाने वाले हित-साधन भी अलग-अलग प्रकार के हो जाते हैं। अपने हितों की प्राप्ति के लिए दबाव समूहों द्वारा इन साधन या तकनीकें काम में लाई जाती हैं: -

- **लॉबिइंगब (Lobbying)-** सार्वजनिक नीति को प्रभावित करने के लिए हित व दबाव समूहों के सदस्य विधानमण्डल के विधायकों से सांठ-गांठ करते हैं। यही सांठ-गांठ विधायकों को दबाव समूहों के हित में नीति बनाने को बाध्य कर देती है। वे अपने प्रबल समर्थक विधायिकों द्वारा विधानमण्डल में अपने हितों की मांग रखते हैं और मजबूत लॉबी के कारण प्राय: सफल भी हो जाते हैं।
- **जनमत को प्रभावित करना (influence public opinion)**-दबाव समूह अपना पक्ष मजबूत करने के लिए जनता से सीधा सम्पर्क बनाए रखते हैं। अपनी वाक्पटुता के बल पर इनके सदस्य जनमानस में अपनी समस्याओं का प्रचार करते हैं ताकि जनता की सहानुभूति भी प्राप्त की जा सके। इसके लिए वे समाचार-पत्रों, पत्रिकाओं, रेडियो, डी0वी0, इन्टरनेट, सार्वजनिक सभाएं तथा प्रचार आदि के साधन अपनाते हैं।

- **चुनाव (Election) -** यद्यपि कोई भी दबाव समूह चुनावों में न तो प्रत्यक्ष रूप से अपने उम्मीदवार खड़े करता है और न ही सरकार में शामिल होने की लालसा रखता है। लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से प्रत्येक दबाव समूह चुनावी प्रक्रिया को प्रभावित करने का प्रयास करता है। सभी दबाव समूह चुनावों के समय अपने सहयोगी राजनीतिक दल को आर्थिक मदद भी देते हैं और चुनाव प्रचार में सहयोगी दलों के प्रत्याशियों के पक्ष में प्रचार भी करते हैं। उनकी सदैव यही इच्छा रहती है कि उनके समर्थक दल ही संसद में जाकर सरकार बनाएं ताकि उनके हितों का पूरा सम्मान हो सके। उनका चुनावी कार्यक्रम पर्दे के पीछे से ही चलता है। उन्हें पता होता है कि यदि किसी दल या उम्मीदवार का खुला समर्थन किया गया तो कालान्तर में उस दल का सरकार में प्रभाव समाप्त होते ही उनको ही अधिक हानि होगी।
- **विधायिका को प्रभावित करना (influence the legislature) -** दबाव समूह चुनावों में राजनीतिक दलों की सहायता इसी कारण करते हैं ताकि विधायिका में उनके हितों का ख्याल रखने वाले पहुंच जाएं। वे संसदीय दल के व्यक्तियों के नामजद होने से सरकार में पहुंचने तक उनका पूरा ख्याल रखते हैं। विधायिका को प्रभावित करने के लिए तरीके प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था में अलग अलग होते हैं। ब्रिटेन जैसे संसदीय शासन प्रणाली वाले देश में ये अनुशासित ढंग से कार्य करते हैं। लेकिन अमेरिका में वे शक्तियों के पृथक्करण के कारण विधायिका का पूरा फायदा उठाने में सफल रहते हैं।
- **कार्यपालिका पर दबाव (pressure on executive) -** अनेक देशों में दबाव समूह अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए कार्यपालिका तक हो भी प्रभावित करने का प्रयास करते हैं। अध्यक्षात्मक देशों में ये राष्ट्रपति के चुनावों में पूरा समर्थन करते हैं और अपना पैसा पानी की तरह बहा देते हैं। अमेरिका के राष्ट्रपति के चुनावों में दबाव समूहों की अहम् सक्रियता रहती है। संसदीय सरकार वाले

देशों में भी ये विधायिका के माध्यम से कार्यपालिका को प्रभावित करने के प्रयास करते हैं। इन देशों में उत्तरदायी सरकार होने के कारण चुने हुए विधायिकों को स्थगन प्रस्तावों, ध्यानाकर्षण प्रस्तावों, निन्दा प्रस्तावों आदि द्वारा मन्त्रियों को प्रभावित करने पर जोर डालते हैं और यहां तक मजबूर कर देते हैं कि उनके हितों को बढ़ावा देने वाली नीति को ही क्रियान्वित करें। यह स्वाभाविक है कि जो व्यक्ति किसी दबाव समूह की कृपा से ही विधायक बना हो, तो उसकी निष्ठा अवश्य ही उस दबाव समूह के प्रति रहेगी।

कार्यपालिका की समितियों पर भी ये अपना नियन्त्रण रखने का प्रयास करते हैं। अपने हितों के लिए दबाव समूह कार्यपालिका से निरन्तर सम्पर्क बनाए रखने का प्रयास करते रहते हैं।

- **नौकरशाही को प्रभावित करना (influencing the bureaucracy) -** दबाव समूह अपने हितों के लिए अधिकारीतन्त्र से भी सांठ-गांठ रखते हैं। आज राजनीतिक प्रक्रिया में निर्णयों व नीतियों को गति देने में यह नौकरशाही तन्त्र ही अहम् भूमिका निभाता हैं विभिन्न सरकारी विभागों द्वारा नीति-निर्माण के लिए भेजी जाने वाली सूचनाएं इस अधिकारीतन्त्र के हाथों से ही गुजरती है। नौकरशाही ही कार्यपालिका व विधायिका को आवश्यक नीति-निर्माण के आंकड़े उपलब्ध कराती है। भारत जैसे देशों में तो नौकरशाही कार्यपालिका के साथ इतनी अधिक उलझी हुई है कि कई बार लोग नौकरशाही को ही कार्यपालिका समझ बैठते हैं। नौकरशाही को अपने वश में करने के लिए दबाव समूह बेइमानी, घूसखोरी, भाई-भतीजावाद जैसे साधनों का प्रयोग भी करते हैं।
- **न्यायपालिका को प्रभावित करना (influencing the judiciary) -** दबाव समूह न्यायपालिका को विधायिका तथा कार्यपालिका के माध्यम से प्रभावित करने की बजाय न्यायाधीशों की नियुक्ति के समय ही कार्यपालिका पर दबाव बनाना शुरु कर देते हैं। अमेरिका और भारत में कार्यपालिका पर इस तरह का दबाव कई अवसरों पर देखा गया है। न्यायपालिका को दूर से ही प्रभावित करने का

अधिक प्रयास रखते हैं, क्योंकि न्यायाधीशों का कार्यपालिका तथा विधायिका की तरह चुनाव नहीं होता। अहिंसात्मक साधनों द्वारा न तो न्यायपालिका को प्रभावित करना अपेक्षित है और न ही संविधानिक। इसलिए वे अपने हितों के लिए कार्यपालिका तथा विधायिका द्वारा निर्मित कानूनों को अवैध घोषित करवाने के लिए न्यायपालिका की ही शरण लेते हैं।

- **हड़ताल, बन्ध और प्रदर्शन (strike, bandh and rally**)- दबाव समूह जब अपनी बातें मनवाने में असफल हो जाते हैं तो वे अहिंसात्मक साधनों का प्रयोग करने से भी नहीं चूकते। वे हड़ताल करते हैं और आज जीवन को अस्त-व्यस्त कर देते हैं। वे बन्ध की घोषणा भी करते हैं। कई बार तो वे हड़ताल में विपक्षी दल के विधायकों व समर्थकों तक को भी शामिल करते हैं। अपनी बात सरकार से मनवाने के लिए वे व्यापक स्तर पर प्रदर्शन भी करते हैं और कई बार मन्त्रियों तक का भी घेराव करते हैं। इन सभी गैर-कानूनी उपायों का प्रयोग करके वे सरकार पर दबाव बनाना चाहते हैं। इन साधनों के सफल रहने पर वे अपने उद्देश्यों में भी कामयाब हो जाते हैं। भारत में इस तरह के साधन दबाव समूहों द्वारा आमतौर पर प्रयोग किए जाते हैं।
- **प्रचार करना (publicity** - दबाव समूह अपने पक्ष में जनमत को तैयार करने के लिए तथा सरकार का ध्यान आकर्षित करने के लिए प्रचार का बहुत सहारा लेते हैं। वे समाचार पत्रों, रेडियो, टी0वी0 आदि संचार साधनों पर अपने विचारों का प्रसारण करवाते रहते हैं।
- **अनुनयन (persuasion)** - कई बार दबाव समूह सरकार से सीधी बातचीत भी करते हैं और प्रार्थनापूर्वक अपनी समस्याएं भी रखते हैं। सरकार विशाल जनमत के स्वामी होने के नाते उनकी बात को टालने का जोखिम उठाने से बचाने का ही प्रयास करती हैं और प्राय: उनकी मांगें स्वीकार कर ही लेती हैं। इस तरह अनुनयन द्वारा भी दबाव समूह अपने हितों की प्राप्ति के प्रयास करते

हैं। यदि इस तरीके से उनकी मांग न मानी जाती है तो वे सीधी कार्यवाही या सौदेबाजी के साधनों का प्रयोग करना शुरु कर देते हैं।

- **गोष्ठियां करना (conference)** - अनेक दबाव समूह अपने हितों की प्राप्ति के लिए वाद-विवाद तथा विचार-विमर्श के लिए गोष्ठियों, सेमिनारों, वार्ताओं आदि का आयोजन करके विधायकों तक को भी उनमें बुलाते हैं ताकि अपनी समस्या से उन्हें अवगत कराया जा सके।;

1-4-7-दबाव समूह की भूमिका (Role of Pressure Groups)

आज प्रत्येक देश की राजनीतिक व्यवस्था में दबाव समूहों का विशेष स्थान है। सभी लोकतन्त्रीय देशों में तो इसका महत्व और अधिक है। पहले तो दबाव समूहों को घृणा की दृष्टि से देखा जाता था, लेकिन आज स्थिति बदल चुकी है। आज दबाव समूह को प्रत्येक राजनीतिक समाज, राजनीतिक क्रियाशीलता के लिए एक आवश्यक बुराई के रूप में स्वीकार करने लगा है। आज नीति-निर्माण की प्रक्रिया पर इनका प्रभाव इतना अधिक बढ़ गया है कि इन्हें अदृश्य साम्राज्य कहा जाने लगा है। सरकार की विधायी कार्यों पर इनके बढ़ते प्रभाव के कारण इन्हें विधानमण्डल के पीछे विधानमण्डल भी कहा जाता है। अपने हितों के सम्वर्द्धन के लिए इनका राजनीतिक दलों से घनिष्ठ रूप से जुड़ा रहने के कारण फ्रेडरिक ने इन्हें 'दल के पीछठे सक्रिय जन' तक कह दिया है। आज अमेरिका, भारत, इंग्लैण्ड, स्विस, फ्रांस आदि देशों में ये समूह किसी न किसी रूप में राजनीतिक गतिशीलता में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहे हैं। किसी राजनीतिक व्यवस्था में इनकी भूमिका इन कारणों से महत्वपूर्ण हो सकती है :-

- **लोकतन्त्रीय प्रक्रिया की अभिव्यक्ति (expression of the democratic process0 -**

प्रजातन्त्रीय शासन प्रणालियां ही दबाव समूहों के पोषण के लिए अनुकूल परिस्थितियां प्रदान करती हैं। इन देशों में दबाव समूह अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए जनमत का अधिक सहारा लेते हैं। यहां

पर जनमत तैयार करने के लिए वे विचार-गोष्ठियों, पत्र-पत्रिकाओं, सभाओं आदि का पूरा सहारा लेते हैं। प्रजातन्त्र में अपनी बात मनवाने के लिए यह जरूरी होता है कि जनमत को साथ लेकर चला जाए। इसलिए प्रजातन्त्र में दबाव समूहों द्वारा मजबूत जनमत को तैयार करना लोकतन्त्रीय प्रक्रिया की ही अभिव्यक्ति है। जनमत को शिक्षित करके आंकड़े एकत्रित करके, कानून निर्माताओं के पास पहुंचाकर वे अपने लक्ष्यों की प्राप्ति करने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहते हैं। इस प्रकार दबाव समूह लोकतन्त्रीय प्रक्रिया को अभिव्यक्त करने का कार्य करते हैं।

- **सरकार की निरंकुशता पर रोक (Stop the dictatorship of the government)-**

आधुनिक युग में शक्तियों का झुकाव केन्द्र की तरफ ज्यादा बढ़ रहा है। आज आर्थिक विकास और सुरक्षा की आवश्यकता ने शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार के विचार को जन्म दिया है। ऐसे में यह संभावना बढ़ जाती है कि सरकार अपनी शक्तियों का निरंकुश प्रयोग भी कर सकती है। परन्तु दबाव समूह किसी न किसी रूप में हर समय सरकारी तन्त्र पर नजर रखते हैं। अपने हितों के संरक्षण की आड़ में सरकार की निरंकुशता से आज जनता की रक्षा भी करते हैं। जिस देश में अधिकारी-तन्त्र (Bureaucracy) पर दबाव समूहों की दृष्टि हो, वह कभी निरंकुश नहीं बन सकता।

- **नीति-निर्माण में सहायक (Helpful in policy-making)-**

लोकतन्त्रीय देशों में तो दबाव समूह शासन-तन्त्र के इर्द-गिर्द ही चक्कर काटते रहते हैं। चाहे कार्यपालिका हो या विधायिका, शासन-तन्त्र के अंग के रूप में उनकी सदा यह जानने की इच्छा रहती है कि लोंगों की आवश्यकताएं क्या हैं ? इन आवश्यकताओं का ज्ञान दबाव समूहों को ही अधिक होता है। इस बारे में सभी आवश्यक सूचनाएं व आंकड़े दबाव समूह ही सरकार को उपलब्ध कराते हैं। वर्ने ने लिखा है-"समूह ही व्यक्ति-ज्ञान के क्षेत्र में विशेष है जो कानून के निर्माण और क्रियान्वयन के लिए आवश्यक है।"

इस प्रकार सरकार गैर-सरकारी स्रोत के रूप में दबाव समूहों से नीति-सम्बन्धी आवश्यक सूचनाएं प्राप्त कर लेती हैं। इससे विवेकपूर्ण नीति व कानून निर्माण करना संभव हो जाता है। यद्यपि दबाव समूहों द्वारा एकत्रित सूचनाएं व आंकड़े उनके स्वयं के हितों से अधिक सरोकार रखते हैं, लेकिन नीति निर्माण में जो महत्व उन आंकड़ों का होता है, वह अन्य स्रोतो से एकत्रित किए गए आंकड़ों का नहीं हो सकता। अत: दबाव समूह सरकार को नीति-सम्बन्धी आवश्यक कच्ची सामग्री उपलब्ध कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

- **शासन-तन्त्र को प्रभावित करना Influence the government) -**

दबाव समूह लोकतान्त्रिक देशों में तो इतने संगठित हो जाते हैं कि वे सरकारी-तन्त्र को प्रभावित करने की क्षमता भी रखते है। अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए विधायिका, कार्यपालिका तथा नौकरशाही तन्त्र को सार्वजनिक नीति में परिवर्तन लाने के लिए दबाव डालते हैं। बहुदलीय व्यवस्था वाले देशों में ये राजनीतिक दलों के साथ सांठ-गांठ करके अपने हितों के लिए सरकार पर दबाव बनाए रखते हैं। द्विदलीय प्रणाली वाले देशों में ये मुख्य कार्यपालिका के आस-पास या विधायिका के इर्द-गिर्द ही चक्कर लगाते रहते हैं। अमेरिका में इनकी पहुंच राष्ट्रपति तक भी होती है। भारत में दबाव समूह अपने हितों की प्राप्ति के लिए राजनीतिक दलों या विधायकों के माध्यम से हर नीति-निर्णय को प्रभावित करने की चेष्टा करते रहते हैं। अपने हितों के लिए ये न्यायपालिका तक की भी शरण ले लेते हैं। इनका मुख्य लक्ष्य ही अपने हितों के लिए शासन-तन्त्र को अपने प्रभाव में रखना है।

- **समाज के विभिन्न वर्गों के हितों में सामंजस्य (Harmonization of interests of different sections of the society)**

प्रत्येक समाज में किसान, श्रमिक, व्यापारी, मजदूर, जातीय समुदाय, धार्मिक समुदाय, विद्यार्थी, स्त्रियों आदि के अपने अपने हित होते हैं, जिनकी प्राप्ति के लिए ये समूह आपस में प्रतियोगिता करते रहते

हैं। प्रत्येक समूह एक दूसरे पर नियन्त्रक का कार्य करता है और अपने से विपरीत समूह को इतना शक्तिशाली नहीं होने देता कि वह निजी-स्वार्थों का केन्द्र ही बन जाए। इस प्रतियोगी-व्यवस्था में समाज में संतुलनकारी प्रवृत्तियां पनपने लगती हैं और समाज के सभी वर्गों के हितों में सामंजस्य बना रहता है। दबाव समूहों की उपस्थिति समाज में संतुलन के साथ-साथ प्रशासन और समाज में भी संतुलन कायम कर देती है। इससे समाज विघटनकारी शक्तियों से निपटने में सक्षम हो जाता है।

- **जनता व सरकार में कड़ी का काम करना (Working as a link between the public and the government)**

दबाव समूह जनता और सरकार को जोड़ने वाली कड़ी है। जनता की मांगों को समूहीकरण के रूप में दबाव समूह ही सरकार तक पहुंचाते हैं। नीति-निर्माण करते समय दबाव समूहों द्वारा उपलब्ध सूचनाओं पर ही अधिक ध्यान दिया जाता है। इस तरह दबाव समूह जनता व सरकार को जोड़ने का कार्य भी करते हैं।

उपरोक्त विवेचन के बाद कहा जा सकता है कि दबाव समूह सार्वजनिक नीति को प्रभावित करने के लिए अपना महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। आधुनिक समाज में उनके बढ़ते प्रभाव को देखकर कहा जा सकता है कि दबाव समूह ही वास्तविक राजनीतिक दल है, जो सरकार और जनता को जोड़ने का कार्य करते हैं। लोगों को राजनीतिक शिक्षा देना, जनमत को तैयार करना, सार्वजनिक नीति को प्रभावित करना, सरकार को जनता की मांगें समूहीकरण के रूप में पेश करना आज राजनीतिक दलों की बजाय दबाव समूहों के ही कार्य हो गए हैं। इसी कारण आज कहा जाने लगा है कि दबाव समूह शासकों को बनाने वाले हो गए हैं।

आज अमेरिका, भारत, ब्रिटेन, स्विट्जरलैण्ड, फ्रांस, पूर्वी जर्मनी, पौलैंड आदि देशों में कम या अधिक मात्रा में दबाव समूह कार्यरत हैं। अमेरिका में तो इनका विशेष प्रभाव है। वहां पर ये समूह जितने

संगठित तरीके से कार्य कर रहे हैं, अन्य देश में नहीं। इसी कारण अमेरिका के राष्ट्रपति वुडरो विल्सन ने इन समूहों की शक्ति की ओर संकेत करते हुए लिखा है-"संयुक्त राज्य अमेरिका की सरकार एक ऐसा शिशु है जो विशेष हितों की देख-रेख में पला है।" इस प्रकार प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था को गतिशील बनाने में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका है।

1-4-8-दबाव समूह की आलोचना (pressure group criticism)

यद्‌यपि दबाव समूह प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था को गतिशील बनाने, सरकार की निरंकुशता को रोकने, जनता और सरकार में कड़ी का काम करने जैसे महत्वपूर्ण कार्य करते हैं और प्रत्येक राजनीतिक समाज इन्हें आवश्यक बुराई के रूप में स्वीकार भी करने लगा है, लेकिन फिर भी इनकी भूमिका की आलोचना की जाती है। आलोचकों का मत है कि दबाव समूह विशिष्ट हित को लेकर ही सरकार के पास जाते हैं। उनका सामान्य हित से कोई लेना देना नहीं होता। कई बार दबाव समूह अहिंसक साधनों का प्रयोग करके राष्ट्रीय सम्पत्ति को हानि पहुंचाते हैं और समाज की एकता व शांति को भंग करने से भी नहीं चूकते। विधायकों को अनैतिक साधनों से प्रभावित करके वे राजनीतिक भ्रष्टाचार को जन्म देते हैं। अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए तो वे न्यायपालिका जैसे पवित्र संगठन को भी नहीं छोड़ते। अपने स्वार्थों के लिए वे साम-दाम-दण्ड-भेद सभी नीतियों का प्रयोग निर्बाध रूप से करते हैं। अपने अनैतिक कारनामों द्‌वारा वे समाज में अनैतिकता का प्रसार कर देते हैं। उनकी बढ़ती भूमिका ने राजनीतिक दलों तक की भूमिका व महत्व को भी सीमित कर दिया है। इसलिए समय की यह मांग है कि दबाव समूहों की निरंकुशता की प्रवृत्ति पर रोक लगाई जाए अन्यथा ये समाज और सरकार दोनों के लिए गंभीर खतरे उत्पन्न कर देंगे।

1-5-स्वयं प्रगति जाँच (Check your progress)

- भारत में दलीय व्यवस्था किस प्रकार की है?

I. एकदलीय

II. द्विदलीय

III. बहुदलीय

IV. उपर्युक्त में से कोई नहीं

- किसी राजनीतिक दल को राष्ट्रीय दल अथवा प्रादेशिक दल के रूप में मान्यता कौन देता है

I. राष्ट्रपति

II. विधि मंत्री

III. निर्वाचन आयोग

IV. इनमें से कोई नहीं

- भारत में दलीय पद्धति की एक विशेषता है?

I. द्विदलीय पद्धति

II. बहुदलीय पद्धति

III. साम्प्रदायिक दलों का अभाव

IV. क्षेत्रीय दलों का अभाव

1-6-सारांश (Summary)

- लोकतान्त्रिक राजनैतिक व्यवस्था में राजनैतिक दलों का स्थान केन्द्रीय अवधारणा के रूप में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। राजनैतिक दल किसी समाज व्यवस्था में शक्ति के वितरण और सत्ता के आकांक्षी व्यक्तियों एवं समूहों का प्रतिनिधित्व करते हैं। वे परस्पर विरोधी हितों के सारणीकरण,

अनुशासन और सामंजस्य का प्रमुख साधन रहे हैं। इस तरह से राजनैतिक दल समाज व्यवस्था के लक्ष्यों, सामाजिक गतिशीलता, सामाजिक परिवर्तनों, परिवर्तनों के अवरोधों और सामाजिक आन्दोलनों से भी सम्बन्धित होते हैं। लोगों का एक ऐसा संगठित गुट होता है जिसके सदस्य किसी साँझी विचारधारा में विश्वास रखते हैं या समान राजनैतिक दृष्टिकोण रखते हैं।विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले लोगों की अपनी समस्याएँ होती हैं जिन पर राष्ट्रीय दलों या केन्द्रीय नेताओं का ध्यान नहीं जाता परिणामस्वरूप क्षेत्रीय दलों का उदय होता है । दबाव समूह का अर्थ साधारण शब्दों में दबाव समूह लोगों के उस संगठित समूह को कहा जाता है जो अपने सदस्यों के हितों की सिद्धि के लिए सरकार की निर्णयकारिता को प्रभावित करता है।

1-7-सूचक शब्द (Key Words)

I. **जनमत: जनमत** वह संगठित शक्ति है जो समाज के सतत मान्य परंपरागत आदर्शों और अनुभूतियों का प्रतिरूप होती है एवं उस समाज की तात्कालिक भावनाओं का भी प्रतिनिधित्व करती है।

II. **अभिव्यक्ति: अभिव्यक्ति** का अर्थ विचारों के प्रकाशन से है।

III. **दबाव समूह: दबाव समूह** जब कोई संगठन अपने सदस्यों के हितों की पूर्ति के लिए राजनीतिक सत्ता को प्रभावित करता है और उनकी पूर्ति के लिए दबाव डालता है तो उस संगठन को 'दबाव समूह' कहते हैं।

IV. **राजनीतिक संचार: राजनीतिक संचार** तो राजनीतिक व्यवस्था के एक भाग से दूसरे भाग तक मांगों और नियमों (निर्गतों) का गत्यात्मक संचरण है।

1-8-स्वयं समीक्षा हेतु प्रश्न (Self-Assessment Questions)

I. राष्ट्रीय दल किसे कहते हैं? भारतीय राजनीतिक दलों की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

II. दबाव समूह किसे कहते हैं? दवाव समूह की मुख्य विशेषताएँ बताइए।

III. दबाव समूह का क्या अर्थ है? राजनीतिक दल तथा दबाव समूह में अंतर स्पष्ट करें।

IV. दबाव समूहों के गुण तथा दोषों का उल्लेख करें।

V. क्षेत्रीय दल किसे कहते हैं? भारतीय क्षेत्रीय दलों की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

1-9-उत्तर-स्वयं प्रगति जाँच (Answer to check your progress)

बहुदलीय

निर्वाचन आयोग

बहुदलीय पद्धति

1-10. संदर्भ ग्रन्थ/निर्देशित पुस्तके (References/Suggested Readings)

I. जैन, पुखराज, राजनीति विज्ञान, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।

II. आर.के. जैन, कला जैन, लक्ष्मीकांत त्रिपाठी, राजनीति विज्ञान, आरोही पब्लिकेशन्स, दिल्ली।

III. डॉ. सुरेश कुमार, सोमनाथ वर्मा, डॉ. गुलशन राय, जे. बी. डी प्रिंटिंग प्रेस, जालंधर ।

Subject: राजनीति विज्ञान	
Course Code: POLS.103	Author: Dr. Parveen Sharma
Lesson No.: 6	Vetter: Updated by:
अध्याय की संरचना-6 गठबंधन राजनीति: आधार, प्रकृति और भारतीय राजनीति पर प्रभाव, पार्टी प्रणाली के दोष **(Coalition Politics: Basis, Nature and Impact on Indian Politics, Demerits of the Party System)**	

1-1-अधिगम के उद्देशय (Learning Objectives)

1-2-परिचय (Introduction)

1-3-विषय वास्तु का प्रस्तुतिकरण (Presentation of Contents)

1-3-1-गठबंधन की राजनीति का अर्थ (Meaning of Coalition Politics)

1-3-2-भारतीय गठबंधन राजनीति की विशेषताएं(Characteristics of Indian coalition politics)

1-3-3-भारत में गठबंधन की राजनीति का उदय(Rise of coalition politics in India)

1-3-4-भारत में गठबंधन सरकारों का इतिहास(History of coalition governments in India)

1-3-5-भारत में गठबंधन सरकारों के बनने के कारण (Reasons for the formation of coalition governments in India)

1-3-6-गठबंधन की राजनीति का सकारात्मक व नकारात्मक पक्ष(Positive and negative side of coalition politics)

1-3-7-भारत की राजनीति पर गठबंधन की राजनीति का प्रभाव (Effect of coalition politics on Indian politics)

1-4- विषय वास्तु का पुन: प्रस्तुतिकरण (Presentation of further Contents)

1-4-1- भारत की दलीय प्रणाली के दोष (Defects of India's party system)

1-5-स्वयं प्रगति जाँच (Check your progress)

1-6-सारांश (Summary)

1-7-सूचक शब्द (Key Words)

1-8-स्वयं समीक्षा हेतु प्रश्न (Self- Assessment Questions)

1-9-उतर-स्वयं प्रगति जाँच (Answer to check your progress)

1-10. संदर्भ ग्रन्थ/निर्देशित पुस्तके (References / Suggested Readings)

1-1-अधिगम के उद्देशय (Learning Objectives)

- विद्यार्थियों को भारत में गठबंधन की राजनीति के उदय व गठबंधन सरकारों के इतिहास का ज्ञान करवाना।
- विद्यार्थी गठबंधन की राजनीति का अर्थ व भारतीय गठबंधन की राजनीति की विशेषताएं को जान पाएंगे।
- विद्यार्थियों को गठबंधन सरकारों के बनने के कारण, गठबंधन की राजनीति का सकारात्मक व नकारात्मक पक्ष का ज्ञान करवाना।
- विद्यार्थी भारत की राजनीति पर गठबंधन की राजनीति के प्रभावों को जान पाएंगे।

- विद्यार्थियों को दलीय प्रणाली के दोष का ज्ञान करवाना।

1-2-परिचय (Introduction)

जब किसी आम चुनाव में किसी अकेले दल को साफ़ बहुमत नहीं मिलता, तब दल या तो संसदीय बहुमत के समर्थन से गठबन्धन कैबिनेट बनाते हैं, या फिर अल्पमत कैबिनेट बनाते हैं, जिसमें एक या अनेक दल हो सकते हैं। जब एक आम चुनाव में किसी एक पार्टी के लिए स्पष्ट बहुमत नहीं होता है, तो पार्टियां या तो गठबंशन्धन मन्त्रिमण्डलों का निर्माण करती हैं, जो एक संसदीय बहुमत या अल्पसंख्यक मन्त्रिमण्डलों द्वारा समर्थित होती हैं, जिसमें एक या अधिक दल शामिल हो सकते हैं। पार्टियों के एक समूह पर आधारित कैबिनेट जो संसद में बहुमत का आदेश देते हैं, अल्पसंख्यक मन्त्रिमण्डलों की तुलना में अधिक स्थिर और लम्बे समय तक जीवित रहते हैं।

1-3-विषय वास्तु का प्रस्तुतिकरण (Presentation of Contents)

1-3-1-गठबंधन की राजनीति का अर्थ: -

गठबंधन के लिए अंग्रेजी शब्द 'कोअलिशन' लैटिन से लिया गया है, जिसका अर्थ साथ चलना या बढ़ना होता है। इस व्याख्या के मुताबिक 'कोअलिशन' का अर्थ किसी एक निकाय या गठबंधन में बंधना या एकजुट होना होता है। इससे पता लगता है कि विभिन्न अंग या निकाय मिलकर कोई एक संस्था बना रहे हैं। राजनीतिक अर्थ में इसका इस्तेमाल राजनीतिक सत्ता पर नियंत्रण हासिल करने के लिए विभिन्न राजनीतिक समूहों के बीच बने अस्थायी गठबंधन के लिए किया जाता है। इनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइंस में प्रोफेसर ओग कहते हैं कि 'गठबंधन ऐसी सहकारी व्यवस्था है, जिसमें अलग-अलग राजनीतिक पार्टियाँ या ऐसी पार्टियों के सभी सदस्य सरकार बनाने के लिए एकजुट हो जाते हैं।' इस तरह गठबंधन अभी तक एकदम अलग रहीं या दुश्मन की तरह रही दो या अधिक पार्टियों के

बीच का गठजोड़ होता है, जिसे प्रशासन चलाने तथा राजनीतिक विभाग या पद आपस में बांटने के लिए बनाया जाता है। गठबन्धन की राजनीति का साधारण अर्थ है कई दलों द्वारा मिलकर सरकार का निर्माण करना । चुनावों से पूर्व या चुनावों के बाद कई दल मिलकर अपना साझा कार्यक्रम तैयार करते हैं । उसके आधार पर वे मिलकर चुनाव लड़ते हैं अथवा अपनी सरकार बनाते हैं । गठबन्धन सरकार का निर्माण प्रायः उस स्थिति में किया जाता है , जब प्रायः किसी एक दल को चुनावों के बाद स्पष्ट बहुमत प्राप्त न हुआ हो । तब दो या दो से अधिक दल मिलकर संयुक्त सरकार का निर्माण करते हैं । ऐसी सरकार में प्रायः सभी राजनीतिक दल अपने दलों के संकीर्ण व विशेष हितों को त्याग कर एक निश्चित कार्यक्रम पर अपनी सहमति प्रकट करते हैं ।

1-3-2-भारतीय गठबंधन राजनीति की विशेषताएं (Characteristics of Indian coalition politics)

1967 के चुनावों से ही गठबंधन की राजनीति के बीज पड़ गये थे जो आगे लम्बे समय तक अब भी चल रही है गठबंधन की इस भारतीय राजनीति में निम्न विशेषताएं देखी जा सकती हैं.: -

- **गठबंधन में एक दल की प्रधानता होना: -** भारतीय राजनीति में जो गठबंधन बने है उनमें एक दल की प्रधानता रही है । एन डी ए गठबंधन का नेतृत्व भारतीय जनता पार्टी कर रही हैं तो यू पी ए का नेतृत्व भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के पास हैं । सहयोगी दल बहुत ज्यादा प्रभावी भूमिका निभाने में असमर्थ होता हैं ।.सहयोगी दलों का प्रभाव प्रमुख दल के सांसद की संख्या एवं सहयोगी दलों के सहयोग पर निर्भर करता हैं ।
- **गठबंधन में विचारधारा गत समानता का अभाव: -** राजनीतिक लाभ के लिए विरोधी विचारधारा के राजनीतिक दल गठबंधन में शामिल हो जाते है । चुनावों में एक दूसरे की कार्य पद्धति की आलोचना करने वाले दल चुनाव बाद एक गठबंधन में शामिल हो जाते हैं । पं बंगाल में एक दूसरे की विरोधी मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी सी पी एम राष्ट्रीय स्तर पर कांग्रेस को समर्थन

प्रदान कर रही हैंवर्ष 2016 में प. बंगाल में हुए विधानसभा चुनावों में भी कांग्रेस व सी पी एम ने एक दूसरे के साथ गठबंधन किया था जबकि विचारधारात्मक आधार पर इन दोनों दलों के मध्य कोई साम्य नही हैं। जय प्रकाश नारायण को आदर्श मानने वाली समता पार्टी कांग्रेस के साथ गठबंधन बना कर बिहार में चुनाव लड़ती हैंजबकि जयप्रकाश नारायण के विचार कांग्रेस की नीतियों से मेल नही खाते हैं । वस्तुतः गठबंधनों का आधार विचारधारा न होकर केवल सत्ता प्राप्त करना या किसी को सत्ता में आने से रोकना हैं।

- **गठबंधन में स्थायित्व नहीं होना: -** गठबंधन में शामिल राजनीतिक स्थायी रूप से उस गठबंधन से जुड़े रहे यह भी आवश्यक नही। पं बंगाल के चुनावों को देख कर तरणमूल कांग्रेस ने एन डी ए को छोड़ दिया, कभी समता पार्टी, एन डी ए का हिस्सा थी लेकिन उसने बिहार चुनावों में एन डी ए को छोड़कर कांग्रेस से नाता जोड़ लिया।
- **गठबंधनों में स्पष्ट विचारधारागत अलगाव का अभाव:-** भारतीय राजनीति में इस समय दो ही गठबंधन महत्वपूर्ण एवं प्रभावशाली हैं. राष्ट्रीय जन तांत्रिक गठबंधन जो भारतीय जनता पार्टी के नेतृत्व में चलता हैं, दोनों में विचारधारा एवं सैद्धांतिक अंतर खोजना कठिन हैं. तीसरा मौर्चा जो मूलतः वामपंथी प्रभाव का धड़ा हैं। कांग्रेस एवं भारतीय जनता पार्टी का धड़ा हैं कांग्रेस एवं भारतीय जनता पार्टी को पूंजीवादी मानता है लेकिन यू पी ए सरकार को बाहर से समर्थन देता हैं।
- **गठबंधन, दल और सिद्धांतों के बजाय नेताओं के आधार पर:-** भारतीय राजनीति में गठबंधन राजनीतिक सिद्धांत एवं विचारधारा के बजाय नेताओं के आधार पर होते हैं। समाजवादी विचार धारा होने के बजाय समता पार्टी का गठबंधन राष्ट्रीय जनता दल से होने के बजाय भारतीय जनता पार्टी से था। जब श्री नरेंद्र मोदी को भारतीय जनता पार्टी ने अपना नेता घोषित किया तो

समता पार्टी ने गठबंधन तोड़ लिया। 1997 में एच डी देवगौड़ा को कुछ दिन समर्थन देने के बाद कांग्रेस ने प्रधानमंत्री को बदलने के आधार पर समर्थन की शर्त रखी तो इंद्र कुमार गुजराल को 10 माह बाद अप्रैल 97 को प्रधानमंत्री बनाया गया और कांग्रेस ने पुनः समर्थन दे दिया। बिहार में समता पार्टी के गठबंधन में शामिल लालू प्रसाद का राष्ट्रीय जनता दल उत्तर प्रदेश चुनावों में मुलायम सिंह की समाजवादी पार्टी को समर्थन का बात करती है जो कभी एक दूसरे के विरोधी थे।

- **निषेधात्मक आधार पर गठित राजनीतिक गठबंधन: -** भारतीय राजनीति में पहले कांग्रेस को सत्ता से बाहर रखने के लिए गठबंधन किया जाता था। 1977 की जनता पार्टी का गठन भी कांग्रेस के विरुद्ध किया गया था. । वर्तमान में जनता दल, समाजवादी पार्टी, बसपा एवं समता पार्टी अपना एक ही घोषित एजेंडा बताती हैं. भाजपा को सत्ता से बाहर रखना । किसी दल के कार्यक्रम या नेतृत्व या विचारधारा का मात्र विरोध के लिए विरोध लोकतंत्र के स्वास्थ्य के लिए अच्छा लक्ष्ण नहीं कहा जा सकता ।
- **दल बदल की प्रवृत्ति: -** गठबंधन सरकारों के कारण भारतीय राजनीति में आया राम गया राम की प्रवृति भी देखने को मिलती हैं. जिसके कारण शासन को स्थायित्व को खतरा बना रहता हैं।
- **दबाव की राजनीति: -** गठबंधन में शामिल राजनीतिक दल अपने राजनीतिक हितों की पूर्ति के लिए प्रधानमंत्री पर दवाब डालते रहते हैं। त्रण मूल कांग्रेस की नेता ममता बनर्जी ने अपने दल के रेलमंत्री को बदलने एवं रेल का बढ़ा हुआ किराया वापिस लेने पर यू पी ए की मनमोहन सरकार को मजबूर कर दिया. ऐसे में कई बार राष्ट्रीय महत्व के विषयों पर क्षेत्रीय हित हावी हो जाते हैं.

- **न्यूनतम साझा कार्यक्रम**: -गठबंधन में शामिल दल सबकी विचारधारा में स्वीकार्य ऐसे कार्यक्रम तय करते हैं जिसका गठबंधन में शामिल दलों द्वारा विरोध न हो। अनेक दलों द्वारा न्यूनतम साझा कार्यक्रम के आधार पर जिस गठबंधन का निर्माण किया जाता है, उसके आधार पर मिलकर राजनीतिक गतिविधियों का जो संचालन होता है उसी को वर्तमान में गठबंधन की राजनीति कहा जाता है।

1-3-3- भारत में गठबंधन की राजनीति का उदय (Rise of coalition politics in India)

प्रथम तीन आम चुनाव कांग्रेस के वर्चस्व वाले चुनाव रहे। अपनी स्वतंत्रता आंदोलन एवं पुराने सगठनात्मक ढाँचे के कारण न केवल केंद्र में बल्कि प्रान्तों में भी उसको बहुमत मिलता था। लेकिन चतुर्थ आम चुनावों फरवरी 1967 से कांग्रेस को कई राज्यों में बहुमत से हाथ धोना पड़ा.हालांकि कम बहुमत से ही सही केंद्र में सरकार कांग्रेस बन गई । राजस्थान, पंजाब व उत्तर प्रदेश की विधान सभाओं में उसे पूर्ण बहुमत नहीं मिला वह केवल बड़ा दल बनकर रह गया हैं. । केरल, उड़ीसा एवं तमिलनाडु में उसे बहुत कम सीट मिली. चतुर्थ आम चुनावों के इन परिणामों ने गठबंधन की राजनीति की शुरुआत की कई राज्यों में एक से अधिक राजनीतिक दलों ने मिलकर सरकार बनाई, कुछ राज्यों में एक दूसरे के बिलकुल विरोधी विचारधारा वाले राजनीतिक दलों ने मिलकर एक सरकार बनाई। 1977 में गठित जनता पार्टी भी एक तरह का गठबंधन सा ही था। 11 वीं से लेकर 16 वीं लोकसभा तक फिर भारत में किसी दल को लोकसभा में बहुमत नहीं मिला। कोई भी एक दल सरकार बनाने की स्थिति में नहीं रहा। अस्थायी सरकारों का दौर शुरू हुआ और गठबंधन राजनीति की शुरुआत हुई.

1-3-4- भारत में गठबंधन सरकारों का इतिहास (History of coalition governments in India)

1977 के आम चुनाव में पहली बार केंद्र में कॉग्रेस की हार हुई, उसे लोकसभा बहुमत प्राप्त नहीं हुआ पांच दलों की मिलकर जनता पार्टी ने बहुमत प्राप्त किया तथा मोररजी देसाई के नेतृत्व में सरकार

बनाई। कहने को तो प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई की सरकार जनता पार्टी की सरकार थी लेकिन उसमें शामिल दल एक पार्टी जैसा व्यवहार नहीं कर सके और जनता पार्टी की सरकार गठबंधन सरकार की तरह ही व्यवहार करने लगी। अल्पकाल में जनता पार्टी दोहरी सदस्यता के मुद्दे पर वापस बिखर गई उसके बाद चौधरी चरण सिंह ने कांग्रेस ने समर्थन वापस ले लिया सरकार लोकसभा का सामना भी नहीं कर सकी और नयें चुनाव कराने पड़े। 1980 के चुनावों के बाद 89 तक फिर कांग्रेस का एक दलीय शासन रहा. दिसम्बर 89 में वी पी सिंह के नेतृत्व में जनता दल की सरकार बनी जो दो विरोधी विचारधारा के दलों के समर्थन पर टिकी हुई थी। भारतीय जनता पार्टी एवं वामपंथी दल भाजपा समर्थन वापस लेने पर अक्टूबर 1990 में सरकार गिर गई।जनता दल के टुकड़े होकर बने जनता दल एस के रूप में बने एवं नयें राजनीतिक दल की सरकार चंद्रशेखर के नेतृत्व में बनी। कांग्रेस ने इसे बाहरी समर्थन दिया. कुछ ही महीनों बाद कांग्रेस से मतभेद होने के कारण चन्द्रशेखर सरकार को 6 मार्च 1991 को त्याग पत्र देना पड़ा। 11 वी लोकसभा के चुनाव के बाद आई त्रिशंकु लोकसभा के कारण अप्रैल मई 1996 के बाद फिर गठबंधन सरकारों का दौर शुरू हुआ। दसवीं लोकसभा चुनाव के बाद कुछ अंतराल तक कांग्रेस की अल्पमत सरकार बाहरी समर्थन से चलती रही लेकिन 11 वीं लोकसभा चुनाव के बाद की स्थिति ऐसी नहीं रही कि कोई एक दल ऐसी सरकार बना ले। इसलिए सबसे बड़ा दल होने के कारण भारतीय जनता पार्टी के नेतृत्व में अटल बिहारी वाजपेयी को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया गया. भाजपा के साथ साथ शिव सेना, अकाली दल एवं हरियाणा विकास पार्टी गठबंधन की सरकार बनी बहुमत साबित न कर पाने के कारण 13 दिन बाद ही प्रधानमंत्री को त्याग पत्र देना पड़ा।वाजपेयी सरकार के पतन के बाद कांग्रेस के बाहरी समर्थन से एच डी देवगौड़ा की सरकार बनी किन्तु कुछ ही महीनों बाद कांग्रेस ने समर्थन के लिए प्रधानमंत्री बदलने की शर्त रख दी. इसलिए 10 माह में ही एच डी देवगौड़ा सत्ता से बाहर हो गये और इंद्र कुमार गुजराल को नेता चुनकर प्रधानमंत्री

बनाया गया।जहाँ देवगौड़ा सरकार में 13 राजनीतिक दल भागीदार थे तो गुजराल सरकार में 15 राजनीतिक दल भागीदार थे. इन दलों के बीच विभिन्न राजनैतिक विषयों व समस्याओं पर वैचारिक समानता का सर्वथा अभाव था परिणाम स्वरूप सरकार को निरंतर दवाब में काम करना पड़ रहा था।12 वीं लोकसभा के चुनाव के परिणाम भी विखंडित जनादेश या त्रिशंकु लोकसभा ही दे पाए सबसे बड़े दल के आधार पर भारतीय जनता पार्टी के नेता अटल बिहारी वाजपेयी को प्रधानमंत्री पद के लिए आमंत्रित किया गया. 18 दलों को मिलाकर सरकार का गठन किया गया. यहाँ प्रभावशाली प्रधानमंत्री के नेतृत्व में कार्य कर रही राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन NDA सरकार अप्रैल 1999 में मात्र एक मत से गिरा दी गई।13 वीं लोकसभा चुनाव के बाद भी भारतीय जनता पार्टी के नेता अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में गठबंधन की सरकार लगभग 20 से अधिक दलों की सरकार बनी. गठबंधन छोड़ने व जोड़ने का क्रम चला. सरकार को चलाने व स्थायी बनाने वाला महत्वपूर्ण तत्व था. प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी की लोकप्रिय जननायक छवि जिनमें सबको साथ लेकर चलने की विलक्षण क्षमता थी विकल्प के अभाव ने भी सरकार के स्थायित्व को संबल प्रदान किया. लोकसभा का कार्यकाल अक्टूबर 2004 में पूरा होना था लेकिन प्रधानमंत्री ने फरवरी 2004 में ही लोकसभा को भंग करने का परामर्श दे दिया। 14 वीं लोकसभा के निर्वाचन के बाद कांग्रेस की स्थिति लोकसभा में पहले से थोड़ी सुधरी कांग्रेस ने अपना नेता मनमोहन सिंह को चुना जो भारतीय रिजर्व बैंक के गर्वनर रह चुके थे. तथा अर्थशास्त्री भी थे. डॉ मनमोहन सिंह के नेतृत्व में लगभग 20 दलों की गठबंधन सरकार बनी जिसकों वामपंथियों ने बाहर से समर्थन दिया 15 वी लोकसभा के चुनाव के बाद पुनः यू पी ए गठबंधन की सरकार बनी और मनमोहन सिंह प्रधानमंत्री बने।15 वी लोकसभा में कांग्रेस की स्थिति पुनः सुधरी तथा वह अकेले 206 सीट प्राप्त करने में सफल हुई. 2014 में 16 वीं लोकसभा के लिए चुनाव भी मूलतः दो गठबंधनों भाजपा नेतृत्व वाले NDA तथा कांग्रेस नेतृत्व वाले यूपीए के मध्य हुए. इन चुनाव में मतदान प्रतिशत

बढ़ा तथा देश के युवावर्ग ने अपने मताधिकार का प्रभावशाली मात्रा में प्रयोग किया लोकसभा चुनाव में भारतीय जनता पार्टी को अकेले स्पष्ट बहुमत मिल गया फिर भी नयी सरकार के गठन में गठबंधन के सहयोगी दलों को मंत्रिपरिषद में शामिल किया गया।

1-3-5-भारत में गठबंधन सरकारों के बनने के कारण: - (Reasons for the formation of coalition governments in India): -

भारत में बहुदलीय व्यवस्था है, जिसके परिणामस्वरूप किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिलने के अवसर अधिक पैदा होते हैं।बिना बहुमत के संसदीय शासन का निर्माण एवं संचालन संभव नहीं होता है, इसीलिए राजनीति में गठबंधन बना कर सरकार बनाने का प्रचलन बढ़ा है।16 वीं लोकसभा में बहुमत प्राप्त होने के बावजूद भी अकेले भारतीय जनता पार्टी की सरकार न बनाकर गठबंधन की सरकार बनायी गयी।वर्गीय हितों के आधार पर सैकड़ों राजनीतिक दलों का गठन हो गया है।एक गठबंधन में 20 से 24 तक राजनीतिक दल शामिल रहते आए हैं। वर्तमान में गठबंधन की राजनीति भारतीय राजनीति का स्थायी तत्व बन गयी है। धीरे-धीरे भारतीय राजनीति में दो महत्वपूर्ण गठबंधन उभर कर आये हैं

- भारतीय जनता पार्टी के नेतृत्व में राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबन्धन (एन.डी.ए.)
- कांग्रेस के नेतृत्व में संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (यू.पी.ए.)
- वामपंथी राजनीतिक दल। राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन में सबसे बड़ा दल भारतीय जनता पार्टी है जबकि संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन में कांग्रेस सबसे बड़ा राजनीतिक दल है।

1-3-6-गठबंधन की राजनीति का सकारात्मक व नकारात्मक पक्ष (Positive and negative side of coalition politics): -

गठबंधन की राजनीति अब भारत की राजनीतिक प्रणाली का अहम अंग बन चुकी है। केन्द्र के साथ-साथ अब राज्यों में भी गठबंधन सरकारें काम कर रही हैं। क्षेत्रीय पार्टियों के उभरने से अब किसी भी बड़ी राष्ट्रीय पाटी को अकेले बहुमत प्राप्त करना कठिन होता जा रहा है। अतः गठबंधन करना राजनीतिक विवशता बन गई है।

I. **गठबंधन की राजनीति का सकारात्मक पक्ष (Positive side of coalition politics) गठबन्धन राजनीति के निम्नलिखित सकारात्मक पक्ष हैं: -**

- **अधिक लोकतान्त्रिक सरकार:-** मिली-जुली सरकार किसी भी अन्य सरकार से अधिक लोकतान्त्रिक सरकार होती है क्योंकि इसमें कई दलों की हिस्सेदारी होती है , जो विभिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व करते हैं ।
- **अधिक से अधिक वर्गों को प्रतिनिधित्व:-** मिली-जुली सरकार का एक लाभ यह है कि इसमें देश के विभिन्न वर्गों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व मिलता है । विभिन्न राजनीतिक दल , जो अलग - अलग वर्गों , समुदायों तथा विचारधाराओं का प्रतिनिधित्व करते हैं , सरकार में शामिल होते हैं ।
- **सभी वर्गों के हितों को ध्यान में रखा जाता है:-** मिली - जुली सरकार में क्योंकि लगभग सभी वर्गों को प्रतिनिधित्व प्राप्त होता है , इस कारण किसी भी वर्ग के हितों की अनदेखी नहीं की जा सकती है ।
- **योग्य नेताओं की सेवाओं का लाभ: -** मिली - जुली सरकार का एक लाभ है कि इसमें विभिन्न दलों के योग्य एवं कुशल नेताओं की सेवाएं देश को प्राप्त होती हैं ।
- **शासन निरंकुश नहीं बन पाना**- गठबंधन मंत्रिपरिषद पर प्रधानमंत्री का उतना वर्चस्व नहीं होता जितना एक दल की सरकार में होता हैं । मंत्रिपरिषद को न्यूनतम साझा कार्यक्रम के आधार पर

कार्य करना पड़ता हैं। मंत्रिपरिषद मनमाने तरीके से कार्य नहीं कर सकती. गठबंधन में शामिल सभी दलों की नीतियों एवं सिद्धांतों को ध्यान में रखना पड़ता।

- **अतिवाद से मुक्ति**- गठबंधन की राजनीति से अतिवादी दृष्टिकोण से बचा जा सकता है। एक दल की सरकार अपने दृष्टिकोण को थोपने का प्रयत्न कर सकती है। गठबंधन में कोई भी दल केवल अपनी नीति एवं सिद्धांत का नहीं थोप सकता क्योंकि गठबंधन में शामिल अन्य दल विरोध कर सकते हैं. मध्य का रास्ता निकाला जाता हैं।
- **लोकतंत्र को मजबूती:** लोग लिंग, जाति, वर्ग और क्षेत्र सन्दर्भ में न्याय तथा लोकतंत्र के मुद्दे उठा रहे हैं।
- **सहमति की राजनीति:** गठबंधन राजनीति ने सहमति की राजनीति को जन्म दिया।यह सहमति कई महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर देश के वर्तमान विकास के लिए लाभकारी रही इन मुद्दों में आर्थिक नीतियों के प्रति समन्वय या तालमेल सबसे महत्त्वपूर्ण रहा। कई दल संयुक्त रूप से इस बात को मानते हैं कि नई आर्थिक नीतियाँ देश में पहले की अपेक्षा आज विकास को लाने का मुख्य कारण रही है।
- **.सामाजिक खाई को पाटने में महत्त्वपूर्ण भूमिका :** गठबंधन की राजनीति के माध्यम से जहाँ कई क्षेत्रीय पार्टी अस्तित्व में आयी, वहीं कई राष्ट्रीय पार्टियों ने कालांतर से दबी सामाजिक समस्याओं की जड़ें खोदी. बसपा ने दलित उत्थान, अन्य पार्टियों ने पिछड़ी जातियों के राजनीतिक और सामाजिक दावे की बात छेड़ी. "आरक्षण" का मुद्दा जो इस पिछड़ेपन की समस्या के समाधान में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है, इसी समीकरण की देन है। कई पार्टियों ने महिला घरेलू हिंसा, बाल अधिकार, शिक्षा के अधिकार जैसे महत्त्वपूर्ण मुद्दों को भारतीय राजनीति का हिस्सा बनाया।

- **गठबंधन की राजनीति के फलस्वरूप महत्त्वपूर्ण मुद्दे पर जनता का ध्यानाकर्षण:** गठबंधन युग के पहले एक दल के ही मुद्दे राष्ट्रीय मुद्दे पर हावी रहते थे लेकिन गठबंधन के कारण अब कई महत्त्वपूर्ण मुद्दे राष्ट्र के समक्ष न मात्र लाये जाते हैं बल्कि उन पर वाद-विवाद की भी पहल की जाती है। भ्रष्टाचार को लेकर, अल्पसंख्यकों से जुड़े मुद्दे या कई परमाणु परियोजनाओं पर ऐसे विवाद होते रहे हैं।
- **देश के शासन में प्रांतीय दलों की बढ़ती भूमिका और उन्हें स्वीकृति:** वर्तमान सन्दर्भ में अब प्रांतीय और राष्ट्रीय दलों में भेद कम हो चुका है तथा कई महत्त्वपूर्ण मुद्दे इस कारण राष्ट्रीय मुद्दे बन कर उभरने लगे हैं।
- **गठबंधन की राजनीति ने भारत को अधिक संघात्मक बनाया:** न सिर्फ क्षेत्रीय पार्टियों के उदय व उनकी प्रगति से ऐसे कार्य हुए हैं जिनसे भारतीय संघ मजबूत होता है बल्कि अब ऐसे विवाद कम ही देखे जाते हैं जहाँ केंद्र की सरकार राज्य की सरकारों पर अनुचित दबाव और गैर-संवैधानिक हस्तक्षेप करे. गठबंधन को साथ लेकर चलना, कार्यसिद्धि पर अधिक जोर कहीं-न-कहीं राजनीतिक दलों की सोच को परिपक्व बनाने का कार्य कर रहा है।
- **अधिक योग्य लोगों के योगदान का देश को लाभ** - एक दल की सरकार में उसी दल के लोगों में से मंत्री लेने पड़ते थे दूसरे दल के लोगों का कोई योगदान नहीं होता। गठबंधन की स्थिति में गठबंधन में शामिल सभी दलों के योग्य लोगों को मंत्रि परिषद में लिया जाता हैं। इन सभी दलों के विरिष्ठ एवं योग्य लोगों की योग्यता का लाभ देश को मिलता हैं। मंत्रि परिषद के गठन का दायरा बढ़ जाने से अधिक योग्य लोगों की मंत्रिपरिषद् का निर्माण होता हैं।

- **व्यापक जनमत समर्थन-** एक दल के मंत्रीपरिषद के बजाय गठबंधन मंत्रिपरिषद के जनमत के समर्थन का दायरा बड़ा होता हैं। गठबंधन में शामिल दलों की संख्या जितनी ज्यादा होती हैं उतना ही उसे जन समर्थन मिल जाता हैं सरकार की स्वीकार्यता बढ़ जाती हैं।
- **सशक्त विपक्ष का निर्माण**-गठबंधन राजनीति का एक लाभ यह भी हैं कि एक राजनीतिक दल सत्तारूढ़ दल का उतना प्रभावशाली प्रतिरोध नही कर सकता जितने कई दलों से मिलकर बना गठबंधन कर सकता है। जब यू पी ए गठबंधन की सरकार थी तब एन डी ए गठबंधन प्रभावशाली ढंग से सरकार का प्रतिरोध कर उसकी मनमानी रोकने में सक्षम होता था तो अब एन डी ए की सरकार है और यू पी ए गठबंधन सरकार की मनमानी को प्रभावशाली ढंग से रोकती हैं।

II. **गठबंधन राजनीति का नकारात्मक पक्ष(negative side of coalition politics)**

गठबंधन की राजनीति का नकारात्मक पक्ष निम्नलिखित है: -

- **अस्थाई सरकार -** मिली - जुली सरकार का सबसे बड़ा दोष यह है कि यह अस्थाई होती है । क्योंकि विभिन्न दल अपने स्वार्थी हितों की खातिर मिलकर सरकार बनाते हैं । अतः यह पता नहीं होता कि कब वह सरकार से अलग हो जाएं ।
- **नीतियों में निरन्तरता का अभाव -** मिली - जुली सरकार द्वारा बनाई जाने वाली नीतियों में निरन्तरता नहीं होती है । मिली - जुली सरकार कभी भी दीर्घकालीन एवं प्रभावशाली नीतियां नहीं बना पातीं ।
- **राष्ट्रीय एकता को खतरा- कमजोर सरकारें तथा सथायित्व को खतरा :** भारत में गठबंधन सरकार (coalition government) के अस्तित्व को लगातार सरकारों के परिवर्तन से एक नकारात्मक स्थिति की तरह लिया जाने लगा. अटलबिहारी वाजपेयी की 1996 में 13 दिन चली

सरकार, उसके ठीक बाद 1996 जून से अप्रैल 1997 के बाद अल्पावधि तक चली देवगौड़ा की सरकार, फिर गुजराल की सरकार का आना और अल्पावधि में चले जाना और पुनः NDA की 13 महीने की सरकार ने गठबंधन की राजनीति की सबसे बड़ी दुर्बलता को दर्शाया. इस प्रकार की समीकरणों में स्थायी अस्तित्व के संकटकी झलक दिखी.। मिली - जुली सरकार में शामिल दल केवल अपने हितों की पूर्ति में ही लगे रहते हैं । उन्हें देश की रक्षा की कोई चिन्ता नहीं होती ।

- **प्रधानमन्त्री की कमज़ोर स्थिति-**मिली-जुली सरकार में प्रधानमन्त्री की स्थिति कमज़ोर होती है, जिसके कारण वह देश को अच्छा नेतृत्व नहीं दे पाता।
- **नीतियों के बदलने पर दबाव की लगातार बाध्यता:** भारत में गठबंधन सरकार के समक्ष हमेशा से यह चुनौती रही कि किसी भी विषय पर एक आम सहमति कैसी बनाई जाए ? कई विदेशी संधियाँ इस तरह की बाध्यता से अक्सर प्रभावित होते रहे उदाहरण के तौर पर NDA के समय भारत-अमेरिका नागरिक परमाणु समझौता (Civil Nuclear Deal) "हाइड एक्ट (Hyde Act)" को लेकर तमाम चर्चाएँ कई स्तरों पर लोकसभा और राज्य सभा में झूलती रहीं. इस प्रकार की विकट परिस्थितियों ने न सिर्फ गठबंधन सरकार की मजबूरियों को स्पष्ट रूप से दिखाया बल्कि इससे भारतीय राजनीति की वर्तमान स्थिति पर कई प्रकार के विवादों, बहस और इनकी तार्किकता पर प्रश्नचिह्न लगाया।
- **अलग-अलग दलों में सैद्धांतिक आदर्शों में मतभेद:** गठबंधन सरकार के अस्तित्व को खतरा अक्सर इस सम्बन्ध में देखा जाता है कि कई दलों से मिलकर बनी सरकार को कई सिद्धांतों के मध्य एक समन्वय बनाना पड़ता है और असंतुलन की स्थिति से बचना पड़ता है । उदाहरण के लिए मार्क्स से सम्बंधित दलों की विचारधारा के कारण कई बार औद्योगिक निर्णयों को बदलना

या पूर्णतः समाप्त करना पड़ा है इस प्रकार के निर्णय न केवल घरलू मुद्दों के परिवर्तन पर लागू किये जाते हैं बल्कि कई स्थितियों में बाहरी देश और संघ जैसे अमेरिका, यूरोपियन यूनियन (पूँजीवाद के प्रतिनिधि) से सम्बंधित नीतियों पर भी लिए जाते हैं. अतः आदर्शों पर मतभेद गठबंधन राजनीति की महत्त्वपूर्ण चुनौती है।

- **प्रधानमन्त्री के विशेषाधिकार का हनन** : मंत्रिमंडल के लिए सहयोगियों का चयन हमेशा प्रधानमन्त्री का विशेषाधिकार माना जाता है परन्तु गठबंधन सरकार में प्रधानमन्त्री का यह विशेषाधिकार बुरी तरह प्रभावित होता है क्योंकि क्षेत्रीय दलों के नेता यह तय करते हैं कि मंत्रिमंडल में उनके दल का नेतृत्व कौन-कौन करेंगे और यह भी कि उन्हें कौन-कौन विभाग दिए जायेंगे. कई नेता तो पहले से ही यह मंशा पाले रखते हैं कि उन्हें कौन-सा पद लेना है। चाहे कैसे भी गठबंधन सरकार की मजबूरी के कारण प्रधानमन्त्री को उनकी बात माननी पड़ती है।
- **अस्थायी सरकारों का निर्माण**- गठबंधन में शामिल दल अपने राजनीतिक लाभ हानि को ध्यान में रख कर समर्थन वापस भी ले लेते रहते हैं. इससे सरकार का बहुमत खत्म हो जाता है सरकार को त्याग पत्र देना पड़ता हैं। इस प्रकार सरकारों का स्थायित्व प्रभावित होता हैं. अस्थायी सरकारें विकास कार्य नहीं कर सकती।
- **सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धांत के कमजोर होने का भय** अलग अलग दलों के मंत्रियों में विचारधारा के लोगों को एक सूत्र में पिरोकर काम करना बेहद कठिन हैं। कई बार गठबंधन सरकार के मंत्रियों के मतभेद खुल कर सामने आ जाते हैं और यह टकराव कई बार शीर्ष नेतृत्व की कार्यक्षमता व शैली पर नकारात्मक प्रभाव डालते हैं।
- **कमजोर सरकार-** गठबंधन की सरकार कमजोर साबित होती हैं. वह दृढ़ता से निर्णय लेने में असमर्थ होती हैं चाहे वैदेशिक क्षेत्र में हो गया आंतरिक राजनीतिक निर्णय हो।

- **प्रधानमंत्री की भूमिका की सीमितता**-प्रधानमंत्री का अपने मंत्रि परिषद में शामिल अपने व अन्य दलों के सदस्यों पर प्रभावशाली नियंत्रण नहीं होता हैं । गठबंधन में सम्मिलित मंत्री अपने दल के नेतृत्व के निर्देशों का पालन करते हैं ।कमजोर प्रधानमंत्री प्रभावशाली भूमिका नहीं निभा पाता एवं अनिर्णय की स्थिति में रहता हैं।
- **गठबंधनों में क्षेत्रीय दलों का प्रभाव: -** गठबंधनों में क्षेत्रीय दलों का प्रभाव बढ़ता जा रहा हैं जो राष्ट्रीय हितों की बजाय क्षेत्रीय हितों को प्राथमिकता देते हैं इससे राष्ट्रीय हितों का नुक्सान होता हैं तथा क्षेत्रीय भावनाओं का प्रभाव बढ़ता हैं क्षेत्रीय भावनाओं के कारण राष्ट्रीय एकता को खतरा पैदा होता हैं।
- .**सरकारों में स्थायित्व नहीं**- गठबंधन की सरकार में स्थायित्व का अभाव रहता हैं। गठबंधन में शामिल राजनीतिक दल सरकार पर अपने हितों की पूर्ति के लिए दवाब डालते रहते हैं हितों की अवहेलना होने पर गठबंधन को छोड़कर सरकार को अस्थिर कर देते हैं।
- **राष्ट्रीय एकता को नुकसान**- गठबंधन में क्षेत्रीय दलों का प्रभाव बढ़ जाने के कारण क्षेत्रीय दल अपने हितों को साधनें पर अधिक बल देते हैं। प्रधानमंत्री में सरकार के स्थायित्व के कारण उनके दवाब आने के लिए मजबूर होता हैं। ममता बनर्जी के विरोध के कारण प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह बंगला देश के साथ सम्बन्धों में दवाब में रहे । क्षेत्रीय हितों पर अधिक दवाब होने से राष्ट्रीय हितों को हानि होती हैं।
- **सुद्रढ़ विदेश नीति का अभाव**- गठबंधन का प्रधानमंत्री सुद्रढ़ विदेश नीति बनाने एवं संचालन करने में समर्थ नहीं हो पाता क्योंकि वह अपने सहयोगी दलों के दवाब में होता हैं एवं स्वतंत्र रूप से निर्णय नहीं ले सकता । इस प्रकार विदेश नीति के मामले में देश की स्थिति कमजोर होती हैं। एक दल का प्रधानमंत्री या सरकार स्वतंत्र एवं सुद्रढ़ नीति अपनाने में सफल होता हैं।

- **सरकार किसी स्पष्ट नीति पर कार्य नहीं कर पाती-** गठबंधन में अलग अलग विचारधारा एवं सिद्धांतों के राजनीतिक दल शामिल होते हैं। सभी दल अपनी नीति को सरकार की नीति बनाना चाहते हैं परिणाम यह होता है कि सरकार कोई स्पष्ट नीति निर्धारित नहीं कर पाती जिसका प्रभाव सरकार के कार्यों पर पड़ता हैं।
- **छोटे छोटे राजनीतिक दलों के निर्माण को प्रोत्साहन**- गठबंधन में शामिल सभी दलों को सरकार में मंत्रिपद मिलता हैं लेकिन इन पदों पर बड़े एक दो नेता ही कब्जा कर लेते है जो दल के सर्वेसर्वा होते हैं इसलिए कई नेता अपने दल का सर्वेसर्वा बनने या प्रथम स्थान पर आने के लिए नयें दल का गठबंधन कर अध्यक्ष या संसदीय दल का नेता बन जाते हैं इस प्रकार छोटे छोटे दलों के निर्माण को बल मिलता हैं। अधिक राजनीतिक दलों का निर्माण स्थायी सरकारों के निर्माण में बाधा हैं।
- **सरकार के विभिन्न मंत्रालयों में तालमेल का अभाव-** गठबंधन शासन में अलग अलग मंत्रालयों को अलग राजनीतिक दल के नेता संभालते हैं जिनमें आपसी सहयोग उतना नहीं होता जितना एक राजनीतिक दल के मंत्रियों के मध्य होता हैं अलग अलग राजनीतिक दल अपने अपने गुप्त एजेंडे पर कार्य करते हैं एवं अपना हित साधन करते हैं। शासन के इन मंत्रालयों का आपसी असहयोग कई बार शासन में गतिरोध पैदा करता हैं शासन के सुचारू संचालन के लिए विभिन्न विभागों में आपसी सहयोग बहुत जरुरी हैं।

1-3-7- <u>भारत की राजनीति पर गठबंधन की राजनीति का प्रभाव (Effect of coalition politics on Indian politics)</u> :

भारत में गठबंधन की राजनीति की शुरुआत एक क्रमिक विकास की प्रक्रिया रही. इसकी शुरुआत देश के आजाद होने से लेकर विकास की सीढ़ियों तक चढ़ने के इतिहास में देखा जा सकता है. साथ ही

धीरे-धेरे आम जनता व लोगों में जागरूकता से भारतीय राजनीतिक परिस्थतियों ने अपनी दशा और दिशा तय की. आज वर्तमान में न सिर्फ चुनाव प्रक्रिया अधिक कुशल तरीके से संचालित की जाती है बल्कि प्रत्येक मतदाता अपने मत मूल्य, उससे जुड़ी उसका भविष्य और परिणामों से बेहतर रूप में अवगत दिखता है. कहीं न कहीं ये गठबंधन की राजनीति की ही देन है जिसमें कई मुद्दे व चेतनाओं को लोगों के समक्ष रखा. मोटे तौर पर गठबंधन की राजनीति ने भारतीय राजनीति में महत्त्वपूर्ण प्रभाव लाये हैं जैसे -

- **विरुद्ध दो राजनीतिक समूहों में समर्थन :-**1989 के चुनावों में कांग्रेस पार्टी की हार हुई थी पर कांग्रेस अब भी लोकसभा में सबसे बड़ी पार्टी थी लेकिन बहुमत में न होने के कारण उसने विपक्ष में बैठने का फैसला किया। राष्ट्रीय मोर्चा (National Front) (यह मोर्चा जनता दल और कुछ अन्य क्षेत्रीय दलों को मिलाकर बनाया गया) को परस्पर विरुद्ध दो राजनीतिक समूहों-भाजपा और वाम मोर्चे-ने समर्थन दिया। गठबंधन की राजनीति के कारण राजनीतिक दलों के बीच विचारधारागत अन्तर पारस्परिक समायोजन तथा सहयोग के दायरे में सिमटते जा रहे हैं।
- **प्रमुख दल के प्रभुत्व का युग समाप्त :-** कांग्रेस की हार के साथ भारत के इस प्रमुख दल के प्रभुत्व का युग समाप्त हो गया। इस दौर में बहुदलीय शासन प्रणाली का युग शुरू हुआ।
- **क्षेत्रीय पार्टियों की सरकार बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका:-**1989 के बाद लोकसभा के चुनावों में कभी भी किसी एक पार्टी को पूर्ण बहुमत नहीं मिला। इस बदलाव के साथ केन्द्र में गठबंधन सरकारों का दौर शुरू हुआ और क्षेत्रीय पार्टियों ने गठबंधन सरकार बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।
- **साझे कार्यक्रम के प्रति आम सहमति:-** गठबंधन की राजनीति में साझे कार्यक्रम के प्रति आम सहमति देखी गई है।

- **ब्लैकमेल:-** गठबंधन में शामिल एक-दो सदस्यों वाले दल भी सत्तासीन दल को अपने हितों की पूर्ति के लिए ब्लैकमेल करते रहते हैं
- **विचारधारा की असम्मति को दरकिनार करके राजनैतिक गठबंधन बनाना और प्रत्यक्ष लाभ पर विशेष ध्यान दिया जाना :**
- गठबंधन के भागीदार या साझेदार धारणा, सिद्धांत और विचारधारा को तिलांजलि देकर सत्ता में हिस्सेदारी पाने की ओर विशेष लालायित रहते हैं। प्रत्येक दल या भागीदार अपने दलों के संकल्प और सिद्धान्तों को भी दर किनार करके सत्ता में किसी तरह अपना हिस्सा पाने को उतावला रहता है । दल भी इस बात को समझते हैं कि यदि उनके दो सदस्य भी सत्ता में हिस्सेदारी पा लेते हैं तो उस दशा की तुलना में वह अपने स्वार्थों को आसानी से भुना सकते हैं जब उनका कोई भी सदस्य सत्ता में भागीदार नहीं बन पाता। अतः प्रत्येक दल की सोच यह रहती है कि बाह्य रूप से वह अपने सत्ता सुख भोगने वाले सदस्यों की आलोचना करके जनता को भरमाए रखेगा कि वह अपने सिद्धांतों के लिए समर्पित है लेकिन अन्दर से सत्ताधारी दल में हिस्सा पाने वाले सदस्यों और उनके दलों के बीच मौन सहमति रहती है।
- **वोट बैंक के अवस्थान की गहरी पहचान:** राजनैतिक दलों के सिद्धान्त और संकल्प चाहे जो भी रहें, यह बात साफ है। कि उन्हें अपने-अपने वोट बैंक के अवस्थान की पूरी जानकारी रहती है। वे इस बात को भी जानते हैं कि उनके किस तरह के लम्बे और लोकलुभावन भाषण किस स्थान के कौन-से समुदाय को किस सीमा तक आकर्षित करके आत्म-विमोह में डाल सकते हैं। ये अपने भाषणों और क्रियाकलापों को ठीक उसी तरह व्यवस्थित करते हैं कि आम चुनावों के समय प्रत्येक बार मतदाताओं को बहला-फुसला सकें। चुनावी घोषणा-पत्र को तैयार करने से पहले वे इस बात का रास्ता खुला रखते हैं कि घोषणा-पत्र में किए गए दावे पूरा न करके वे

अपनी विवशता को अगली बार के चुनाव में जनता के सामने कैसे साबित करेंगे। देखा गया है कि प्रत्येक दल पिछड़ी जातियों की ओर कुछ ज्यादा ही आकर्षित रहता है क्योंकि वे ही अधिसंख्यक हैं और उनके वोट पाने पर उन्हें सत्ता-सुख भोगने से कोई नहीं रोक सकता।

- **देश का शासन चलाने के लिए राज्य स्तरीय दलों के मामले में सर्वसम्मति:** क्षेत्रीय ,राज्य स्तरीय और राष्ट्रीय राजनैतिक दलों के बीच की दूरियाँ लगातार कम होती जा रही हैं। केन्द्र तथा राज्य में लगभग सभी जगह अब गठबंधनों के आधार पर ही सरकारें बन रही हैं। केन्द्र सरकारों को बनाने में क्षेत्रीय दलों का सहयोग लिया जा रहा है। पिछले दो दशकों से राज्य स्तरीय दलों के प्रभाव क्षेत्र का विस्तार हो रहा है।
- **उग्र क्षेत्रीयतावाद से मुक्ति:**-वर्तमान समय में राष्ट्रीय दलों तथा प्रान्तीय दलों में राजनीतिक भेद कम हो रहा है। प्रान्तीय दल राष्ट्रीय मंच पर प्रभावी भूमिका निभा रहे हैं। इस परिवर्तन से संभवतः उग्र क्षेत्रीयतावाद से मुक्ति मिल सकेगी।

1-4- विषय वास्तु का पुन: प्रस्तुतिकरण (Presentation of further Contents)

1-4-1-भारत की दलीय प्रणाली के दोष (Defects of India's party system)

दलीय पद्धति के जहाँ अनेक गुण हैं वहीं यह प्रणाली दोषों से भी मुक्त नहीं है। एलेक्जेंडर पोप का तो मत है कि," जिस समाज में दलों का अस्तित्व है, वहाँ सच्ची समान्य इच्छा की अभिव्यक्ति हो ही नहीं सकती। भूतपूर्व अमेरिकन राष्ट्रपति वाशिंगटन ने भी अपना मत व्यक्त करते हुए कहा है कि राजनीतिक दल लोकप्रिय शासन के सबसे बड़े शत्रु हैं। रूसो का मत है कि," सामान्य इच्छा या सच्चा लोकमत ऐसे देश में व्यक्त नहीं हो सकता जहाँ राजनीतिक दल या वर्ग विद्यमान हैं। इसी संदर्भ में हम यहाँ राजनीतिक दल के निम्नलिखित दोष की चर्चा कर रहे हैं–

- **लोकतंत्र के विकास में बाधक** :-लोकतंत्र व्यक्तिगत स्वतंत्रता का समर्थक है, किंतु राजनीतिक दल इस स्वतंत्रता का हनन कर लोकतंत्र में बाधक बन जाते हैं। राजनीतिक दल के सदस्यों को अपने व्यक्तिगत विचारों को त्यागकर सार्वजनिक क्षेत्र में दल के विचारों का समर्थन करना पड़ता है। इस प्रकार व्यक्ति दलीय यंत्र के चक्र का एक ऐसा भाग बन जाता है जो पहिये के साथ ही चलता रहता है। लीकॉक कहते हैं, " राजनीतिक दल उस व्यक्तिगत विचार तथा कार्य संबंधी स्वतंत्रता का अंत कर देते हैं जिसे लोकतंत्रात्मक शासन का आधारभूत सिद्धांत माना जाता है।" सामान्य लोगों की ही नहीं वरन् जनप्रतिनिधि के विचारों की भी स्वतंत्रता पर अंकुश लगा दिया जाता है और उसे संसद, विधानमंडल एवं सार्वजनिक रूप से दल के विचारों का ही समर्थन करना होता है, चाहे उन विचारों से व्यक्ति के विचार कितने ही भिन्न एवं विरोधी क्यों न हों। गिलबर्ट मतानुसार, " मैंने सदैव दल की पुकार पर ही मतदान किया और अपने संबंध में विचार करने के लिए कभी नहीं सोचा।"
- **एक मात्र उद्देश्य सत्ता की प्राप्ति**:-प्रजातंत्र मे राजनीतिक दलों की भूमिका को सम्मानीय स्थान प्राप्त है पर राजनीतिक दल उस स्थान को कामय नही रख पाते है। उनका कार्य राजनीतिक चेतना का विस्तार करना है पर उनके सामने येन-केन-प्रकारेण सत्ता प्राप्ति ही एक मात्र लक्ष्य हो जाता है और सभी कार्यक्रम उसी लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए आयोजित किए जाते है। इसके लिए मतदाताओं को कैसे भी अपने पक्ष मे करना यही कार्य करते रहते है।
- **शासन कार्य में सर्वोत्तम व्यक्ति की उपेक्षा**: -दलीय प्रणाली के कारण देश के सर्वोत्तम व्यक्तियों की सेवा से देश वंचित रह जाता है राजनीतिक दल अपने प्रतिनिधि ऐसे व्यक्तियों को चुनते हैं जो उनका अंध समर्थन करें और दल के नेता की हाँ में हाँ मिलाएं, किंतु सर्वोत्तम व्यक्ति अपने विचारों को त्यागकर इस प्रकार का आचरण नहीं कर सकते। अतः दल में योग्य

व्यक्तियों की उपेक्षा होती है और अयोग्य व्यक्तियों को प्रशासन में उच्च स्थान मिल जाता है, फलस्वरूप समूचे प्रशासनिक स्तर में गिरावट आ जाती है।

- **राष्ट्रीय हितों की उपेक्षा**:-राजनीतिक दलों के कार्य राष्ट्रीय हितों के अनुकूल होना चाहिए पर दलीय प्रणाली मे कई बार राष्ट्रीय हितों की उपेक्षा होती है। राजनीतिक प्रश्नों पर उनका नजरिया राष्ट्रीय एकता की भावना को बढ़ाने वाला कम, जनता के बीच कटुता को बढ़ाने वाला अधिक होता है। नकारात्मक राजनीति नफरत की खाई को बढ़ाती है, जातीय मज़हबी और साम्प्रदायिक राजनीति राष्ट्रीय एकता के लिए खतरा पैदा करती है, राजनीतिक दलों को सत्ता प्राप्ति के लिए इन मुद्दों को लेकर टकराहट की चिंता नही रहती यह राष्ट्रीय एकता के खिलाफ है।
- **लोकमत को भ्रमित करना**: - किसी भी राष्ट्रीय मुद्दे पर जनता को समर्थन या विरोध करने के प्रश्न पर जैसी भी विभिन्न राजनीतिक दलों की नीति हो उसके अनुरूप दल कार्य करते हैं। यहाँ तक तो ठीक है पर राजनीतिक प्रणाली का अवगुण यह है कि लोकमत को अपने पक्ष मे करने के लिए उचित-अनुचित का विचार किए बिना राजनीतिक दल कार्य करते है, जनता को गलत सूचनाएं देते है और गुमराह करते है। इसके परिणामस्वरूप जनता भ्रमित हो जाती है, जनता को वास्तविक सच्चाई का पता ही नही चलता।
- **दल की तानाशाही**:- दलीय (राजनीतिक) प्रणाली दलीय अधिनायकतंत्र स्थापित करती है। राजनीतिक दल के कार्यकर्ताओं को दल और उसकी नीतियों के विरोध मे अपने विचार जनता मे व्यक्त करने की स्वतंत्रता नही रहती। इसी प्रकार व्यवस्थापिका का सदस्य बनने के बाद उसे दल के अनुशासन मे रहना पड़ता है। सदन मे किस प्रस्ताव का समर्थन करना है और किस प्रस्ताव का विरोध करना है यह दल निश्चित करता है। दल की नीति के अनुसार ही सदन मे

समर्थन या विरोध सदस्य करते है। इस रूप मे देखे तो सदस्य अपनी पार्टी की कठपुतलियाँ होते है, विचारों को व्यक्त करने की उनकी स्वतंत्रता समाप्त हो जाती है। यदि सदस्य पार्टी द्वारा स्वीकार की गई लाइन से हटकर कुछ कहने की सोचता भी है तो उसे दल की अवज्ञा करने वाला माना जाता है और उसके विरोध मे अनुशासत्मक कार्यवाही की जाती है।

- **समय एवं धन की बर्बादी**: -दलों के कारण विधानमंडल के भीतर बहुत समय वाद-विवादों मे नष्ट किया जाता है। इससे देश का बहुमूल्य समय और धन बर्बाद होता है।
- **दलीय प्रणाली से देश योग्य व्यक्तियों की सेवा से वंचित रह जाता है**:-जो विरोधी दल मे है, क्योंकि सत्तारूढ़ दल उनके अच्छे से अच्छे परामर्श को भी ठुकरा देता है।
- **आपातकालीन समय मे अनुपयुक्त:-** दलीय प्रणाली सामान्य समय मे तो जनता को बाँटती ही है। आपातकाल मे भी राष्ट्रीय महत्व के प्रश्नों पर जनता को एकमत नही होने देती। यद्यपि कुछ देशों मे यह स्थिति नही है उदाहरण के लिए संयुक्त राष्ट्र अमेरिका और ब्रिटेन मे राष्ट्रीय संकट के समय सभी मतभेद भुलाकर सब एक हो जाते है तथापि यह समस्या भारत, श्रीलंका आदि देशों मे अधिक पाई जाती है। भारत मे तो चीन के आक्रमण के समय भी पूरा देश एक मत और एक स्वर से अभिप्राय के विरोध मे खड़ा नही हो सका। यही स्थिति विदेश नीति के संबंध मे भी आती हैं।
- **नीतियों और कार्यक्रमों में अस्पष्टता** :-भारत के राजनीतिक दलों में स्पष्ट नीति व कार्यक्रम का अभाव हैं।
- **दलों का गठन विचारधारा के आधार पर नहीं** :-भारत में राजनीतिक दलों का गठन राजनीतिक-आर्थिक विचारधाराओं के आधार पर नहीं, बल्कि अन्य प्रभावों से हुआ हैं।

- **योग्य व्यक्तियों की उदासीनता**:-राजनीतिक दलों के कारण देश में भयंकर झगड़े और उपद्रव होते हैं। अतः योग्य व्यक्तियों का राजनीतिक कार्यों में उत्साह नहीं होता हैं, प्रायः वे उदासीन रहते हैं।
- **बाहुलता एक अनिवार्य दुर्बलता** :-भारत एक 'बहुल' समाज वाला देश हैं। यहाँ भाषाई, जातिगत, धार्मिक और क्षेत्रीय विविधता बहुत अधिक है। साथ ही यहाँ एक परिपक्व राजनीतिक चरित्र का भी अभाव हैं। इसलिए भारत में राजनीतिक दलों की बहुलता एक अनिवार्य दुर्बलता बन गई हैं।

1-5-स्वयं प्रगति जाँच (Check your progress)

i. मई 1996 मात्र 13 दिन चलने वाली सरकार के प्रधानमंत्री कौन थे?

ii. हरियाणा की हसनपुर (सुरक्षित) विधानसभा से एक ही दिन में तीन बार पार्टी बदलने वाले निर्दलीय विधायक कौन थे?

iii. भारतीय राजनीति में तीन महत्वपूर्ण गठबंधन कौनसे हैं?

iv. .'गया राम, अब आया राम है.' यह किसने कहा था जिसके बाद से ही दलबदलू नेताओं के लिए यह मुहावरा बन गया था।

1-6-सारांश (Summary)

गठबन्धन सरकार जब एक आम चुनाव में किसी एक पार्टी के लिए स्पष्ट बहुमत नहीं होता है, तो पार्टियां या तो गठबंशन्धन मन्त्रिमण्डलों का निर्माण करती हैं, जो एक संसदीय बहुमत या अल्पसंख्यक मन्त्रिमण्डलों द्वारा समर्थित होती हैं, जिसमें एक या अधिक दल शामिल हो सकते हैं।गठबन्धन सरकार एक संसदीय सरकार की कैबिनेट होती हैं, जिसमें कई राजनीतिक दल सहयोग करते हैं, जिससे गठबन्धन के भीतर किसी भी एक दल का प्रभुत्व कम रहता हैं। इस व्यवस्था का आम कारण यह दिया जाता हैं कि कोई दल अपने बलबूते संसद में बहुमत प्राप्त नहीं कर सकता। एक गठबन्धन

सरकार राष्ट्रीय संकट के समय भी बनाई जा सकती हैं भारतीय संविधान के अन्तर्गत समस्त व्यक्तियों को विचार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, संघ तथा समुदाय बनाने की स्वतंत्रता प्रदान की गई हैं। इसी कारण भारतवर्ष में बहुदलीय व्यवस्था विकसित हुई हैं। भारतवर्ष में इतने अधिक राजनीतिक दल हैं कि इनकी संख्या निश्चित कर पाना कठिन हैं। भारतीय राजनीतिक दल प्रणाली दल-बदल के संक्रामक रोग से ग्रसित है। राजनीतिक दलों के सदस्य दलों के सिद्धांतों में विश्वास न रखकर स्वार्थवश सत्ताधारी दल में सम्मिलित हो जाते हैं। दल-बदल के परिणामस्वरूप राज्य में राजनीतिक अस्थिरता की स्थिति उत्पन्न होती ।राजनीतिक दल अवसरवादिता के रोग से ग्रसित हैं। समस्त सिद्धांतों को ताक में रखकर सत्ता के स्वाद को चखना उनका एकमात्र उद्देश्य है। भारत के सत्ताधारी और विपक्षी दोनों दलों में वैचारिक स्पष्टता का अभाव है। भारत में अनेक राजनीतिक दलों का अस्तित्व है। इसके बावजूद भी अनेक निर्दलीय सदस्य निर्वाचन में चुनकर आते हैं। इन सदस्यों की कोई निश्चित नीति नही होती चाहे जब किसी दल में सम्मिलित हो जायें। निर्दलीय सदस्यों का निर्वाचन लोकतंत्र के हित में नहीं हैं। भारत में अनेक राजनीतिक दलों का गठन जातीय, प्रान्तीय, भाषा तथा धर्म के आधार पर हुआ हैं। हिन्दू महासभा, मुस्लिम लीग, रामराज्य परिषद तथा डी. एम. के कुछ इसी प्रकार के राजनीतिक दल हैं।

1-7-सूचक शब्द (Key Words)

i. **गठबन्धन:-** दो लोग या दो समुदाय अथवा कई समुदाय या कई लोग आपस मे एक दूसरे के लिये एक ही स्थान या एक ही <u>समिति</u> मे काम करने के लिये जुडे हों और साथ साथ मिलकर काम कर रहे हों, वह जुडा हुआ रूप उनके लिये आपसी गठबंधन का रूप माना जायेगा।

ii. **गठबंधन सरकार:-**जब चुनावी प्रक्रिया के उपरान्त किसी एक दल को बहुमत नहीं मिलता है तो इस स्थिति में बहुदलीय सरकार का गठन होता है जिसे गठबंधन सरकार कहा जाता हैं।

iii. **विशेषाधिकार:-** किसी व्यक्ति विशेष को प्राप्त विशेष प्रकार का अधिकार।

iv. **राजनैतिक दल:-** लोगों का एक ऐसा संगठित गुट होता है जिसके सदस्य किसी साँझी विचारधारा में विश्वास रखते हैं या समान राजनैतिक दृष्टिकोण रखते हैं। यह दल चुनावों में उम्मीदवार उतारते हैं और उन्हें निर्वाचित करवा कर दल के कार्यक्रम लागू करवाने का प्रयास करते हैं। राजनैतिक दलों के सिद्धान्त या लक्ष्य लिखित दस्तावेज़ के रूप में होता है

1-8-स्वयं-समीक्षा हेतु प्रश्न (Self-Assessment Questions)

i. गठबंधन सरकार किसे कहते हैं समझाइये।

ii. भारत में गठबंधन की राजनीति **के** उदय **व** गठबंधन सरकारों **के** इतिहास का का वर्णन कीजिए।

iii. **गठबंधन की राजनीति का अर्थ व भारतीय** गठबंधन की राजनीति की विशेषताएं की व्याख्या कीजिए।

iv. गठबंधन सरकारों के बनने के कारण, गठबंधन की राजनीति का सकारात्मक व नकारात्मक पक्ष का वर्णन कीजिए।

v. भारत की राजनीति पर गठबंधन की राजनीति के प्रभावों समझाइये।

vi. भारत की दलीय प्रणाली के दोषों का वर्णन कीजिए।

1-9-उतर-स्वयं प्रगति जाँच (Answer to check your progress)

i. अटल बिहारी वाजपेयी

ii. गयालाल (Gaya Lal)

iii. भारतीय जनता पार्टी के नेतृत्व में राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबन्धन (एन.डी.ए.),कांग्रेस के नेतृत्व में संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (यू.पी.ए.), वामपंथी राजनीतिक दल।

iv. राव बिरेंद्र सिंह

1-10. संदर्भ ग्रन्थ/निर्देशित पुस्तके (References / Suggested Readings)

I. जैन, पुखराज, राजनीति विज्ञान, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।

II. आर.के. जैन, कला जैन, लक्ष्मीकांत त्रिपाठी, राजनीति विज्ञान, आरोही पब्लिकेशन्स, दिल्ली।

III. डॉ. सुरेश कुमार, सोमनाथ वर्मा, डॉ. गुलशन राय, जे. बी. डी प्रिंटिंग प्रेस, जालंधर ।

Subject: राजनीति विज्ञान	
Course Code: POLS.103	Author: Dr. Parveen Sharma
Lesson No.: 7	Vetter: Updated by:
अध्याय की संरचना-7 भारत में जाति, धर्म, भाषा, क्षेत्रवाद और जातीयता की भूमिका **Role of Caste, Religion, Language, Regionalism and Ethnicity in India**	

1-1-अधिगम के उद्देशय (Learning Objectives)

1-2-परिचय (Introduction)

1-3-विषय वास्तु का प्रस्तुतिकरण (Presentation of Contents)

1-3-1-जाति की परिभाषा और अर्थ (Definitions and Meaning of caste)

1-3-2-भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका एवं प्रभाव (Role and Influence of Caste in Indian Politics)

1-3-3-राजनीतिकरण की विशेषताएँ (Characteristics of Politicalisation of Caste)

1-3-4-जातिवाद (casteism)

1-3-5-जातिवाद की हानियाँ (Demerits of Casteism)

1-3-6-जातिवाद को रोकने के उपाय (ways to stop casteism)

1-3-7-भारतीय राजनीति में भाषा (language in indian politics)

1-3-8-भारतीय राजनीति में भाषा की भूमिका (Role of Language in Indian Politics)

1-3-9-भाषावाद और भारतीय राजनीति (Linguism and Indian Politics)

1-3-10-भाषा समस्या का समाधान (solution to the language problem)

1-4-विषय वस्तु का पुनः प्रस्तुतिकरण (Presentation of further Contents)

1-4-1-भारतीय राजनीति में क्षेत्रवाद (Regionalism in India's politics)

1-4-2-क्षेत्रवाद की परिभाषा और अर्थ (Meaning and Definition of Regionalism)

1-4-3-क्षेत्रवाद के कारण (Causes of Regionalism)

1-4-4-क्षेत्रवाद की समस्या का समाधान (Resolution of Problem of Regionalism)

1-4-5-धर्म और भारतीय राजनीति (Religion and Indian Politics)

1-4-5-1-भारतीय संविधान में धर्मनिरपेक्षता को दिए गए प्रावधान (Provisions given to secularism in the Indian Constitution)

1-4-5-2-धर्म आधारित राजनीति का विकास (Development of religion-based politics)

1-4-5-3-राजनीति में धर्म के प्रभाव को रोकने के लिए सुझाव (Suggestions to stop the influence of religion in politics)

1-5-स्वयं प्रगति जाँच (Check your progress)

1-6-सारांश (Summary)

1-7-सूचक शब्द (Key Words)

1-8-स्वयं समीक्षा हेतु प्रश्न (Self-Assessment Questions)

1-9-उतर-स्वयं प्रगति जाँच (Answer to check your progress)

1-10. संदर्भ ग्रन्थ/निर्देशित पुस्तके (References/Suggested Readings)

1-1-अधिगम के उद्देशय (Learning Objectives)

- विद्यार्थियों को जातिवाद के अर्थ, कारण, जातिवाद समस्या से अवगत करवाना।
- विद्यार्थियों को क्षेत्रवाद का अर्थ, क्षेत्रवाद के कारण तथा क्षेत्रवाद की समस्या व समाधान से अवगत करवाना।
- विद्यार्थियों को भारतीय राजनीति में भाषा की भूमिका, भाषा समस्या का समाधान समाधान से अवगत करवाना।
- विद्यार्थियों को धर्म और भारतीय राजनीति के मध्य संबंधों का ज्ञान करवाना।

1-2-परिचय (Introduction)

हमारा देश विविधताओं वाला देश है। यहाँ विभिन्न जाति के लोग रहते हैं भारतीय समाज की संरचना जाति पर आधारित है। प्राचीन काल में धर्म-ग्रन्थों के अनुसार वर्ण-व्यवस्था पाई जाती थी। इस वर्ण व्यवस्था का आधार कर्म था। व्यक्ति का वर्ण उसके कार्यों से निर्धारित होता था, लेकिन धीरे-धीरे यह व्यवस्था विकृत होती चली गई और मध्यकाल में वर्ण-व्यवस्था का आधार कर्म न रहकर जन्म बन गया। जाति के प्रति विशेष आग्रह के कारण दूसरी अन्य जातियों के प्रति उपेक्षा का भाव रखना।" जातिवाद एक संकीर्ण विचारधारा है जो सामाजिक असमानता व सामाजिक विघटन को बढ़ावा देती है।

1-3-विषय-वस्तु का प्रस्तुतीकरण (Presentation of Contents)

1-3-1-जाति की परिभाषा और अर्थ (Definitions and Meaning of caste): अंग्रेजी का 'Caste' शब्द पुर्तगाली शब्द casta से बना है जिसका अर्थ प्रजाति, जन्म या भेद होता है। इस अर्थ में जाति-

प्रथा प्रजातीय या जन्मजात भेद के आधार पर एक व्यवस्था है अंग्रेजी का 'Caste' शब्द पुर्तगाली (Portuguese) शब्द 'Caste' से बना है जिसका अर्थ प्रजाति जन्म या भेद होता है। 'Caste' शब्द का लैटिन (Latin) शब्द 'Castus' से भी घनिष्ठ सम्बन्ध है और इसका अर्थ 'विशुद्ध' या ' अमिश्रित' (pure) या 'जाति' है। इस प्रकार जाति का अर्थ वंशानुसंक्रमण (heredity) आधारित एक विशेष सामाजिक समूह से लगाया जाता है ,स्पष्ट शब्दों में, जाति-प्रथा जन्मगत भेद के आधार पर एक व्यवस्था का नाम है।

I. **रिजले-** जाति परिवारों का संग्रह अथवा समूह है जो एक ही पूर्वज, जो काल्पनिक मानव या देवता हो, से वंश-परंपरा बताते हैं और एक ही व्यवसाय करते हों और उन लोगों के मत में या इसके योग्य हों, एक सजाति समुदाय माना जाता हो।

II. **लुंडबर्ग-** जाति एक अनमनीय सामाजिक वर्ग है, जिसमें मनुष्यों का जन्म होता है और जिसे वे बड़ी कठिनाई से ही छोड़ सकते हैं।

III. **ब्लंट-**जाति एक अन्तर्विवाही समूह या समूहों का संकलन है, जिसका एक सामान्य नाम होता है, जिसकी सदस्यता पैतृक होती है और जो अपने सदस्यों पर सामाजिक सहवास के सम्बन्ध में कुछ प्रतिबन्ध लगाती है। जो एक परम्परागत सामान्य पेशे को करती है या एक सामान्यतया एक सजातीय समुदाय को बनाने वाली समझी जाती है।

IV. **कूले-**जब वर्ग पूर्णतया आनुवंशिकता पर आधरित होता है, तो हम उसे जाति कहते हैं।

V. **मैकाइवर** - जब प्रस्थिति पूर्णतया पूर्वनिश्चित हो, ताकि मनुष्य बिना किसी परिवर्तन की आशा के अपना भाग्य लेकर उत्पन्न होते हैं, तब वर्ग जाति का रूप धरण कर लेता है।

VI. **केतकर-** जाति दो विशेषताएं रखने वाला एक सामाजिक समूह है (क) सदस्यता उन्हीं तक सीमित होती है, (ख) सदस्यों को एक अनुल्लंघनीय सामाजिक नियम द्वारा समूह के बाहर विवाह करने से रोक दिया जाता है।

VII. **मार्टिन्डेल और मोनोकेसी -** जाति व्यक्तियों का एक ऐसा समूह है, जिनके कर्तव्यों तथा विशेषाधिकारों का हिस्सा जन्म से निश्चित होता है, जो कि जादू या ध्र्म दोनों से समर्थित तथा स्वीकृत होता है।

VIII. **ई. ए. गेट -** जाति अन्तर्विवाही समूह या ऐसे समूहों का संकलन है, जिनका एक सामान्य नाम होता है, जिनका परम्परागत व्यवसाय होता है, जो अपने को एक ही मूल से उद्भूत मानते हैं और जिन्हें साधरणतया एक ही सजातीय समुदाय का अंग समझा जाता है।

IX. **ग्रीन-** जाति स्तरीकरण की ऐसी व्यवस्था है, जिसमें प्रस्थिति की सीढ़ी पर उपर या नीचे की ओर गतिशीलता, कम-से-कम आदर्शात्मक रूप में नहीं पायी जाती।,

X. **एंडरसन** -जाति सामाजिक वर्गीय संरचना का वह कठोर रूप है, जिसमें व्यक्तियों का पद, प्रस्थिति-क्रम में, जन्म अथवा आनुवंशिकता द्वारा निर्धरित होता है।

1-3-2-भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका एवं प्रभाव (Role and Influence of Caste in Indian Politics)

यद्यपि भारतीय संविधान ने पथ, भाषा, जाति, लिंग आदि के आधार पर नागरिकों के साथ किसी भी तरह के भेदभाव को समाप्त करके देश में पथ -निरपेक्ष शासन लागू करने की स्पष्ट घोषणा कर रखी है, फिर भी भारतीय राजनीति जातिवाद से बुरी तरह प्रभावित है। इसे निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर सरलता से समझा जा सकता है-

I. **जातिवाद के आधार पर राजनीतिक दल का गठन (Formation of Political Parties on the Basis of Casteism): -** भारत में राजनीतिक दलों का मुख्य आधार जाति का तत्व रहा है। राजनीतिक दल उच्च वर्णों या निम्न वर्ण के विरुद्ध प्रचार करके ही राजनीति करते चले जा रहे हैं।

II. **राजनीतिक नेतृत्व (Political Leadership):** -जातिवाद ने राजनीतिक नेतृत्व के विकास की प्रक्रिया को भी बहुत अधिक प्रभावित किया है। प्रायः देखने में आता है कि विभिन्न राज्यों में प्रमुख राजनीतिक दलों द्वारा राज्य की पार्टी इकाई का अध्यक्ष बनाने समय भी जातीय समीकरणों को सम्मुख रखते हुए ही निर्णय किए जाते हैं। जातिगत नेतृत्व भी राजनीति में मतदाताओं को आकर्षित करने के हथियार के रूप में प्रयोग किया जाता है।

III. **प्रत्याशियों का चयन (Selection of Candidates):**-भारत के सभी निर्वाचनों में जातीयता की भूमिका रही है। भारत मैं प्रत्येक राजनीतिक दल चुनाव क्षेत्र में प्रत्याशियों का निर्णय करते समय जातीय गणित को सम्मुख रखता है। सभी राजनीतिक दह चुनाव प्रचार करते समय एवं जन समर्थन को अपने पक्ष में करने के लिए भी जातीयता के तत्व का ही सहारा लेते हैं। इस प्रकार समस्त नाय परिणाम जातीय तत्त्व के इर्द-गिर्द सिमटकर रह जाते हैं। इस प्रकार जाति पर आधारित चुनाव परिणाम एवं जन प्रतिनिधित्व लोकतान्त्रिक व्यवस्था की कुंडित करने का कार्य करते हैं।

IV. **जातियों के नाम पर आरक्षण (Reservation on Ciste Basis):**- जातीय आधारित आरक्षण की नीति ने भी भारतीय राजनीति को बहुत प्रभावित किया है। हमारे संविधान में प्रारम्भ में केवल 10 वर्षों के लिए ही अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के लिए आरक्षण सम्बन्धी

प्रावधान रखे गए थे, परन्तु प्रत्येक दस वर्ष के बाद ऐसे प्रावधानों को बढ़ाने का उद्देश्य अमुक वर्ग के लोगों के विकास की बजाय 'वोट की राजनीति' का अधिक हो गया।

V. **मतदान व्यवहार (Voting Behaviour):**-भारतीय निर्वाचन में भारतीय मतदाताओं का एक बहुत बड़ा समूह जातीय आधार पर मतदान करता है। भारत में मतदान व्यवहार से सम्बन्धित हुए विभिन्न शोध कार्यों से यह बात निर्विवाद रूप में उभरकर सामने आई कि अन्य तत्त्वों की अपेक्षा जातीय तत्त्व से भारतीय मतदाता सबसे अधिक प्रभावित हो रहा है। ऐसे निष्कर्ष इस बात को स्पष्ट करते हैं कि भारतीय मतदाता ने अपना परम्परागत एवं रूढ़िवादी दृष्टिकोण छोड़ा नहीं है जबकि वे आधुनिकता की और अग्रसर होने के लिए आधुनिक लोकतान्त्रिक ढंग से प्रतिनिधि राजनीतिक संस्थाओं की स्थापना करना चाहते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि उनका पुरातन दृष्टिकोण आधुनिक लोकतान्त्रिक व्यवस्था की स्थापना में सबसे बड़ी बाधा है।

VI. **मन्त्री परिषद् का निर्माण (Formation of the Council of Ministers): -** भारतीय राजनीतिक जीवन में जातीयता का तत्त्व इतना गहरा प्रभाव जमा चुका है कि केन्द्रीय एवं राज्य स्तर पर बनने वाले मन्त्रिमण्डल भी इस प्रभाव से मुक्त नहीं है। उच्च राजनीतिक नेतृत्व की भी एक तरह से यह मज़बूरी बन गई है कि किसी जाति विशेष का समर्थन अपने पक्ष में बनाए रखने के लिए उस जाति के प्रमुख नेता को मन्त्रिमण्डल में प्रतिनिधित्व दे। इस प्रकार मन्त्रिमण्डल स्तर पर भी इस प्रकार की संकीर्णता हावी बनी हुई है।

VII. **जाति एवं दबाव समूह(Caste and Pressure Groups):**-भारतीय राजनीति को जातिगत दबाव समूह भी प्रभावित करने में पीछे नहीं रहे। जातिगत समूह जिस तरह से नीति-निर्माताओं एवं राजनीतिज्ञों को प्रभावित करने का प्रयत्न करते हैं उससे तो उनकी तुलना यूरोप और अमेरिका में पाए जाने वाले ऐच्छिक समुदायों से की जा सकती है भारत में जातीय आधार पर

संगठित अनेक ऐसे समुदाय पाए जाते हैं, जैसे तमिलनाडु में नाडार जाति संघ, गुजरात में क्षत्रिय महासंघ, बिहार में कायस्थ सभा आदि अपने-अपने संगठित बल के आधार पर राजनीतिक सौदेबाजी करने से नहीं चूकते हैं। इस प्रकार यह प्रक्रिया भारतीय राजनीति पर वोट की राजनीति की एक दबाव प्रक्रिया कही जा सकती है। अतः स्पष्ट है कि जातीय तत्त्व भारतीय राजनीति एवं लोकतन्त्र को प्रभावित करने में अपनी हर सम्भव पकड़ बनाए हुए।

VIII. **जाति एवं आरक्षित प्रतिनिधित्व(Caste and Reserved Representation):**-भारतीय राजनीति को प्रभावित करने में जातीय आधार पर लोकसभा एवं राज्यों की विधानसभाओं में आरक्षित प्रतिनिधित्व की व्यवस्था भी अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। समाज में आरक्षित जाति के प्रमुख नेता अपने प्रतिनिधित्व को बनाए रखने के लिए जहाँ जातीय भावना अपने लोगों में विकसित करते हैं, वही उनके प्रतिनिधित्व की कार्यशैली भी जातीय हितों के इर्द-गिर्द सिमटकर रह जाती है। इस प्रकार ऐसे प्रतिनिधित्व का राष्ट्रीय दृष्टिकोण एक तरह से लुप्त हो जाता है, जो एक तरह से स्वच्छ लोकतन्त्र के लिए खतरे की घंटी है।

IX. **जाति एवं प्रशासन (Caste and Administration):** -संविधान के द्वारा सरकारी नौकरियाँ तथा संसद और राज्य विधानसभाओं में पिछड़ी जातियों के सदस्यों के लिए स्थान सुरक्षित रखने की जो व्यवस्था की गई है, उससे भी जातिवाद को बहुत बढ़ावा मिला है।

X. **पंचायती राज व्यवस्था तथा जाति (Panchayati Raj System and Caste)** स्वतन्त्रता के पश्चात् गांवों में पंचायती राज की व्यवस्था की गई। पंचायती राज के तीन स्तरों- पंचायत, पंचायत समिति तथा जिला परिषद् के चुनाव में जाति का बहुत महत्त्व है। कई बार चुनाव में जाति की भावना भयानक रूप धारण कर लेती है तथा दंगे-फसाद भी हो जाते हैं। पंचायती राज की असफलता का एक महत्त्वपूर्ण कारण जातिवाद भी है।

XI. **निर्णय प्रक्रिया में जाति की भूमिका (Role of Caste in Decision Making Process)**: - भारत में जातियाँ संगठित होकर राजनीति और प्रशासनिक निर्णय प्रक्रिया को प्रभावित करती हैं। उदाहरण के लिए, संविधान द्वारा अनुसूचित कबीलों के लिए जो व्यवस्था सीमित समय के लिए की गई थी, उसको उन्होंने दबाव डालकर 2030 तक के लिए बढ़वा लिया है।

1-3-3-राजनीतिकरण की विशेषताएँ (Characteristics of Politicalisation of Caste)

भारतीय राजनीति में जाति की विशेषताओं को निम्नलिखित रूप से दर्शाया जा सकता है-

(i) राजनीति में प्रधान जाति की भूमिका इस आधार पर निर्भर है कि किसी क्षेत्र में उस जाति की संख्या कितनी है।

(ii) चुनाव में राजनीतिज्ञ जातियों का समर्थन प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं।

(iii) जाति व्यक्ति को बाँचने वाली कड़ी है जिसने जातीय संघों और जातीय पंचायतों की राजनीतिक महत्त्वाकांक्षाओं को बढ़ाया है, जैसे लिंगायत, कबीर पंथी, सिक्ख आन्दोलन आदि।

(iv) जातियों में गुटबन्दी के कारण विभिन्न जातियों को कुछ सुविधाएं प्रदान होती हैं।

(v) शिक्षा, शहरीकरण और आधुनिकीकरण से जातियाँ समाप्त नहीं हुई हैं, परन्तु उनमें एकीकरण की प्रवृत्ति बढ़ी है।

(vi) जाति की भूमिका राष्ट्रीय स्तर पर इतनी प्रभावशाली नहीं है जितनी कि स्थानीय राज-स्तर पर है।

(vii) जाति और राजनीति के सम्बन्ध परिवर्तनशील हैं।

1-3-4-जातिवाद(casteism)

जातिवाद जिन दो शब्दों से मिलकर बना है जाति और वाद। ''जाति'' का अर्थ है वो समुदाय जो आपस में आर्थिक और सामाजिक संबंधों से जुड़ा हुआ हो और ''वाद'' का मतलब कोई व्यवस्थित मत या सिद्धांत । जातिवाद या जातीयता एक ही जाति के लोगो की वह भावना है, जो अपनी जाति विशेष के हितो की रक्षा के लिये अन्य जातियों के हितो की अवहेलना और उनका हनन करने के लिये प्रेरित करती है। इस प्रभावना के आधार पर एक ही जाति के लोग अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिये अन्य जाति के लोगो को हानि पहुंचाने के लिये प्रेरित होते है।

जातिवाद प्रत्येक धर्म, समाज और देश में है। हर धर्म का व्यक्ति अपने ही धर्म के लोगों को ऊंचा व अन्य जाति को नीचा मानता है। लोगों की टिप्पणियां, बहस या गुस्सा उनकी अधूरी जानकारी पर आधारित होता है। कुछ लोग जातिवाद की राजनीति करना चाहते हैं इसलिए वह जातिवाद और छुआछूत को और बढ़ावा देकर समाज में दीवार खड़ी करते हैं और ऐसा भारत में ही नहीं दूसरे देशों में भी होता रहा है।

1-3-5-जातिवाद की हानियाँ (Demerits of Casteism)

जातिवाद के इस राजनीतिकरण ने राष्ट्र की राजनीतिक, आर्थिक सामाजिक व्यवस्था को अन्दर से खोखला बना दिया है। उसके अग्रलिखित दोष हैं: -

i. जातिवाद से व्यक्ति की प्रतिमा, गुणवत्ता, राष्ट्रभक्ति, प्रामाणिकता, ईमानदारी आदि सद्गुण पूरी तरह उपेक्षित हो गए। हैं जबकि सार्वजनिक जीवन को स्वच्छ एवं स्वस्थ बनाए रखने के लिए उपर्युक्त सद्गुण अनिवार्य हैं।

ii. जातिवाद ने विभिन्न जातियों में ईर्ष्या, द्वेष और संकीर्णता को बढ़ावा दिया है तथा इससे सम्पूर्ण सामाजिक जीवन विषाक्त हो गया है।

iii. जातिवाद ने भाई-भतीजावाद को भड़काया है। जातियों में झूठा अभिमान उत्पन्न कर राष्ट्र की एकता और अखण्डता के लिए गम्भीर खतरा खड़ा कर दिया है।

iv. शक्तिशाली जातियों के कारण लोकतन्त्र मजाक बन गया है। कमजोर वर्ग के लोगों को मतदान तक नहीं करने दिया जाता।

v. जातिवाद ने प्रशासनिक क्षेत्र में कार्य कुशलता एवं उसकी प्रभावशीलता को जबरदस्त धक्का पहुँचाया है।

vi. अब भारत के नागरिकों में देशभक्ति के स्थान पर जातिभक्ति पनप रही है। जातियों में हिंसक संघर्ष हो रहे हैं। सम्पूर्ण राष्ट्र गहरे तनाव में जीवन-यापन कर रहा है।

vii. जाति पर आधारित आरक्षण व्यवस्था के परिणाम उल्टे हो रहे हैं। इससे लाभ के स्थान पर हानि अधिक हो रही है।

1-3-6-जातिवाद को रोकने के उपाय: -

I. जाति से जातिवाद का जन्म हुआ है, अतएव जातिवाद को समाप्त करने के लिए जाति शब्द का प्रयोग नही करना चाहिए। जिस प्रकार संविधान के अनुच्छेद 18 के माध्यम से सेना विद्या सम्बन्धी सम्मान के अतिरिक्त अन्य उपाधियों को समाप्त कर दिया गया है उसी प्रकार कानून के माध्यम से जाति सूचक शब्द को नाम के साथ जोड़ना निषिद्ध किया जाना चाहिए।

II. स्कूल, कॉलेज, धर्मशाला, छात्रावास आदि के नामकरण मे जाति सूचक शब्दों के प्रयोग को कानूनी तौर पर निषिद्ध किया जाना चाहिए।

III. जातीय संगठन, परिचय सम्मेलन पर कानूनी प्रतिबंध लगाया जाना चाहिए।

IV. जातीय आधार पर विवाह सम्बन्धी विज्ञापनों को प्रतिबंधित किया जाना चाहिए।

V. अंतर्जातीय विवाहों को प्रोत्साहन देकर भी जातिवाद को रोका जा सकता है। जब एक जाति के लोग दूसरी जाति मे विवाह संबंधों की स्थापना करेंगे तो जातिवाद की समाप्ति स्वतः ही हो जायेगी।

VI. जातिवाद को रोकाने के लिए शिक्षा का स्तर इतना ऊंचा उठ जाना चाहिए कि लोग जातीय संकीर्णता से दूर रहें।

VII. संचार माध्यमों के द्वारा जाति विरोधी जनमत तैयार किया जाना चाहिए।

VIII. ग्रामीण समाज मे जात-पाँत का अधिक कठोरता से पालन होता है। विभिन्न जातियों मे खान-पान, मेल-मिलाप, आना-जाना एवं मैत्री सम्बन्ध शहरो मे बहुत पहले से चलन मे है लेकिन गाँवों मे जातिगत दूरी और भेदभाव अभी बदस्तूर कायम है। ऐसे मे जाति व्यवस्था को कमजोर करने तथा जातिवाद को प्रभावहीन बनाने की दृष्टि से नगरीयकरण का तीव्र गति से विकास किया जाना चाहिए।

IX. जाति का एक महत्वपूर्ण आधार उसका परम्परागत व्यवसाय है। जजमानी व्यवस्था के माध्यम से व्यावसायिक समूहों के बीच सम्बन्धों को स्थायी व मजबूत बनाया गया है। ऐसे मे जाति एवं जातिवाद को कमजोर करने के लिये इन दोनो आधारो को कमजोर किये जाने की जरूरत है। इसके लिए समाज मे विशेष रूप से ग्रामीण समाज मे व्यावसायिक एवं आर्थिक गतिशीता को बढ़ाने के प्रयत्नों को तेज किया जाना चाहिए।

X. जातीय संगठन व जातीय चेतना को कमजोर करने के लिए समाज मे वर्गीय संगठन (अर्थात् वर्गाधारित संगठन) व वर्गीय चेतना के विकास के लिए प्रयास किया जाना चाहिए।

XI. अंतर्जातीय सम्मेलनों के माध्यम से जातिवाद का बहिष्कार करना चाहिए।

1-3-7-भारतीय राजनीति में भाषा (language in indian politics): -

भारतीय राजनीति के अनेक निर्धारक तत्वों में से एक भाषा भी है। भारत एक बहुभाषी देश है। यहां अनेक भाषाएं एवं बोलियां बोली जाती हैं इनमें से 22 भाषाएं संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल की गई हैं। भाषा लोगों के बीच में संचार का प्रमुख साधन है। भाषा की विविधता भारतीय समाज की अनूठी विरासत है किंतु यही विशेषता तब संकट बन जाती हैं जब यहां पर बोली तथा लिखी जाने वाली अनेक भाषाओं के कारण लोगों के मध्य द्वेष उत्पन्न होता है। ध्यातव्य है कि 1950 से 1960 के बीच राजनीति का प्रमुख मुद्दा भाषा ही था।

भाषागत आधार पर संकुचित भावनाएं, दबाव गुटों का उद्भव और भाषा के आधार पर राज्यों की मांग तथा राजनीतिक आंदोलन राष्ट्रीय एकता के लिए संकट उत्पन्न करते हैं भाषाई आधार पर समस्त विवादों के निवारण के लिए एक ऐसी संपर्क भाषा की जरूरत है जो कि विभिन्न भाषा भाषी व्यक्तियों को एकता के सूत्र में बांध सकें।राजनीतिक एकता के साथ-साथ भाषा की एकता लोकतंत्र के लिए जरूरी है।

1-3-8-भारतीय राजनीति में भाषा की भूमिका (Role of Language in Indian Politics):-

भाषा का प्रश्न राजनीति का प्रश्न बन गया। भाषा को आधार बनाकर राजनीतिक दलों एवं राजनीतिकारों ने सामान्य जनता को भी उत्तेजित करने का प्रयास किया और स्थिति ऐसी उत्पन्न हो गई कि ऐसा अनुभव होने लगा कि कहीं भाषा का प्रश्न हमारी राष्ट्रीय एकता को खंडित ना कर दे।भाषा भारतीय राजनीति में निम्नलिखित प्रकार से भूमिका निभाती है-

I. भाषा के आधार पर राज्यों का पुनर्गठन-भाषा राजनीति में अहम भूमिका निभाती है जिसका प्रभाव हमें स्वतंत्रता के बाद से ही देखने को मिल रहा है सन **1952** में तेलुगु भाषी लोगों में प्रथक तेलुगु भाषा राज्य के लिए आंदोलन तीव्र हो गया और यह आंदोलन इतना तीव्र था कि प्रधानमंत्री नेहरु को भाषा के आधार पर राज्यों का निर्माण करना पड़ा।

II. हिंदी भाषा विरोधी राजनीति-भारतीय संविधान निर्माण के समय से ही हिंदी को राष्ट्रीय भाषा के रूप में प्रतिस्थापित करने पर राजनीति चल रही है। परंतु स्वतंत्रता के लगभग **70** वर्ष गुजर जाने के बावजूद भी हिंदी सरकारी भाषा नहीं बन पाई। सरकार ने सर्कुलर जारी कर सभी मंत्रालयों, पी.एस.यू. और बैंकों को अपने सोशल मीडिया अकाउंट्स पर हिंदी को प्राथमिकता देने की बात कही थी, तब भी राजनीतिक दलों ने इसका तीव्र विरोध किया। पश्चिम बंगाल और तमिलनाडु की सरकार तो हिंदी भाषा का विरोध कर हमेशा भाषा की राजनीति करती दिखाई देती है।

III. राज्यों में भाषाई विवाद-भाषा के आधार पर राज्यों का पुनर्गठन होने के बावजूद राज्यों के अंतर्गत एवं सीमा पर भाषाएं विवाद देखने को मिलता है जैसे-महाराष्ट्र और कर्नाटक सीमा पर स्थित बेलगांव, असम में बंगाली और असमी भाषा को लेकर भी हमेशा उग्र विवाद देखने को मिलते हैं राजनीतिक दल इसका लाभ उठाने के लिए ऐसे विरोध को और उग्र कर देते हैं।

IV. अन्य भाषाओं की मान्यता की राजनीति-हमारे संविधान की आठवीं अनुसूची में **22** प्रमुख भाषाओं को मान्यता प्रदान की गई है उसके बावजूद मांग थमी नहीं, यह दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है लोग कई क्षेत्रीय भाषाओं को आठवीं अनुसूची में शामिल करने की मांग कर रहे हैं जैसे-भोजपुरी, मंडारी आदि।

V. भाषाई अल्पसंख्यकों की राजनीति-भाषाई आधार पर अनेक राज्यों के निर्माण के बावजूद भाषाई अल्पसंख्यकों की समस्या भी वैसी ही बनी हुई है। यह अल्पसंख्यक वर्ग अनेक प्रकारों से अपने भाषाई संरक्षण की मांग कर रहे हैं जैसे-उत्तर प्रदेश और बिहार में उर्दू, कर्नाटक में मराठी, पंजाब में हिंदी आदि राज्यों में भाषाई अल्पसंख्यकों की समस्या विद्यमान है और यह यहां स्थानीय राजनीति में अहम भूमिका निभाती है।

VI. भाषा के आधार पर मतदान व्यवहार-भारत में मतदान व्यवहार भी भाषा के आधार पर किया जाता है लोग उसी पार्टी को मत देते हैं जो उनकी भाषा से संबंधित हो या उनकी भाषा की उन्नति के संबंध कार्यरत हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भाषा संबंधी विवाद ने भारत की राष्ट्रीय एकता को दुष्ट प्रभावित किया है और इसने देश के समक्ष प्रशासनिक समस्या भी उत्पन्न ने की है।ऐसे अनेक अवसरों पर राजनीतिक दलों ने भाषा की समस्या से राजनीतिक लाभ उठाने की प्रयत्न किए और वर्तमान में भी ऐसी प्रवृत्ति देखी जा रही है।

1-3-9- भाषावाद और भारतीय राजनीति (Linguism and Indian Politics): -

भारत में भाषावाद की समस्या वस्तुतः निहित राजनीतिक स्वार्थों से प्रेरित समस्या रही है भाषायी समस्या को लेकर उत्पन्न विवादों के परिणामस्वरूप देश का राजनीतिक वातावरण तो दूषित हुआ ही इसके साथ-साथ देश का जीवन भी अशान्त हो गया। इस तरह भाषायी प्रश्न एक राजनीतिक प्रश्न बन गया और कुछ स्वार्थी राजनीतिज्ञों एवं राजनीतिक दलों ने भाषायी आधार पर जनता को उत्तेजित करने का कार्य किया। भारत की राजनीति में भाषा से जुड़ी हुई समस्याओं को निम्नलिखित बिन्दुओं के रूप में देखा जा सकता है।

I. **भाषायी आधार पर राज्यों का पुनर्गठन (Re-organisation of States on the basis of Language) :-** स्वतन्त्रता प्राप्ति ही समय बाद इस बात के लिए जोरदार राजनीतिक दबाव दिए जाने लगे कि भारत के राज्यों के बीच की सीमाएँ भाषा के कुछ के आधार पर बनाई जाएँ। सन् 1952 में तेलुगू भाषी लोगों का आन्दोलन बहुत ही तीव्र हो उठा और तेलुगू नेता पोट्टी श्री रामुल ने उन क्षेत्रों को मिलाकर जहाँ पर तेलुगू बोलने वालों का बहुमत था, एक अलग राज्य बनाने की माँग को मनवाने के लिए आमरण व्रत अनशन (Fast unto death) रखा। अनशन

के परिणामस्वरूप उनकी मृत्यु हो गई, जिससे बहुत बड़ा हंगामा खड़ा हो गया और नेहरू सरकार को भाषा के आधार पर अलग आन्ध्र प्रदेश राज्य की स्थापना की माँग माननी पड़ी। इसके पश्चात् देश के विभिन्न भागों में उसी प्रकार भाषा के आधार पर राज्य बनाने की माँग जोर पकड़ने लगी। इसके परिणामस्वरूप सन् 1953 में भारत सरकार द्वारा एक 'राज्य पुनर्गठन आयोग' (States Re-organisation Commission) की स्थापना की गई, जिसे भाषा के आधार पर अलग राज्यों की माँग की जाँच-पड़ताल करने का काम सौंपा गया। इस आयोग की सिफारिशों के आधार पर सन् 1956 में संसद द्वारा 'राज्य पुनर्गठन विधेयक' पास किया गया, जिसके अनुसार 14 राज्यों तथा 6 संघीय क्षेत्रों की स्थापना की गई । सन् 1960 में बम्बई राज्य का विभाजन करके महाराष्ट्र तथा गुजरात दो राज्यों की स्थापना की गई। सन् 1962 में नागालैण्ड को राज्य बना दिया गया और सन् 1966 में पंजाब का विभाजन करके हिन्दी भाषी राज्य हरियाणा की स्थापना की गई। सन् 1970 में हिमाचल प्रदेश को भी अलग राज्य बना दिया गया तथा मणिपुर, त्रिपुरा, सिक्किम, मिजोरम, अरुणाचल प्रदेश तथा गोवा भी अलग राज्य बना दिए गए हैं।

II. **भाषायी राज्यों में झगड़े (Disputes between State formed on the basis of Language)**: - भाषा के आधार पर राज्य का गठन करने से भाषा की समस्या घटने की बजाय और अधिक बढ़ गई है। चण्डीगढ़ के बारे में पंजाब तथा हरियाणा के बीच, बेलगाँव नगर के बारे में महाराष्ट्र तथा कर्नाटक के बीच तथा असम में बांग्ला तथा असमी भाषा को लेकर उग्र विवाद उत्पन्न हुए हैं। कुछ अन्य राज्यों में भी लोग भाषा के आधार पर अलग राज्यों की मांग कर रहे हैं।

III. **भाषा के आधार पर उत्तर-दक्षिण भारत की संकुचित भावनाएं (Narrow Feelings of North and South India on the basis of Language):** - भाषा के आधार पर भारत में उत्तर तथा दक्षिण की संकुचित मनोवृत्ति पनपने लगी है। दक्षिण भारत ने हिन्दी का जोरदार विरोध किया है और हिन्दी भाषी क्षेत्रों ने हिन्दी के पक्ष में तथा अंग्रेज़ी के विरोध में प्रदर्शन किए हैं।

IV. विभिन्न राज्यों में हिन्दी विरोधी आन्दोलन (Anti-Hindi Agitations in many States): - हिन्दी का राष्ट्रभाषा के रूप में अहिन्दी भाषी राज्यों ने सदा से विरोध किया है। वे हिन्दी को हिन्दी साम्राज्यवाद की संज्ञा देकर उसका विरोध करते हैं। इस सम्बन्ध में उनके द्वारा कई आन्दोलन भी चलाए जा चुके हैं।

V. दबाव समूहों का जन्म (Birth of Pressure Groups):- भाषा की राजनीति के कारण भाषा के समर्थन के लिए दबाव समूहों का भी जन्म हुआ है। उदाहरणस्वरूप, महाराष्ट्र में संयुक्त महाराष्ट्र समिति तथा गुजरात में महा गुजरात जनता परिषद् ऐसे दबाव समूहों को जनता तथा राजनीतिक दलों का भी समर्थन प्राप्त है।

VI. **राष्ट्रीय एकता को खतरा (Danger to National Unity**): - राष्ट्रीय एकता के लिए एक सामान्य भाषा का होना अति आवश्यक है। संविधान निर्माताओं ने वही बात सोचकर हिन्दी को राष्ट्रभाषा घोषित किया था। परन्तु भाषा के विवाद ने राष्ट्रीय एकता व अखण्डता को करारी चोट पहुँचाई है। दक्षिण के राज्य और उत्तर के राज्यों में मुख्य विवाद का कारण भाषा ही है।

VII. आन्दोलन, हिंसा, आमरण व्रत इत्यादि का प्रयोग (Use of Agitation, Violence and Fasting etc.): - भाषा के विवादों ने आन्दोलनों, हिंसा इत्यादि को जन्म दिया है। भाषायी समूह के लोगों ने केन्द्र से अपनी मांगें मनवाने के लिए आन्दोलनों का सहारा लिया और कई

नेताओं ने आमरण व्रत भी रखे। इन हिंसक आन्दोलनों में हजारों लोगों की मृत्यु हुई है और लाखों लोगों की सम्पत्ति नष्ट हुई है।

VIII. **संकीर्ण क्षेत्रीय हित (Narrow Regional Interests):-** भाषा व्यक्ति में संकीर्ण देश भक्ति की भावना का विकास करती है। लोग राष्ट्रहित को भूलकर अपने स्वार्थी हितों के चक्कर में फंस जाते हैं।

IX. **क्षेत्रीयवाद की भावना का विकास (Development of the Feeling of Regionalism)** भाषा के आधार पर ही लोगों में क्षेत्रीयवाद की भावना का विकास हुआ है और विभिन्न भाषा बोलने वाले लोग पृथक राज्य की माँग करते हैं, परन्तु यदि सभी पृथक भाषा बोलने वालों की माँग को स्वीकार कर लिया जाए तो भारत अनेक छोटे-छोटे राज्यों में बंट जाएगा और भारत की एकता भी खतरे में पड़ सकती है।

उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि भारत में भाषा की समस्या ने निरन्तर संघर्षो और मतभेदों को उत्पन्न किया है। जहाँ प्रान्तीय (प्रादेशिक) भाषाओं के विकास ने भाषाई पृथक्कतावाद को जन्म दिया है,

1-3-10-भाषा समस्या का समाधान (solution to the language problem)

(i) हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में देश के सभी नागरिकों को स्वीकार कर लेना चाहिए।

(ii) संघ में शासन की कार्रवाई को भी हिन्दी में करना ही उचित होगा।

(iii) प्रान्तीय शासन और सभी स्तरों पर शिक्षा का माध्यम प्रादेशिक भाषाओं को बनाया जाना चाहिए। इस हेतु प्राक्षिक भाषाओं के विकास के लिए पर्याप्त ध्यान देना चाहिए।

(iv) हिन्दी भाषा को सरल और लोकप्रिय बनाने के लिए दस सनात्मक कार्य करने चाहिए। इस कार्य हेतु सरल हिन्दी में मूल पुस्तकें लिखी जाएँ और उपयोगी पुस्तकों का अनुवाद किया जाए और कम-से-कम मूल्य में उन्हें अहिन्दी भाषियों में वितरित किया जाए।

(v) अंग्रेजी का प्रयोग सीमित किया जाए, परन्तु उसे समूल नष्ट नहीं किया जाए।

(vi) त्रि-भाषा सूत्र को पूर्ण निष्ठा से आगू किया जाए।

(vii) अन्त में, भाषा को राजनीतिक स्वायों की पूर्ति का माध्यम बनने से रोका जाए।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि धर्म और भाषावाद दोनों ने ही भारतीय राजनीति को बहुत हद तक प्रभावित किया है।

1-4-विषय वस्तु का पुनः प्रस्तुतिकरण (Presentation of further Contents)

1-4-1-भारतीय राजनीति में क्षेत्रवाद (Regionalism in India's politics):-

भारत एक प्रजातान्त्रिक देश है । प्रजातान्त्रिक व्यवस्था में जनता द्वारा जनता के कल्याण के लिए एवं जनता द्वारा शासन किया जाता है । प्रजातान्त्रिक शासन प्रणाली में सभी नागरिकों को यह अधिकार होता है किए उनकी आवाज को सुना जाए चाहे वे किसी भी धर्म, जाति, लिंग या क्षेत्र के हों ।

भारत में संधीय शासन प्रणाली अपनाई गई है । संघीय शासन प्रणाली में नीतियाँ एवं कार्यक्रम राष्ट्रीय हितों को ध्यान में रखकर बनाए जाते हैं जिसके कारण क्षेत्रीय समस्याएं या तो उपेक्षित हो जाती हैं या उन पर कम ध्यान दिया जाता है । ऐसी परिस्थिति में उन क्षेत्रीय समस्याओं या मुद्दों को आवाज देने और उन पर राष्ट्र का ध्यान आकर्षित करने के लिए क्षेत्रीय दलों का उदय होता है

1-4-2-क्षेत्रवाद की परिभाषा और अर्थ (Meaning and Definition of Regionalism): -

क्षेत्रीयता या क्षेत्रवाद एक राजनीतिक विचारधारा व समस्या है. जो राष्ट्रीय एकता के विरुद्ध स्थानीय हितों को सर्वोपरि रखती हैं। स्थानीय निवासियों द्वारा संघ या राज्य की तुलना में किसी क्षेत्र विशेष या प्रांत से लगाव व उनकी प्रोन्नति के प्रयास क्षेत्रवाद की श्रेणी में आते हैं। क्षेत्रवाद का उद्देश्य हैं। अपने संकीर्ण क्षेत्रीय स्वार्थों की पूर्ति. यह ऐसी प्रवृत्ति है जिसमें क्षेत्र विशेष के लोग आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक शक्तियों की अन्य से अधिक मांग करते हैं।

1-4-3-क्षेत्रवाद के कारण (Causes of Regionalism)

क्षेत्रवाद के कारण निम्नलिखित हैः-

- प्रकृति प्रदत्त भिन्नताएँ व असमानताएं
- प्रशासन द्वारा संसाधनों के समान वितरण का अभाव या प्रशासनिक भेदभाव.
- केन्द्रीय निवेश व विकास सम्बन्धी भिन्नता
- ऐतिहासिक एवं राजनीतिक कारण
- सांस्कृतिक विविधताएं
- भाषाई विविधता से क्षेत्रवाद की भावना को बल
- संकीर्ण क्षेत्रीय आकांक्षाएं
- नए राज्यों की मांग
- क्षेत्रीय राजनीति एवं राजनीतिक दलों का प्राबल्य
- भूमि पुत्र की अवधारणा
- स्वयंभू नेताओं का उदय
- राष्ट्रीय कानूनों व आदेशों को चुनौती- अराजकता की स्थिति का पनपना

- अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में देश की साख खराब होना- आंतरिक क्षेत्रीय समस्याओं का हमारी अंतर्राष्ट्रीय छवि को खराब करता हैं. कभी मानवाधिकार के नाम पर तो कभी लोकतांत्रिक मूल्यों के अनुरक्षण के नाम पर अन्य राष्ट्र हमारी क्षेत्रवाद के आधार पर उठ रही मांगों की आड़ में अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर आलोचनाएं करते हैं.

1-4-4-क्षेत्रवाद की समस्या का समाधान (Resolution of Problem of Regionalism): -

समस्या के समाधान का उपाय उसके कारणों में निहित होता है. क्षेत्रवाद पनपने के कारणों को समाप्त करने से ही इस समस्या से छुटकारा पाया जा सकता हैं. कुछ उपाय जिनसे हम क्षेत्रवाद की समस्या से राहत पा सकते हैं।

I. संतुलित राष्ट्रीय नीति निर्माणद्द केंद्र सरकार का यह दायित्व बनता है कि वह सभी क्षेत्रों के समान विकास हेतु नीति निर्माण के समय राजनीतिक भेदभाव किये बिना संतुलित व समदर्शी नीति निर्माण करे. छोटे व संसाधनों की दृष्टि से अपेक्षाकृत कमजोर क्षेत्रोंध् राज्यों के विकास को भी समान प्राथमिकता दे तो धीरे धीरे वहां के निवासियों में विश्वास पैदा होता जाएगा व क्षेत्रवाद का उग्र स्वरूप शांत होगा।

II. राज्यों में स्थाई आधारभूत ढाँचागत विकासद्द क्षेत्रीय भिन्नताओं में कमी लाने के लिए पिछड़े व अविकसित क्षेत्रों में सिंचाई, बिजली, यातायात व संचार के आधारभूत साधनों के विकास को प्राथमिकता देनी होगी, जिसके दूरगामी सकारात्मक परिणाम सामने आयेंगे।

III. विकास के विशेष कार्यक्रमों का परियोजनाओं के रूप में प्रारम्भ किया जानाद्द यह प्रक्रिया सरकार ने प्रारम्भ कर भी दी हैं. सूखा संभाव्य क्षेत्र कार्यक्रम क्च्।च्मरु विकास कार्यक्रम क्क्च् पहाड़ी क्षेत्र विकास कार्यक्रम ।।क्च्जनजाति क्षेत्र विकास कार्यक्रम ज्।क्च्विशेष राज्य का दर्जा दिया जाना आदि से क्षेत्रीय असंतुलन कम किया जा सकता हैं।

IV. प्रशासनिक दृष्टि से छोटे राज्यों का गठनद्द छोटे छोटे राज्यों से प्रांतीय सरकारों द्वारा स्थानीय क्षेत्र विकास कार्यक्रम सफलतापूर्वक चलाए जा रहे हैं. केन्द्रीय करों के वितरण में ही हिस्सेदारी बढ़ती हैं.।

V. सांस्कृतिक भिन्नता को एकीकरण की ताकत बनानाद्द दूरदर्शन, रेडियो, समाचार पत्रों व अन्य संप्रेषण माध्यमों द्वारा भिन्नता को ही ताकत के रूप में उभरना हमारी पहल हो. संस्कृतियों की पहचान व प्रतिष्ठा देना व उन्हें एक दूसरे के साथ साहचर्य भाव से जोड़ना एकीकरण का माध्यम हो सकती हैं. ।

VI. भाषायी विविधता का सम्मान हैं हमारा संविधान भी इन्हें मान्यता देकर विविधता को स्वीकार कर चुका हैं. हमें सभी प्रांतों को भाषाओं को परस्पर सम्मान देना होगा. अनुवाद का दायरा बढ़ाना होगा. विद्यालय पाठ्यक्रम में इन्हें समुचित स्थान देना होगा. प्रजातन्त्रिक शासन प्रणाली में क्षेत्रीय दलों की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है क्योंकि ये न केवल क्षेत्रीय समस्याएँ या मुद्दे जो उपेक्षित हैं कि तरफ देश का ध्यान आकर्षित करती हैं बल्कि उसके निवारण के लिए प्रयासरत है।

1-4-5-धर्म और भारतीय राजनीति (Religion and Indian Politics)

धर्म किसी के आंतरिक विश्वास का विषय है। धर्म मनुष्य के जीवन के सभी पहलुओं को प्रभावित करता है। धर्म सामाजिक जीवन की नींव है। देश के कानूनों के द्वारा धार्मिक परंपराओं और मान्यताओं को प्रमुखता दी जाती है।अतीत में, धर्म शासन का आधार रहा है। हर देश पर धर्म का गहरा प्रभाव है। आधुनिक युग में भी, धर्म का प्रभाव नागरिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में देखा जा सकता है। भारत में धर्म का भी गहरा और व्यापक प्रभाव रहा है। भारत एक बहु-धार्मिक देश है। हिंदू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, जैन, पारसी और अन्य धर्मों के लोग यहां रहते हैं। हिंदुओं की आबादी

82% से अधिक है। बड़ी संख्या में हिंदुओं के बावजूद, भारत को एक धर्मनिरपेक्ष राज्य घोषित किया गया है। धार्मिक सहिष्णुता और धर्म भारतीय राज्य व्यवस्था की आधारशिला हैं।

1-4-5-1-भारतीय संविधान में धर्मनिरपेक्षता को दिए गए प्रावधान: - (Provisions given to secularism in the Indian Constitution): -

एक धर्मनिरपेक्ष राज्य की स्थापना भारतीय संविधान की एक प्रमुख विशेषता है। ब्रिटिश सरकार ने भारत पर आराम से शासन करने के लिए सांप्रदायिकता की नीति अपनाई। इस समस्या को हल करने के लिए, संविधान के निर्माताओं ने भारत को एक धर्मनिरपेक्ष राज्य बनाने की मांग की। जिस प्रकार भारतीय संविधान की संरचना संघवाद शब्द के बिना संघीय है, भारत में धर्मनिरपेक्षता शब्द धर्मनिरपेक्षता के उपयोग के बिना शुरू की गई थी।एक धर्मनिरपेक्ष राज्य घोषित किया गया था। स्मिथ के शब्दों में, “भारतीय लोकतंत्र के भविष्य के लिए एक धर्मनिरपेक्ष राज्य की अवधारणा महत्वपूर्ण है।” यह धारणा आधुनिक उदार लोकतंत्र के एक मौलिक और अभिन्न तत्व के रूप में रह सकती है या गिर सकती है।

I. प्रस्तावना में धर्मनिरपेक्ष शब्द का प्रयोग: 1976 में, 42 वें संशोधन ने प्रस्तावना में “धर्मनिरपेक्ष” शब्द को अंकित किया और भारत को धर्मनिरपेक्ष राज्य घोषित किया। प्रस्तावना में धर्मनिरपेक्ष शब्द को शामिल करने का मतलब है कि हर सरकार धर्मनिरपेक्ष राजनीति का अनुसरण करेगी।
II. संविधान की प्रस्तावना में यह भी कहा गया है कि संविधान का उद्देश्य भारत के सभी लोगों के लिए न्याय, स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे की भावना को बढ़ावा देना है। भारत का संविधान किसी एक वर्ग, धर्म या समूह के विकास के लिए नहीं है।

III. भारत में राज्य का कोई धर्म नहीं है, जबकि इस्लाम पाकिस्तान में राज्य धर्म है। यद्यपि भारत के विभाजन का मुख्य आधार धर्म था और भारत में हिंदू बहुसंख्यक हैं, हिंदू धर्म भारत का धर्म नहीं है।

IV. राज्य किसी भी धर्म को कोई सुरक्षा प्रदान नहीं करता है और ना ही कानून धर्म के आधार पर बनाए जाते हैं। धर्म और राज्य दोनों अलग-अलग हैं। धर्म एक व्यक्तिगत मामला है जबकि राज्य सार्वजनिक है।

V. संविधान भारतीयों के लिए सर्वोच्च कानून है लेकिन यह धर्म पर आधारित नहीं है। पाकिस्तान में, कानूनों और नीतियों का निर्माण इस्लाम के सिद्धांतों के अनुसार किया जाता है और उच्च पद केवल उन लोगों को प्राप्त होते हैं जो इस्लाम को मानते हैं।

VI. राज्य का कोई धर्म नहीं है, लेकिन राज्य की नजर में सभी धर्म एक समान हैं। राज्य किसी विशेष धर्म के विकास को प्रोत्साहित नहीं करता है और न ही यह किसी भी धर्म में हस्तक्षेप करता है। राज्य धर्म के मामलों में धर्मनिरपेक्षता की नीति अपनाता है।

VII. संविधान के तीसरे भाग में धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार में मौलिक अधिकार का वर्णन किया गया है। अनुच्छेद 25 के अनुसार, भारत के सभी नागरिकों को किसी भी धर्मों को अपनाने की स्वतंत्रता है। प्रत्येक व्यक्ति को धर्म में विश्वास करने, धर्म को अपनाने और प्रचार करने का अधिकार प्राप्त है। धार्मिक स्वतंत्रता में यह अधिकार केवल भारतीयों को ही नहीं बल्कि विदेशियों को भी दिया गया है। इसलिए, धर्म की स्वतंत्रता के संबंध में भारतीय नागरिकों और विदेशियों के बीच कोई अंतर नहीं किया गया है, लेकिन कानून सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता और स्वास्थ्य के मद्देनजर किसी व्यक्ति की धार्मिक स्वतंत्रता को प्रतिबंधित कर सकता है।

VIII. अनुच्छेद 26 के अनुसार, सभी धर्मों को दान के माध्यम से धन एकत्र करके संस्थानों की स्थापना करने का अधिकार प्राप्त है। इसके अलावा, सभी धर्मों के लोगों को अपने धार्मिक मामलों का प्रबंधन करने और चल और अचल संपत्ति हासिल करने का अधिकार है।

IX. संविधान का तीसरा भाग नागरिकों को समानता का अधिकार देता है, जिसके तहत अनुच्छेद 14 कहता है कि भारत के क्षेत्र में कोई भी व्यक्ति कानून के समक्ष समानता या राज्य द्वारा कानून के समान संरक्षण से वंचित नहीं होगा।

X. अनुच्छेद 29 और 30 के तहत नागरिकों को विशेष रूप से अल्पसंख्यकों को कुछ सांस्कृतिक और शैक्षिक अधिकार प्रदान करते हैं। भारत के किसी भी हिस्से या आबादी के किसी भी हिस्से में रहने वाले नागरिकों का एक वर्ग, जिसकी अपनी भाषा, लिपि और संस्कृति है, उनकी रक्षा करने का अधिकार है।सभी अल्पसंख्यकों, चाहे वे धार्मिक हों या भाषाई, को अपनी पसंद के शिक्षण संस्थानों को स्थापित करने और प्रबंधित करने का अधिकार है। सरकार शिक्षण संस्थानों को अनुदान देते समय धर्म या भाषा के आधार पर भेदभाव नहीं करेगी।किसी भी नागरिक को राज्य की सहायता से या उसके द्वारा चलाए जा रहे शैक्षणिक संस्थान में प्रवेश धर्म, जाति, पंथ या इनमें से किसी के आधार पर अस्वीकार नहीं किया जा सकता है।

XI. संविधान के अनुच्छेद 16 के अनुसार, सभी नागरिकों को राज्यों में सरकारी नौकरियों या नियुक्तियों में समान अवसर प्रदान किए गए हैं। सरकारी नौकरियों या नियुक्तियों में धर्म, मूल, वंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान आदि के आधार पर कोई भेदभाव नहीं होगा लेकिन सरकार पिछड़ी जातियों, अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए सीटें आरक्षित कर सकती है।

XII. अनुच्छेद 27 के अनुसार, किसी भी व्यक्ति को किसी भी कर का भुगतान करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है जो किसी विशेष धर्म के विकास और संचालन के लिए या किसी विशेष वर्ग या धार्मिक संप्रदाय के उत्थान के लिए खर्च किया जाना है।

XIII. संविधान के अनुच्छेद 28 के अनुसार, सार्वजनिक शिक्षण संस्थानों में धार्मिक शिक्षा नहीं दी जा सकती है। सरकारी स्कूलों और कॉलेजों में छात्रों को किसी भी धर्म में पढ़ाया या प्रचारित नहीं किया जा सकता है। इस तरह सरकारी शिक्षण संस्थानों को धर्म से दूर रखा गया है। लेकिन धार्मिक शिक्षा उन संस्थानों को दी जा सकती है जो सरकार से अनुदान प्राप्त नहीं करते हैं, लेकिन पूरी तरह से निजी हैं।

XIV. सांप्रदायिक चुनावी प्रणाली को समाप्त कर दिया गया है और एक आम चुनावी प्रणाली प्रचलित हो गई है।सार्वजनिक वयस्क मताधिकार का अधिकार प्रदान किया गया है और किसी भी नागरिक को जन्म, धर्म, जाति, वंश, लिंग, आदि के आधार पर मतदान करने और चुनाव लड़ने के अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता है।

XV. अनुच्छेद 17 अस्पृश्यता को समाप्त करता है। किसी को भी अछूत मानने या उसके साथ सार्वजनिक स्थल, होटल, तालाब, कुएं, सिनेमा, पार्क और मनोरंजन क्षेत्र का उपयोग करने से रोकना एक आपराधिक अपराध है।

1-4-5-2-धर्म आधारित राजनीति का विकास (Development of religion-based politics)

भारत एक बहु-धार्मिक देश है। भारत में विभिन्न धर्मों के लोग रहते हैं। भारत में हिंदू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, पारसी आदि रहते हैं। हिंदुओं की आबादी 82.80% है तो भी भारत को हिंदू राज्य के बजाय धर्मनिरपेक्ष राज्य घोषित किया गया है। भारत में प्राचीन काल से ही धर्म और राजनीति का गहरा संबंध रहा है। राजा धर्म का पालन करते थे और राज पुरोहित राजा के धार्मिक गुरु थे जो राजा को

प्रशासक और अन्य महत्वपूर्ण मामलों पर सलाह देते थे। मुगल सम्राटों ने शासन के संबंध में इस्लाम के सिद्धांतों का पालन किया और इस्लाम का आधिकारिक संरक्षण था। ब्रिटिश शासन के दौरान धर्म ने 1857 के स्वतंत्रता संग्राम को प्रभावित किया। अंग्रेजों ने धर्म का लाभ उठाया और फूट डालो और राज करो की नीति अपनाई। ब्रिटिश शासन के दौरान, धर्म के नाम पर हिंदू और मुसलमानों के बीच कई दंगे हुए। 1947 में, भारत को मुख्य रूप से धर्म के आधार पर विभाजित किया गया था। स्वतंत्रता के बाद भी, भारत में धर्म राजनीति को प्रभावित करता है। हालाँकि संविधान के निर्माताओं ने भारत को एक धर्मनिरपेक्ष राज्य घोषित किया, लेकिन धर्म का राजनीति पर गहरा प्रभाव पड़ा है। भारत में धर्म आधारित राजनीति निम्न कारणों तेजी से विकसित हुई है:-

- **धार्मिक स्थानों का उपयोग राजनीतिक उद्देश्यों के लिए: -** धार्मिक स्थानों का उपयोग राजनीतिक उद्देश्यों के लिए किया जा रहा है। रजनीतिक दल सता के लिए अपने राजनीतिक सम्मेलन धार्मिक स्थानों पर आयोजित करता हैं ।
- **धर्म के आधार पर राजनीतिक दलों का अस्तित्व व उनका गठन:** राजनीतिक दल अक्सर राजनीतिक और आर्थिक कार्यक्रमों पर आधारित होते हैं। लेकिन भारत में कई राजनीतिक दल धर्म पर आधारित हैं। विभिन्न संप्रदायों ने अपने विशेष हितों की रक्षा के लिए राजनीतिक दलों का गठन किया है। राजनीतिक दल जैसे अकाली दल, मुस्लिम लीग, हिंदू महासभा, शिवसेना आदि धर्म पर आधारित हैं।संप्रदायवादी दल चुनाव के दौरान धर्म के नाम पर वोट मांगते हैं और चुनाव जीतने के बाद अपने संप्रदाय के लोगों के हितों की रक्षा करते हैं। धार्मिक भावनाओं को भड़काने के लिए धार्मिक नारे लगाए जाते हैं। धर्म पर आधारित राजनीतिक दल राष्ट्र निर्माण में ज्यादा योगदान नहीं देते हैं और राष्ट्र की मुख्यधारा से दूर रहते हैं। ऐसे राजनीतिक दल अपने धर्म के लोगों के हितों की रक्षा करते हैं और राष्ट्रहित की परवाह नहीं करते हैं।

- **धार्मिक दबाव समूहों की स्थापना:** भारत में कई धार्मिक संप्रदायों ने अपने विशेष हितों की रक्षा के लिए दबाव समूहों की स्थापना की है और धार्मिक दबाव समूहों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ रही ये दबाव समूह अपने संप्रदायों के हितों की रक्षा के लिए विभिन्न तरीकों से सरकारी नीति को प्रभावित करने का प्रयास करते हैं।
- **सांप्रदायिक दंगे में वृद्धि**: पिछले कुछ वर्षों में सांप्रदायिक दंगों में तेज़ी देखी गई है। देश के कई हिस्सों में, विशेष रूप से मेरठ, मुरादाबाद, दिल्ली, लखनऊ, कानपुर, कश्मीर आदि में, हिंदू-मुस्लिम दंगे हुए हैं। नवंबर 1984 में, सिखों को देश के कई हिस्सों में सांप्रदायिक हिंसा का शिकार होना पड़ा।
- **अलगाववाद का विकास**: धार्मिक भावना ने विभिन्न संप्रदायों में अलगाववादी प्रवृत्तियों को जन्म दिया है। जब किसी धर्म के लोगों को लगने लगता है कि उनके साथ भेदभाव किया जा रहा है या उनके हितों की रक्षा नहीं की जा रही है या उनके साथ न्याय नहीं किया जा रहा है, तो उस धर्म के लोगों ने खुद को राष्ट्र की मुख्यधारा से विभिन्न हुआ महसूस करने लगता है।
- **धार्मिक असहिष्णुता में वृद्धि:** संप्रदायकता के उदय से धार्मिक असहिष्णुता में भी वृद्धि हुई है। कुछ लोगों में धार्मिक कट्टरता बहुत ज्यादा ही व्याप्त हो गयी है। कभी-कभी एक छोटी सी घटना व्यापक हिंसा में बदल जाती है जो कई लोगों को मार देती है और करोड़ों रुपये की संपत्ति को नष्ट कर देती है।
- **राज्य द्वारा धार्मिक उत्सवों में भाग लेना:** भारत एक धर्मनिरपेक्ष राज्य है और एक धर्मनिरपेक्ष राज्य खुद को धार्मिक गतिविधियों से दूर रखता है, लेकिन भारत में नहीं। भारत सरकार और राज्य सरकारें अक्सर विभिन्न धार्मिक समारोहों में भाग लेती हैं और सभी धर्मों के लोगों को खुश करने की कोशिश करती हैं।इसने सांप्रदायिकता को बढ़ावा दिया है।

- **धार्मिक अल्पसंख्यकों को खुश करने की नीति:** भारत एक लोकतंत्रीय देश है। लोकतंत्र में, प्रत्येक राजनीतिक दल को समाज के विभिन्न वर्गों के समर्थन की आवश्यकता होती है। भारत में विभिन्न राजनीतिक दल अल्पसंख्यकों को विशेष रूप से सत्ता हासिल करने के लिए खुश करने में लगे हुए हैं ताकि उनके वोटों को हासिल किया जा सके।
- **धर्म और चुनाव:** भारत में चुनाव धर्म से बहुत प्रभावित हो रहे हैं। राजनीतिक दल धर्म के नाम पर वोट मांगने और वोट मांगने के लिए लोगों की धार्मिक भावनाओं को उकसाते हैं।
- **धर्म और मतदान का व्यवहार:** भारतीय मतदाता भी धर्म के प्रभाव में मतदान करते हैं। टिकट बांटते समय निर्वाचन क्षेत्र की संरचना को ध्यान में रखा जाता है और अक्सर टिकट उसी धर्म के व्यक्ति को दिया जाता है जिसके वोट उस निर्वाचन क्षेत्र में अधिक होते हैं।
- **धर्म का नीति निर्माण पर प्रभाव:** सांप्रदायिकता ने नीति-निर्माण को भी प्रभावित करना शुरू कर दिया है। नीति बनाते समय, सरकार इस बात का ध्यान रखती है कि वह किसी धर्म विशेष के लोगों पर प्रतिकूल प्रभाव न डाले।

1-4-5-3-राजनीति में धर्म के प्रभाव को रोकने के लिए सुझाव: Suggestions to stop the influence of religion in politics:

सांप्रदायिकता राष्ट्र की प्रगति और एकता के लिए एक गंभीर समस्या है। इसलिए, राष्ट्रीय एकता और समृद्धि के लिए, राजनीति में धर्म के बढ़ते प्रभाव को रोकना बहुत महत्वपूर्ण है। धर्म आधारित राजनीति के विकास को रोकने के लिए निम्नलिखित उपाय किए जाने चाहिए।

- **शिक्षा के माध्यम से:** धार्मिक भावनाओं को दूर करने और राजनीति में धर्म के बढ़ते प्रभाव को रोकने का सबसे अच्छा तरीका शिक्षा का प्रसार करना है। जैसे-जैसे शिक्षित लोगों की संख्या बढ़ेगी, वैसे-वैसे धर्म का प्रभाव भी कम होगा।

- **एक धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण का विकास: धर्म** पर आधारित राजनीति के विकास को रोकने के लिए, लोगों के बीच एक धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण विकसित करना आवश्यक है।
- **धर्म और राजनीति को अलग करना: धर्म**-आधारित राजनीति के विकास को रोकने के लिए धर्म और राजनीति को अलग करना आवश्यक है।
- **प्रसार के माध्यम से:** समाचार पत्रों, रेडियो और टेलीविजन के माध्यम से धर्मनिरपेक्षता का प्रसार धर्म और राजनीति के अलगाव पर जोर दे सकता है। प्रसार के माध्यम से भारत के सभी नागरिकों में समुदाय की भावना विकसित की जा सकती है।
- **धर्म के आधार पर राजनीतिक दलों पर प्रतिबंध:** सरकार को उन सभी राजनीतिक दलों पर प्रतिबंध लगाना चाहिए जो धर्म पर आधारित हैं।
- **सामाजिक और आर्थिक विकास:** धर्म पर आधारित राजनीति के विकास को रोकने के लिए लोगों का सामाजिक और आर्थिक विकास आवश्यक है। धार्मिक कट्टरपंथी लोगों के सामाजिक और आर्थिक पिछड़ेपन का फायदा उठाते हैं। इसलिए गरीबों के सामाजिक और आर्थिक विकास की आवश्यकता है।
- **राजनीतिक दलों के लिए आचार संहिता:** भारत में, सामान्य तौर पर, सभी राजनीतिक दल सांप्रदायिक घटनाओं का राजनीतिक लाभ उठाने की कोशिश करते हैं। इसलिए, चुनाव आयोग को राजनीतिक दलों के लिए आचार संहिता का पालन करने और कड़ाई से पालन करने की आवश्यकता है।
- **सुरक्षा बलों में सभी धर्मों का प्रतिनिधित्व: सुरक्षा** बल सांप्रदायिक दंगों को रोकने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसलिए यह अनिवार्य है कि सभी धर्मों और जातियों को सुरक्षा बलों में समान प्रतिनिधित्व दिया जाए। सुरक्षा बलों में जहां सभी धर्मों और जातियों का समान रूप से प्रतिनिधित्व

किया जाता है, वहां सहयोग की भावना होती है और एक-दूसरे के प्रति कोई गलत भावना नहीं होती है।

- **धार्मिक नेताओं द्वारा सकारात्मक भूमिका: धार्मिक** नेताओं को देश में शांति, प्रेम, सद्भाव, सहयोग, सहिष्णुता आदि का माहौल बनाए रखने में सकारात्मक भूमिका निभानी चाहिए। धार्मिक नेताओं को लोगों को सही मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करना चाहिए।
- **अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा करना:** सरकार को अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा के लिए विशेष कदम उठाने चाहिए और उनमें सुरक्षा की भावना पैदा करनी चाहिए।
- **सिद्धांतों की राजनीति का विकास:** धर्म पर आधारित राजनीति को रोकने के लिए, सिद्धांतों की राजनीति विकसित करना आवश्यक है। राजनीतिक दलों को अपने स्वयं के स्वार्थों के लिए अप्रत्याशित राजनीति और अप्रत्याशित समझौतों का अनुसरण करना चाहिए।
- **विशेष न्यायालयों की स्थापना:** सांप्रदायिकता फैलाने वालों को कड़ी सजा देने के लिए विशेष अदालतें स्थापित की जानी चाहिए। सामान्य अदालतों में बड़ी संख्या में मामलों के कारण, कभी-कभी मामलों को निपटाने में लंबा समय लगता है। इसलिए प्रभावी निर्णयों के लिए विशेष अदालतें स्थापित की जानी चाहिए।

1-5-स्वयं प्रगति जाँच (Check your progress)

i. हमारे संविधान में प्रारम्भ कितने वर्षों के लिए अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के आरक्षण सम्बन्धी प्रावधान रखे गए थे।
ii. जातीय आधार पर मण्डल आयोग की सिफारिशें कब लागू की गई।
iii. संविधान की आठवीं अनुसूची में कितनी भाषाएं शामिल की गई हैं।
iv. भारत सरकार द्वारा एक 'राज्य पुनर्गठन आयोग' की स्थापना कब की गई।

v. हमारे संविधान की प्रस्तावना में धर्मनिरपेक्ष शब्द का प्रयोग कब और कौनसे संशोधन के तहत किया गया है।

1-6-सारांश (Summary)

हमारा देश विविधताओं वाला देश है। यहाँ विभिन्न जाति ,धर्मों,भाषा के लोग रहते हैं। जब लोग अपनी भाषा ,धर्म,क्षेत्र,जाति को अन्यं से श्रेष्ठ मानने लगते हैं और अन्य को नीचा समझते है तो जातिवाद, भाषावाद ,क्षेत्रवादआदि समस्याओं का जन्म होता है।इनका प्रभाव भारतीय राजनीति पर भी पड़ता है और ये भारतीय लोकतंत्र के लिए घातक है भारतीय संविधान ने पथ, भाषा, जाति, लिंग आदि के आधार पर नागरिकों के साथ किसी भी तरह के भेदभाव को समाप्त करके देश में पथ -निरपेक्ष शासन लागू करने की स्पष्ट घोषणा कर रखी है, फिर भी भारतीय राजनीति जातिवाद से बुरी तरह प्रभावित है।भारत में धर्म राजनीति को प्रभावित करता है। हालाँकि संविधान के निर्माताओं ने भारत को एक धर्मनिरपेक्ष राज्य घोषित किया, लेकिन धर्म का राजनीति पर गहरा प्रभाव पड़ा है। भारत में धर्म आधारित राजनीति निम्न कारणों तेजी से विकसित हुई है क्षेत्रीयता भी एक राजनीतिक विचारधारा व समस्या है। जो राष्ट्रीय एकता के विरुद्ध स्थानीय हितों को सर्वोपरि रखती हैं। स्थानीय निवासियों द्वारा संघ या राज्य की तुलना में किसी क्षेत्र विशेष या प्रांत से लगाव व उनकी प्रोन्नति के प्रयास क्षेत्रवाद की श्रेणी में आते हैं। क्षेत्रवाद का उद्देश्य हैं। अपने संकीर्ण क्षेत्रीय स्वार्थों की पूर्ति. यह ऐसी प्रवृत्ति है जिसमें क्षेत्र विशेष के लोग आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक शक्तियों की अन्य से अधिक मांग करते हैं। भाषायी समस्या को लेकर उत्पन्न विवादों के परिणामस्वरूप देश का राजनीतिक वातावरण तो दूषित हुआ ही इसके साथ-साथ देश का जीवन भी अशान्त हो गया। इस तरह भाषायी प्रश्न एक राजनीतिक प्रश्न बन गया और कुछ स्वार्थी राजनीतिज्ञों एवं राजनीतिक दलों ने भाषायी आधार पर

जनता को उत्तेजित करने का कार्य किया। ऐसी स्थिति में कभी-कभी ऐसा भी आभास होने लगा कि कहीं भाषायी प्रश्न हमारी राष्ट्रीय एकता को ही खण्डित न कर दे।

1-7-सूचक शब्द (Key Words)

i. **धर्मनिरपेक्षता:** धर्मनिरपेक्षता का अर्थ है कि राज्य राजनीति या किसी गैर-धार्मिक मामले से धर्म को दूर रखे तथा सरकार धर्म के आधार पर किसी से भी कोई भेदभाव न करे।

ii. **मंडल आयोग:** मंडल आयोग का गठन वर्ष 1979 में "सामाजिक या शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्ग की पहचान" के उद्देश्य से किया गया था। इस आयोग का नेतृत्व भारतीय सांसद बी.पी. मंडल द्वारा किया गया था। जातिगत भेदभाव को दूर करने के लिये आरक्षण एवं कोटा निर्धारण की व्यवस्था की गई।

iii. **अल्पसंख्यक:** ऐसा समुदाय जिसका सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक रूप से कोई प्रभाव न हो और जिसकी आबादी नगण्य हो, उसे अल्पसंख्यक कहा जाएगा। अंतर्राष्ट्रीय कानून के तहत अल्पसंख्यक ऐसे समूह हैं जिनके पास विशिष्ट और स्थिर जातीय (Stable Ethnic), धार्मिक और भाषायी विशेषताएँ हैं।

iv. **राज्य पुनर्गठन आयोग**: भारत के स्वतंत्र होने के बाद भारत सरकार ने अंग्रेजी राज के दिनों के 'राज्यों' को भाषायी आधार पर पुनर्गठित करने के लिये राज्य पुनर्गठन आयोग की स्थापना 1953 में की। 1950 के दशक में बने पहले राज्य पुनर्गठन आयोग की सिफारिश में राज्यों के बंटवारे का आधार भाषाई था।

1-8-स्वयं समीक्षा हेतु प्रश्न (Self-Assessment Questions)

i. जातिवाद के अर्थ व कारणों विस्तार से वर्णन कीजिए।

ii. क्षेत्रवाद का अर्थ, क्षेत्रवाद के कारण विस्तार से वर्णन कीजिए।

iii. भारतीय राजनीति में भाषा की क्या भूमिका है विस्तार से वर्णन कीजिए।

iv. भाषा तथा क्षेत्रवाद की समस्या का समाधान किस प्रकार किया जा सकता है व्याख्या कीजिए।

v. धर्म और भारतीय राजनीति के मध्य संबंधों का वर्णन कीजिए।

1-9-उतर-स्वयं प्रगति जाँच (Answer to check your progress)

i. केवल 10 वर्षों के लिए

ii. सन् 1990 में

iii. 22 भाषाएं

iv. सन् 1953 में

v. 1976 में, 42 वें संशोधन

1-10. संदर्भ ग्रन्थ/निर्देशित पुस्तके (References/Suggested Readings)

I. जैन, पुखराज, राजनीति विज्ञान, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।

II. आर.के. जैन, कला जैन, लक्ष्मीकांत त्रिपाठी, राजनीति विज्ञान, आरोही पब्लिकेशन्स, दिल्ली।

III. डॉ. सुरेश कुमार, सोमनाथ वर्मा, डॉ. गुलशन राय, जे. बी. डी प्रिंटिंग प्रेस, जालंधर ।

Subject: राजनीति विज्ञान	
Course Code: POLS.103	Author: Dr. Parveen Sharma
Lesson No.: 8	Vetter: Updated by:
अध्याय की संरचना-8 आरक्षण की राजनीति, उभरती प्रवृत्तियाँ और भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के समक्ष चुनौतियाँ **Politics of Reservation, Emerging Trends and Challenges before the Indian Political System**	

1-1-अधिगम के उद्देशय (Learning Objectives)

1-2-परिचय (Introduction)

1-3-विषय वास्तु का प्रस्तुतिकरण (Presentation of Contents)

1-3-1--आरक्षण का अर्थ (Meaning of Coalition Politics)

1-3-2- भारतीय संविधान में दलितों के कल्याण एवं आरक्षण सम्बन्धी प्रावधान (Provision Regarding Welfare and Reservation of Dalits in Indian Constitution):

1-3-3-आरक्षण की राजनीति (Politics of reservation)

1-3-4-आरक्षण की नीति के पक्ष एवं विपक्ष में तर्क (Arguments in favour and against the Policy of Reservation)

1-3-5- आरक्षण नीति का भारतीय राजनीति पर प्रभाव (Impact of Reservation Policy on Indian Politics)

1-4- विषय वास्तु का पुन: प्रस्तुतिकरण (Presentation of further Contents)

1-4-1-भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के सामने उभरती प्रवृत्तियाँ और चुनौतियाँ

(Emerging Trends and Challenges before the Indian Political System)

1-5-स्वयं प्रगति जाँच (Check your progress)

1-6-सारांश (Summary)

1-7-सूचक शब्द (Key Words)

1-8-स्वयं समीक्षा हेतु प्रश्न (Self- Assessment Questions)

1-9-उतर-स्वयं प्रगति जाँच (Answer to check your progress)

1-10. संदर्भ ग्रन्थ/निर्देशित पुस्तके (References / Suggested Readings)

1-1-अधिगम के उद्देशय (Learning Objectives)

- विद्यार्थियों को आरक्षण व आरक्षण की राजनीति से अवगत करवाना।
- विद्यार्थियों को भारतीय राजनीतिक व्यवस्था की उभरती प्रवृत्तियों एवं चुनौतियों से अवगत करवाना।
- विद्यार्थियों को भारतीय संविधान में दलितों के कल्याण एवं आरक्षण सम्बन्धी प्रावधान का ज्ञान करवाना।

1-2-परिचय (Introduction)

भारतीय समाज में समाज सुधारकों द्वारा समाज सुधार एवं दलितोद्धार के लिए अनेक प्रयास विभिन्न आन्दोलनों के माध्यम से किए गए, परन्तु उनकी अत्यन्त शोचनीय एवं दयनीय दरिद्रावस्था

स्वातंत्र्योत्तर काल में भी सुधर नहीं सकी। स्वतन्त्रता के बाद भी निम्न एवं पिछड़ी जातियों के लोग नरकीय जीवन व्यतीत करने पर विवश रहे। इसलिए भारतीय संविधान निर्माताओं के लिए यह प्रश्न चुनौतीपूर्ण रहा कि किस प्रकार समाज के दलित, शोषित एवं दीर्घकाल तक उपेक्षित रहने वाले वर्ग को ऊपर उठाया जाए। इसलिए उनके लिए एक रास्ता सामाजिक-आर्थिक स्तर पर कल्याणकारी प्रावधान लागू करने के साथ-साथ सरकारी सेवाओं एवं राजनीतिक स्तर पर आरक्षण की व्यवस्था को लागू करना था, ताकि भारतीय लोकतन्त्र में सामाजिक न्याय एवं समानता के आदर्श को व्यावहारिक रूप दिया जा सके। लेकिन कालान्तर में दलित एवं पिछड़े वर्गों के हितों के लिए संवैधानिक प्रावधानों के अनुरूप किए गए सक्रिय प्रयासों को सत्ता पक्ष ने अपने राजनीतिक स्वार्थों की पूर्ति हेतु प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया जिसके परिणामस्वरूप दलित एवं पिछड़े वर्गों को अपने हितों की रक्षा हेतु निरन्तर संघर्षरत रहना पड़ा। इसी संघर्ष से उत्पन्न वर्गीय चेतना ने एक तरह से दलित राजनीति को भारतीय राजनीति में अहम् बना दिया।

1-3-विषय वास्तु का प्रस्तुतिकरण (Presentation of Contents)

1-3-2-भारतीय संविधान में दलितों के कल्याण एवं आरक्षण सम्बन्धी प्रावधान (Provision Regarding Welfare and Reservation of Dalits in Indian Constitution): -

भारतीय संविधान में भारतीय समाज के कमजोर वर्गों, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों एवं पिछड़े वर्गों के कल्याण एवं उत्थान हेतु विशेष सुविधाएँ प्रदान करने हेतु आरक्षण सम्बन्धी विशेष प्रावधान किए गए हैं, ताकि शताब्दियों से शोषित एवं पिछड़े वर्गों का सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक एवं राजनीतिक विकास किया जा सके।

- अनुच्छेद **15 (Article 15)** के अनुसार, "राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्म-स्थान एवं इनमें से किसी के भी आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा।

- अनुच्छेद **16** के अनुसार, "राज्याधीन नौकरियों या पदों पर नियुक्ति के सम्बन्ध में समस्त नागरिकों के लिए अवसर की समानता होगी।
- अनुच्छेद **16 (4)** के अनुसार, "संविधान के अनुच्छेद **16** की धारा **4** के अन्तर्गत यह व्यवस्था की है कि किसी ऐसी पिछड़ी श्रेणी या वर्ग के लिए राज्य नौकरियों में आरक्षण रख सकता है जिस वर्ग को सरकारी सेवाओं में उचित प्रतिनिधित्व प्राप्त न हुआ हो। "
- अनुच्छेद **17** के अनुसार, "छुजादूत अथवा अस्पृश्यता का अन्त कर दिया गया है तथा इसका किसी भी म में विवरण निषिद्ध किया गया है। अस्पृश्यता से उत्पन्न किसी नियोग्यता को लागू करना अपराध होगा, जो कानून के अनुसार दण्डनी होगा।"
- अनुच्छेद **19** के अनुसार, "अस्पृश्यों की व्यावसायिक निर्योग्यता को समाप्त कर दिया गया है और इ जातियों के व्यक्ति अपनी इच्छानुसार कोई भी व्यवसाय चुनने को स्वतन्त्र हैं।"
- अनुच्छेद **25** के अनुसार, "हिन्दुओं के सार्वजनिक धार्मिक स्थल सभी जातियों के लिए खोल दिए गए हैं।
- अनुच्छेद **29** के अनुसार, "राज्यनिधि द्वारा पोषित एवं राज्यनिधि से सहायता पाने वाली किसी भी शिक्षण संस्था में प्रवेश से किसी भी नागरिक को केवल धर्म, मूल वंश, जाति, भाषा के आधार पर वंचित नहीं किया जा सकता हैं।"
- अनुच्छेद **38** के अनुसार, "राज्य ऐसी सामाजिक व्यवस्था का भरसक कार्य साधन रूप से स्थापना और विवरण करके लोक कल्याण की उन्नति का प्रयास करेगा, जिससे सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय राष्ट्रीय जीवन की सभी आवश्यकताओं को अनुप्रेषित करे।"

- अनुच्छेद **46** के अनुसार, "राज्य जनता के कमजोर वर्गों विशेषतः **SC** एवं **ST** के शैक्षिक एवं आर्थिक हितों की विशेष सावधानी से उन्नति करेगा एवं सामाजिक अन्याय एवं सभी प्रकार के शोषण से उनका संरक्षण करेगा।"
- **73**वें संवैधानिक संशोधन के अनुसार, "दिसम्बर, **1992** में संसद द्वारा पास किए गए **73**वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा पंचायती राज की संस्थाओं में अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों तथा स्त्रियों के लिए स्थान आरक्षित रखने की संवैधानिक व्यवस्था की गई है।"
- **74**वें संवैधानिक संशोधन के अनुसार, "दिसम्बर, **1992** में संसद द्वारा पास किए गए **74**वें संवैधानिक संशोधन द्वारा शहरी स्थानीय संस्थाओं में भी अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों तथा स्त्रियों के लिए स्थान आरक्षित रखने की व्यवस्था की गई है।"
- **93**वाँ संवैधानिक संशोधन संसद द्वारा सन् **2005** में **95**वीं संवैधानिक संशोधन पारित किया गया जो **20** जनवरी, **2006** से लागू हुआ। इस संशोधन द्वारा संविधान में यह प्रावधान किया गया है कि केन्द्र सरकार सामाजिक एवं शैक्षिक रूप से **SC** व **ST** तथा पिछड़े वर्गों के लिए सरकारी एवं निजी शैक्षिक संस्थाओं में प्रवेश लेने सम्बन्धी विशेष प्रावधान कर सकती है। ऐसे प्रावधान राज्य से सहायता प्राप्त करने वाली और न सहायता प्राप्त करने वाली संस्थाओं के लिए भी किए गए हैं।
- अनुच्छेद **330 (Article 330)** के अनुसार, "संविधान के अनुच्छेद **350** में यह व्यवस्था है कि अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए लोकसभा में स्थान आरक्षित रखे जाएँगे। प्रत्येक राज्य में इन वर्गों के लिए आरक्षित स्थानों की संख्या इन वर्गों से सम्बन्धित राज्य की जनसंख्या के अनुपात से निश्चित की जाएगी।"
- अनुच्छेद **332** के अनुसार, संविधान में यह व्यवस्था है कि अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए राज्यों की विधानसभाओं में भी स्थान आरक्षित रखना आवश्यक है। प्रत्येक राज्य की

विधानसभा में इन वर्गों के लिए आरक्षित स्थानों की संख्या, उस राज्य में इन वर्गों की अपनी-अपनी जनसंख्या और उस राज्य की कुल जनसंख्या के अनुपात से निश्चित की जाएगी।"

- अनुच्छेद **335** के अनुसार, " यह व्यवस्था की गई है कि प्रशासन की योग्यता को कायम रखते हुए केन्द्र और राज्य सरकारों की सेवाओं के पदों पर नियुक्तियाँ करते समय अनुसूचित जातियों व जनजातियों के विशेष प्रावधानों को ध्यान में रखा जाएगा।" इस सम्बन्ध में सर्वोच्च न्यायालय के दिए निर्णय के अनुसार यह भी स्पष्ट है कि कुल उपलब्ध वर्गों में से **505**से भी अधिक पद या स्थान आरक्षित नहीं हो सकते।

1-3-3-आरक्षण की राजनीति (Politics of reservation)

भारत में आरक्षण की शुरूआत समाज के पिछड़े वर्गों को सामाजिक और आर्थिक रूप से ऊपर उठाने के लिए की गई थी। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में, आरक्षण का यह उद्देश्य विकृत हो चला है। वर्तमान में आरक्षण के विस्तार में जाति की राजनीति साफ तौर पर दिखाई देती है। जाति के अनुपात में आरक्षण दिए जाने की मांग जोर पकड़ रही है। आरक्षण पर जोर देकर लड़े जाने वाले चुनावों से स्पष्ट है कि ये केवल जाति की राजनीति के माध्यम से जीत को लक्ष्य बना कर चल रहे हैं। निचले और वंचित तबकों को बराबरी पर लाने के उद्देश्य से आरक्षण की व्यवस्था की गई थी, लेकिन पिछले वर्षों में यह व्यवस्था राजनीतिक तुष्टीकरण का जरिया बन गई। आरक्षण की वर्तमान व्यवस्था शुरू से ही विवाद के केंद्र में रही है। विरोध आरक्षण का नहीं है, अपितु आरक्षण की पात्रता को निर्धारित करने वाले मानकों को लेकर के है। आरक्षण जोकि सामाजिक-आर्थिक विषमता वाले समाज में समानता , समरसता और सामाजिक-न्याय की स्थापना हेतु आवशक साधन के रूप में अपनाया गया था , आज सामाजिक विद्वेष की वजह बन चुका है।

वर्तमान में आरक्षण सुविधावादी राजनीति का जरिया बन गया है। यही कारण है कि आरक्षण की समीक्षा की मांग उठते ही कुछ नेता इसे सीधे पिछड़ों के खिलाफ अगड़ी जातियों के षड्यंत्र के रूप में प्रचारित कर पिछड़ी जातियों के एकमात्र संरक्षक बनने का दावा करने लगते हैं। उन्हें पता है कि आरक्षण के सहारे जातियों को बहुत आसानी से वोटबैंक में तब्दील किया जा सकता है। जातियों के राजनीतिकरण का ही यह परिणाम है कि मण्डल आयोग के समय जहां देश में 2052 पिछड़ी जातियाँ थीं वहीं 1994 में इनकी संख्या बढ़कर 3700 हो गई । सत्ता के केंद्र तक पहुँचने के लिए आरक्षण राजनीतिक हथियार है। आज कोई भी पार्टी वोट-बैंक खिसकने के डर से आरक्षण के मुद्दे पर चर्चा तक नहीं करना चाहती । यथास्थितिवाद की समर्थक ये पार्टियां व्यवस्था के उन दोषों को भी दूर नहीं करना चाहतीं जिनके कारण आरक्षण का लाभ उठा रहीं जातियों के ही सभी लोगों को आरक्षण का पूरा फायदा नहीं मिल पा रहा। आज आवश्यकता है कि आरक्षण व्यवस्था को सकारात्मक दृष्टि से देखा जाए और उसमे सकारात्मक बदलाव लाएँ जाएँ ताकि यह वंचितों को समाज की मुख्य धारा से जोड़ने में महती भूमिका अदा कर सके।

1-3-4-आरक्षण की नीति के पक्ष एवं विपक्ष में तर्क (Arguments in favour and against the Policy of Reservation): -

भारत में प्रारम्भ से ही समाज के विभिन्न वर्गों हेत किए गए आरक्षण सम्बन्धी प्रावधानों को लेकर एक विवाद रहा है कछ लोग आवश्यक मानते हैं तो कछ लोग इस व्यवस्था के विरोधी हैं। समर्थक इसके पक्ष में निम्नलिखित तर्क देते हैं

- आरक्षण की नीति के कारण ही समाज के सदियों से शोषित एवं पिछडे वर्ग को आर्थिक विकास का अवसर उपलब्ध हुआ है।

- आरक्षण की नीति के कारण ही अस्पृश्यता एवं अमानवीय व्यवहार का शिकार हए इस वर्ग की सामाजिक प्रतिष्ठा में सुधार हुआ है।
- आरक्षण की नीति के कारण ही आज कमजोर वर्ग के अनेक लोग उच्च प्रशासनिक पदों पर कार्यरत हैं ।
- आरक्षण की नीति के परिणामस्वरूप ही संविधान में निहित सामाजिक एवं आर्थिक न्याय संबंधी उद्देश्यों को नीतियों के रूप में क्रियान्वित करना संभव हआ है।
- आरक्षण की नीति के परिणामस्वरूप ही सार्वजनिक सेवाओं में कमजोर एवं पिछड़े वर्ग के लोगों का प्रतिनिधित्व बढ़ा है जिसके कारण उनकी आर्थिक स्थिति में भी परिवर्तन आया है।
- आरक्षण की नीति के परिणामस्वरूप कमजोर व पिछड़े वर्ग के लोगों में राजनीतिक चेतना का भी संचार हआ है जिसके कारण वे अपने राजनीतिक अधिकारों एवं कर्त्तव्यों के प्रति पहले से अधिक जागरूक हुए हैं।
- आरक्षण की नीति के कारण ही उच्च वर्गों के साथ-साथ निम्न एवं कमजोर वर्गों को भी शासन-प्रणाली एवं राजनीतिक व्यवस्था में भागीदारी का अवसर प्राप्त हआ है।

कुछ लोगों द्वारा आरक्षण कीनीति के विपक्ष में निम्नलिखित तर्क दिए जाते हैं

- आरक्षण की नीति के परिणामस्वरूप भारतीय समाज एवं राजनीति में जातिवाद को बहुत अधिक बढ़ावा मिला है ।
- आरक्षण की नीति का लाभ इस कमजोर वर्ग का केवल एक छोटा-सा भाग ही उठा पाया है जबकि इस वर्ग का अधिकांश माग आज भी दयनीय जीवन व्यतीत कर रहा है।
- आरक्षण की नीति के परिणामस्वरूप यह कमजोर एवं पिछड़ा वर्ग सरकारी सुविधाओं पर ही अत्यधिक निर्भर है।

- आरक्षण की नीति को कुछ लोग संविधान द्वारा दिए गए समानता के अधिकार का उल्लंघन मानते हैं ।
- आरक्षण की नीति के अनुसार कमजोर वर्गों के सामान्य उम्मीदवार उच्च वर्गों के प्रतिभाशाली उम्मीदवारों की अपेक्षा चयनित कर लिए जाते हैं। जिसके कारण समाज की उच्च श्रेणियों में इनके प्रति ईर्ष्या की भावना बढ़ी है जिससे समाज में सामाजिक सद्भाव को भी धक्का पहुँचा है।
- आरक्षण की नीति के परिणामस्वरूप आज भारतीय राजनीति में भी आरक्षण की नीति का अत्यधिक बोलबाला है। विभिन्न राजनीतिक दलों द्वारा केवल वोट प्राप्त करने के लिए इन निम्न एवं पिछड़े वर्गों का आरक्षण बढ़ाने का समर्थन किया जाता है जिसके सहारे ये राजनीति में अपना अस्तित्व बनाए रखने का प्रयास करते रहते हैं।
- आरक्षण की नीति के कारण कमजोर एवं निम्न वर्गों के लिए सरकारी सेवाओं में निर्धारित स्थानों के कारण इस वर्ग के लोगों का अलग ही समूह बन जाता है जिससे ये जातियाँ समाज की मुख्य धारा से कट जाती हैं।

  भारत में एक सच्चे लोकतांत्रिक शासन का गठन करने के लिए समाज के इस कमजोर एवं निम्न वर्ग को समाज की मुख्य धारा के साथ जोड़कर समाज के समस्त वर्गों व लोगों के बीच समानता, स्वतन्त्रता एवं न्याय की स्थापना करना बहुत आवश्यक है।

1-3-5- आरक्षण नीति का भारतीय राजनीति पर प्रभाव (Impact of on Indian Politics)

- **दलितों का उन्नत जीवन स्तर-High living standard)**;स्वतन्त्र भारत में इन वर्गों के लिए किए गए संवैधानिक प्रावधानों के कारण राष्ट्रीय जीवन ने सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, पेशेवर एवं व्यापारिक क्षेत्र में बहुत उन्नति की है जिसके परिणामस्वरूप इस तथाकथित निम्न एवं दलित वर्ग के जीवन स्तर में बहुत परिवर्तन आया है। इसलिए वर्तमान अधिक समाज में जाति आधारित

कठोर बन्धन बहुत शिथिल पड़ गए हैं जिसके कारण निम्न वर्गों के लोगों के अन्य उच्च वर्गों के लोगों के साथ सामाजिक मेल-मिलाप एवं अन्तर्जातीय वैवाहिक सम्बन्ध भी बनने लगे हैं।

- **वर्गीय चेतना का उदय (Emergence of Class Consciousness)**:

  स्वतन्त्र भारत में इस निम्न वर्ग को उच्च शोषक वर्ग के अत्याचारों से मुक्त करवाने के लिए आरक्षण सम्बन्धी प्रावधानों के माध्यम से दी गई सुविधाओं द्वारा उन्हें अपने अधिकारों के सम्बन्ध में सचेत करवाया है।

- **दलितों में अभिजन-वर्ग का विकास (Emergence of Elite in the Dalits)** भारतीय समाज में दलित एवं पिछड़े व ने आरक्षण एवं अन्य विशेष सुविधाओं का लाम उठाकर अपनी स्थिति को सुधारा है इसी वर्ग में उप-वर्ग के रूप में एक विशिष्ट-वर्ग का विकास हुआ।

- **जातीय आधारित राजनीतिक दलों का निर्माण (Formation of Caste- based Political Parties) -** आरक्षण के परिणामस्वरूप जैसे-जैसे इस वर्ग के लोगों में शैक्षणिक एवं आर्थिक परिवर्तन हए वैसे ही धीरे-धीरे इस वर्ग के लोगों मे राजनीतिक जागरूकता का भी विकास हुआ। इसी सोच एवं विचार ने इन वर्गों के लोगों को राजनीतिक रूप से संगटित होने एवं दलों के निर्माण के लिए प्रेरित किया ताकि राजनीतिक स्तर पर इस वर्ग की भागीदारी को सुनिश्चित कर अपने हितों की रक्षा हेतु समुचित प्रतिनिधित्व दिया जा सके।

- **बोट बैंक की राजनीति (Politics of Vote Bank)** दलित एवं पिछड़े वर्ग के लोग सामान्यतया यह सोचते हैं कि वास्तव में मूल सुविधाएँ देने एवं विकास के अवसर उपलब्ध करवाने की बजाए सत्ता पक्ष एवं अन्य राजनीतिक दल उन्हें केवल वोट बैंक ही समझते हैं। इस वर्ग में विकसित चेतना का परिणाम यह है कि आज सभी राजनीतिक दल इन वर्गों के नेताओं को अपने दलों में प्रमुख पद

देने एवं चुनावी प्रत्याशी बनाने में लगे रहते हैं ताकि चुनावों में इस वर्ग का समर्थन हासिल किया जा सके।

- **सामाजिक तनाव की उत्पत्ति (Origin of Social Tension**) संविधान द्वारा आरक्षण नीति ने भारतीय समाज में सामाजिक तनाव को भी जन्म दिया है। हमारे संविधान निर्माताओं ने समाज में सामाजिक समानता लाने के उद्देश्य से संविधान में प्रारम्भिक दस वर्षों के लिए दलित एवं पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण सम्बन्धी सुवियाएँ प्रदान की थीं, परन्तु ऐसी सुविधाएँ प्रत्येक दस वर्ष के बाद विशेष संवैधानिक संशोधनों द्वारा निरन्तर बढ़ाई जाती रही हैं। दलित एवं पिछड़े वर्गों हेतु बार-बार ऐसी सुविधाओं को बढ़ाने के कारण समाज के अन्य वर्गों में विरोध की भावना का विकास होता है, क्योंकि अन्य वर्गों के लोगों का मानना है कि इस विशेष वर्ग को ऐसी सुविधाएँ देने से विशेष वर्ग की योग्यताओं एवं हितों की उपेक्षा हो जाती है।
- **राजनति का जातीयकरण (Casteism of Politics**) दलित एवं पिछड़े वर्ग की राजनीति ने भारतीय राजनीति का एक तरह से जातीयकरण ही कर दिया है। इसीलिए प्रत्येक राजनीतिक दल संगठन एवं चुनावी स्तर पर इस विशेष वर्ग के लोगों को आकर्षित करने के लिए हर सम्भव प्रयास करता है।
- **जाति आधारित दबाव समूहों का निर्माण (Formation of Caste-based Pressure Groups)** आरक्षण राजनीति के परिणामस्वरूप दलित एवं पिछड़े वर्गों की जातियों में उभरी वर्गीय भावना ने उन्हें संगठित होने एवं हितों की प्राप्ति हेतु संघर्ष करने के लिए भी प्रेरित किया है।
- **मतदान व्यवहार का निर्धारक तत्त्व (Determinant Element of Voting Behaviour**)- आरक्षण की राजनीति ने जातीय तत्त्व को मतदान व्यवहार का एक प्रमुख निर्धारक तत्त्व बना दिया है।

- **अन्य वर्गों में आरक्षण की बढ़ती माँग (Increasing Demand of Reservation in Other Classes)** - हमारे देश में आरक्षण राजनीति की तीव्रता ने समाज के अन्य वर्गों में भी आरक्षण की माँग के लिए चेतना उत्पन्न की है। दलित, ईसाइयों, मुसलमानों एवं अन्य धार्मिक अल्पसंख्यकों में भी यह माँग निरन्तर तीव्र होती जा रही है जिनका कई राजनीतिक दल अपने लाभ के लिए समर्थन भी करते हैं। इस तरह समाज के अन्य वर्गों में आरक्षण हेतु निरन्तर बढ़ती मांग भी भारतीय राजनीति में एक ज्वलन्त मुद्दा बन गया है।
- राजनीतिक चेतना में वृद्धि **(Increase in Political Awareness)** दलित एवं पिछड़े वर्ग में आरक्षण की नीति के कारण सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षिक विकास हुआ है जिसके परिणामस्वरूप इन वर्गों में राजनीतिक चेतना का भी विकास हुआ है।
- राजनीतिक भागीदारी में वृद्धि**(Increase in Political Participation)-** भारतीय संविधान में आरक्षण की नीति के तहत अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के लिए लोकसभा, राज्यों की विधा नसभाओं एवं पंचायती राज संस्थाओं में स्थानों आरक्षण किया गया है। । वास्तव में यह इस आरक्षण की नीति का ही प्रभाव है कि आज अनेक राजनीतिक नेता इन्हीं कमजोर वर्गों से लोकसभा एवं राज्यों की विधानसभाओं में पहुँच रहे हैंइस तरह इस वर्ग के निश्चित राजनीतिक प्रतिनिधित्व के कारण जहाँ राजनीति में इनकी सक्रिय भागीदारी में वृद्धि हुई है.
- शिक्षा के प्रति जागृति **(Awakening towards Education)-** वास्तव में यह भी एक सच्चाई है कि जो वर्ग साधनों के अभाव के कारण शताब्दियों से शिक्षा जैसी अमूल्य निधि से वंचित था, आज वही वर्ग आरक्षण की नीति के परिणामस्वरूप शिक्षा के प्रति जागरूक हुआ है। इसी कारण इस कमजोर वर्ग के लोग उच्च शिक्षा प्राप्त करके न केवल अन्यों को ज्ञान दे रहे हैं, बल्कि इस वर्ग के

अनेक लोग डॉक्टर, इंजीनियर, वैज्ञानिक, वकील एवं कुशल प्रबन्धक आदि बनकर समाज एवं राष्ट्र निर्माण में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं।

1-4- विषय वास्तु का पुन: प्रस्तुतिकरण (Presentation of further Contents)

1-4-1- भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के सामने उभरती प्रवृत्तियाँ और चुनौतियाँ (Emerging Trends and Challenges before the Indian Political System): -

समकालीन परिस्थितियाँ किसी भी देश की राज्य व्यवस्था को प्रभावित करती हैं। जैसे-जैसे परिस्थितियों में परिवर्तन आता है, वैसे-वैसे देश की राजनीति तथा राज्य-व्यवस्था में भी परिवर्तन आता है। भारत भी इस प्राकृतिक सिद्धान्त से अलग नहीं है और भारत की परिस्थितियों ने भी राजनीति को बहुत प्रभावित किया है। लगातार भारतीय राजनीति तथा राज्यव्यवस्था में नवीन प्रवृत्तियाँ उभर रही हैं।

भारत की राजनीति तथा राज्य व्यवस्था में उभरती हुई प्रवृत्तियों का अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है:-

I. **एक दल की प्रधानता की पुनर्स्थापना (Re-emergence of One party Domination)-** भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस ने देश के स्वतन्त्रता आन्दोलन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी, जिसके कारण संविधान के लागू होने के शुरू के कई वर्षों तक देश की राजनीति पर इस दल का प्रभुत्व बना रहा। सन् 1952 से लेकर 1967 तक केन्द्र तथा सभी राज्यों (केवल केरल को छोड़कर) में इसी दल की सरकारें रहीं। सन् 1977 में हुए लोकसभा चुनावों के पश्चात् पहली बार शेन्द्र में गैर-काँग्रेसी (जनता पार्टी को) सरकार बनी, परन्तु आपसी फूट के कारण यह पार्टी अधिक समय तक सत्ता में नहीं रह सकी और सन् 1980 में पुनः कांग्रेस सत्ता में आ गई। सन् 1980 से 1989 तक यह दल सत्ता में रहा, परन्तु 1989 में हुए आम चुनावों में किसी भी एक दल को लोकसभा में स्पष्ट बहुमत

प्राप्त नहीं हुआ था। 1989 सन् 1991 में हुए दसवीं लोकसभा चुनाव में भी किसी भी राजनीतिक दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं हुआ, लेकिन सबसे बड़े के रूप में उभरने के कारण काँग्रेस के नेतृत्व में मिली-जुली सरकार का गठन हुआ। इस तरह 1991-05 के वर्षों में प्रत्यक्ष में दो राजनीतिकः स्थायित्व दिखाई देता था, लेकिन अस्थायित्व का वातावरण सदैव ही रहा। सन् 1996 में सम्पन्न 11वीं चुनाव परिणामों ने देश को राजनीतिक अस्थिरता के चलदल की और धकेल दिया गया, क्योंकि चुनाव उपरान्त बनी एचडी देवी की सरकार मात्र 10 माह टिकी और तत्पश्चात् बनी इन्द्रकुमार गुजराल की सरकार भी मात्र 6-7 माह तक ही चल पाई।राष्ट्रपति द्वारा 12वें लोकसभा के चुनाव घोषित किए गए। चुनावों के परिणाम के आधार पर भारतीय जनता पार्टी की सरकार बनी, जिसमें 18 राजनीतिक शामिल थे। इसी तरह 15वीं लोकसभा चुनाव के बाद 19 अक्तूबर, 1999 को प्रधानमन्त्री श्री वाजपेयी के नेतृत्व में गठित साझा सरकार में 26 दल शामिल थे। सन् 2004 में हुए 14वीं लोकसभा चुनावों के पश्चात् भी पद्यपि काँग्रेस पार्टी लोकसभा में सबसे बड़े दल के रूप में उभरी, परन्तु उसने अन्य 12 दलों के साथ मिलकर सरकार का गठन किया। सन् 2000 में हुए 15वीं लोकसभा चुनावों के बाद 22 मई, 2009 को पुनः डॉ० मनमोहन सिंह के नेतृत्व में गठित संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन की साझा सरकार में भी दो राष्ट्रीय व 8 क्षेत्रीय दल शामिल हुए थे। सन् 2014 में हुए 16वीं एवं 2019 में हुए 17वीं लोकसभा चुनावों के पश्चात् इस स्थिति में और परिवर्तन हुआ। इन चुनावों में भारतीय जनता पार्टी ने 16वीं एवं 17वीं लोकसभा में पूर्ण बहुमत प्राप्त कर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया है।

II. **मजबूत क्षेत्रीय दलों का उभरना (Emergence of Strong Regional Parties)**- कॉग्रेस पार्टी के कमजोर होने के परिणामस्वरूप भारतीय राजनीति में एक अन्य प्रवृत्ति उभरकर सामने आई है और यह है शक्तिशाली क्षेत्रीय दल यद्यपि 1967 तक कॉग्रेस पार्टी का प्रभुत्व होने के कारण क्षेत्रीय

दलों का कोई विशेष प्रभाव नहीं था, परन्तु सन् 1967 में हुए चौथे आम चुनावों के बाद कई राज्यों में क्षेत्रीय दलों की सरकार बनने के कारण क्षेत्रीय दलों का महत्त्व बढ़ने लगा। केन्द्र सरकार में क्षेत्रीय राजनीतिक दलों की सहभागिता ने भारतीय संघवाद की कार्यप्रणाली में न केवल क्षेत्रीय दलो की भूमिका में वृद्धि की है, बल्कि उनकी सत्ता में भागीदारी का विस्तार राज्यों में भी हुआ है । इस प्रकार क्षेत्रीय दलों की बढ़ती हुई भूमिका ने राजनीतिक एकाधिकारवाद की प्रवृत्ति को तोड़ दिया है और गठबन्धनात्मक राजनीति को बढ़ावा दिया है। इससे भारतीय संघीय अवस्था में राजनीति बहुलवाद की प्रवृत्ति उभरकर सामने आई है।

III. **मिली-जुली सरकार के युग का आरम्भ (Beginning of the Era of Coalition Politics)-** 1977 के बाद से केन्द्र में मिली-जुली सरकारों का युग आरम्भ हुआ। 1977 से 2014 तक किसी भी सरकार को पूर्ण बहुमत नहीं मिला सभी सरकारों ने अन्यं दलों के साथ मिलकर ही सरकार बनायीं सन् 2014 में हुए लोकसभा चुनावों में यद्यपि भारतीय जनता पार्टी को लोकसभा में पूर्ण बहुमत (543 में से 282 स्थान) प्राप्त हुआ, परन्तु फिर भी भारतीय जनता पार्टी ने अपने सहयोगी दल शिव सेना, अकाली दल, तेलुगू देशम पार्टी आदि अन्य 12 दलों के साथ मिलकर एक मिश्रित सरकार का गठन किया 17 वीं लोकसभा चुनावों में पुनः भाजपा 303 लोकसभा सीटों पर विजय प्राप्त करने के बाद सहयोगी दलों के साथ महबन्धन सरकार का निर्माण किया। इस तरह यह स्पष्ट है कि वर्तमान भारतीय राजनीति में गठबन्धन सरकारों का गठन एक अपरिहार्य बनता जा जा है। इस गठबन्धन की प्रवृत्ति से राज्य सरकारें भी अछूती नहीं रही हैं।

IV. **केन्द्र-राज्य सम्बन्धों में परिवर्तन की माँग (Demand for Change in Centre State Relation)-** क्षेत्रीय राजनीतिक दलों के अपने राज्यों में सत्ता में आ जाने के कारण क्षेत्रीय भावनाओं और आकाओं को बहुत बढ़ता है। वे राष्ट्रीय मुद्दों की उपेक्षा करके क्षेत्रीय मुद्दों तथा

समस्याओं की अधिक उभारते हैं। जनता राष्ट्रीय दलों के मुकाबले में क्षेत्री दलों को अपने अधिक नज़दीक मानने लगी है और जनता अपनी समस्याओं को सुलझाने के लिए इनसे अधिक उम्मीद रखने है। इस कारण से केन्द्र तथा राज्यों के आपसी सम्बन्धों में परिवर्तन करके राज्यों को अधिक स्वायत्तता देने की देने की मांग करने लगी है विभिन्न राज्यों में जैसे गुजरात, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश आदि के राज्यपालों की भूमिका के बारे में भी लोगों उतेजना पैदा हुई। राज्यों की निरन्तर बढ़ती स्थापलता की माँग केन्द्र सरकार के लिए एक चुनौती बनी हुई है।

V. **भारतीय संघ में नए राज्यों की माँग (Demand for New States in Indian Federation)**- भारत- के लोगों द्वारा पृथक राज्य निर्माण की मांग काफी समय से की जा रही है। भारत में प्रारम्भ से ही जाति, भाषा, धर्मः आर्थिक पिछड़ेपन को लेकर विभिन्न क्षेत्रों द्वारा राज्य को माँग समय-समय पर उठाई गई तथा इसके लिए आन्दोलन किये गए । सन् 1955 में भाषायी आन्दोलन के परिणामस्वरूप आन्ध्र प्रदेश राज्य की स्थापना की गई, सरकार ने 1955 में एक राज्य पुनर्गठन आयोग (State Re-organisation Coinmission) की नियुक्ति की इस आयोग की रिपोर्ट के आधार पर संसद द्वारा राज्य पुनर्गठन अि 1956 (States Reorgamation Act, 1956) पास किया गया, जिसके अनुसार भारत में भाषा के आधार पर 14 किया गया, परन्तु उससे भी समस्या पूर्ण रूप से हल नहीं हुई और थोड़े ही समय के बाद इस प्रकार की अन्य मोर्गे सामने गई। सन् 11660 में बम्बई राज्य का विभाजन करके दो राज्यों गुजरात तथा महाराष्ट्र की स्थापना हुई। पंजाब में शिरोमण के के कारण सन् 1900 में पंजाब का विभाजन करके पंजाब तथा हरियाणा राज्यों की स्थापना हुई। इसी 1999 में उत्तर प्रदेश के क्षेत्र में उत्तराखंड, बिहार के क्षेत्र में झारखण्ड और मध्यप्रदेश के क्षेत्र में छत्तीसगढ़ राज्य का निर्माण गया था। विभिन्न भागों जैसे महाराष्ट्र में विदर्भ (Vidarbha), कर्नाटक में कोडवा (Kodava), असम में बोडोलैंड (Bodoland),

पश्चिम बंगाल में गोरखालैंड (Gorkhaland), उत्तर प्रदेश में हरित प्रदेश (Harit Pradesh) और बुंदेलखण्ड (Bundelkhand) आदि सद बनाने की मांग में काफी तेजी आई है। इसीलिए देश में कुछ लोगों द्वारा राज्यों का पुनः पुनर्गठन करने के लिए एक नए की मांग भी की जा रही है। इस तरह स्पष्ट है कि भारतीय संघवादी ढाँचे में नए राज्यों की नित्य बढ़ती माँग एवं आन्दोलनों ने एक नई समस्या उत्पन्न की है।

VI. **सरकार के गठन के लिए राजनीतिक दलों के असैद्धान्तिक समझौते (Unprincipled Alliances by Political Parties)-** भारतीय राजनीति में राजनीतिक दलों द्वारा असैद्धान्तिक समझी प्रायः एक सामान्य बात हो गई है। सभी राजनीतिक दल सत्ता में भागीदारी के लिए ऐसे समझौते करने के लिए सदा तैयार रहते हैं। भारतीय राजनीति में सभी दलों की सत्ता प्राप्ति हेतु यह एक आवश्यक लक्षण बन चुका है।

VII. **शक्तिशाली विरोधी दल का अन्त (End of Powerful Opposition)-** सन् 1967 तक केन्द्र तथा अधिकतर राज्यों में काँग्रेस का प्रभुत्व रहा और संगठित विरोधी दल का पूर्ण रूप से अभाव था। सन् 1977 के लोकसभा चुनाव के पश्चात केन्द्र में पहली कांग्रेस (जनता पार्टी) की सरकार बनी तो कांग्रेस पार्टी जिसे इन चुनावों में लोकसभा में 155 स्थान प्राप्त हुए थे, पहली बार विरोधी दल के रूप में उभरकर सामने आई, काँग्रेस पार्टी के नेता यशवन्त राव चहाण को लोकसभा में विरोधी दल के नेता के रूप में मान्यता दी गई, परन्तु थोड़े समय के पश्चात् ही दोबारा कांग्रेस का प्रभुत्व स्थापित हो गया। जब सन् 1994 में हुए लोकसभा चुनावों एक क्षेत्रीय तेलुगूदेशम् पार्टी ने 50 स्थान प्राप्त करके सबसे बड़े विपक्षी दल होने का गौरव प्राप्त किया। इस प्रकार हम देखते हैं कि एक क्षेत्रीय इन विपली राष्ट्रीय दलों से अधिक स्थान जीतता है, सन् 1989 के लोकसभा चुनाव में काँग्रेस ने सशक्त विरोधी दल की भूमिका निभाई। सन् 1991 के आम चुनावों में भारतीय जनता

पार्टी ने सशक्त विरोधी उस की भूमिका निभाई। सन् 1996 के 11वीं लोकसभा चुनावों के कॉग्रेस पार्टी को विरोधी दल की भूमिका निभानी पड़ी। उसके पश्चात् जब भारतीय जनता पार्टी की सरकार के गिर जाने के पश्चात् एच०डी० देवगौड़ा के नेतृत्व में संयुक्त मोर्चा द्वारा कॉग्रेस के बाहरी समर्थन ने सरकार का गठन किया गया तो भारतीय जनता पाटी द्वारा एक संगठित विरोधी दल के रूप में कार्य किया गया। 12वीं और 15वीं लोकसभा के चुनावों के पश्चात् केन्द्र में भारतीय जनता पार्टी के नेतृत्व में आई और कॉग्रेस पार्टी ने संसद के दोनों सदनों में विरोधी दल का स्थान ग्रहण किया। सन् 2004 में हुए चुनावों के भारतीय जनता पार्टी ने लोकसभा में विरोधी दल के रूप में कार्य किया। सन् 2009 में हुए 15वी लोकसभा चुनावों एक सशक्त विरोधी दल का अस्तित्व बरकरार रहा। अतः स्पष्ट है कि ग्यारहवीं, बारहवी, तेरहवीं तथा पंद्रहवीं लोकसभा के गठन के उपरान्त विपक्षी दलों की स्थिति सशक्त एवं प्रभा उभरी थी। परन्तु 16वीं एवं 17वीं लोकसभा में दिए गए जनाधार ने भारतीय राजनीति में एक बार पुछ प्रभावशाली विरोधी दल का अन्त कर दिया है।

VIII. **भारतीय राजनीति का अपराधीकरण (Criminalization of Indian Politics)-** भारतीय राजनीति की एक प्रवृत्ति इसका अपराधीकरण है। भारत में बहुदलीय प्रणाली होने के कारण पिछले लगभग 25 वर्षों से गठबन्धन सरकार बनने हैं। इन गठबन्धन सरकारों के निर्माण में कुछ राजनीतिक दल साम, दाम, दण्ड और भेद रूपी चाणक्य नीति के चतुर्गुणों का अधिक प्रयोग करते हैं। इसके दुष्परिणामस्वरूप अपराधिक प्रवृत्ति के लोग भी चुनाव जीतने लगे हैं। राजनीति के इस अपराध से ऐसे लोग न केवल जनप्रतिनिधि, बल्कि मन्त्री भी बन जाते हैं। ऐसी स्थिति भारतीय लोकतन्त्र के लिए एक बड़ी चुनौती समाज में अनेकों ही अपराधों के दोषी प्रत्येक राजनीतिक दल में मौजूद हैं तथा देश के राजनीति में पूर्ण तौर पर सक्रिय हैं। कोई भी राजनीतिक दल स्वयं को इस दोष से

मुक्त करने में असमर्थ है। इस तरह स्पष्ट है कि भारतीय राजनीति का उभरता राजनीतिक अपराधीकरण का चेहरा भारतीय लोकतन्त्र के लिए एक चुनौती का विषय है।

IX. **भारतीय राजनीति में जातिवाद की भूमिका (Role of Casteism in Indian Politics)-** भारतीय राजनीति में जातिवाद भी मुख्य भूमिका निभाता है। वैसे तो भारत की राजनीति में जातिवाद की भूमिका का आरम्भ सन् 1909 में अंग्रेजी शासन द्वारा किया गया था, परन्तु संविधान के द्वारा जातिवाद के आधार पर आरक्षण की व्यवस्था ने इसे और अधिक मजबूत बना दिया। प्रत्येक राजनीतिक दल जाति के आधार पर अपने उम्मीदवारों का चयन करता है भारतीय चुनावी इस जातीय तत्व के इर्द-गिर्द रहा है। यहाँ तक कि चुनावों के पश्चात् गठित मन्त्रिमण्डल भी पर गठित होते हैं। कई राजनीतिक दलों का गठन ही जातिवाद के आधार पर किया गया है। अतः भारतीय राजनीतिका जातिकरण भारतीय लोकतन्त्र के लिए एक गम्भीर चुनौती बनी हुई है।

X. **भारतीय राजनीति में सम्प्रदायवाद की भूमिका (Role of Commonalism in Indian Politics)-** जातिवाद की भाँति दाद ने भी भारतीय राजनीति को बहुत प्रभावित किया है। यद्यपि सन् 1947 में भारत के विभाजन का एक मुख्य कारण दया था और यह आशा की गई थी कि उसके पश्चात् देश में इसका पूर्ण रूप से अन्त हो जाएगा, परन्तु ऐसा नहीं हुआ। धर्म के नाम पर देश में आज भी दंगे-फसाद होते रहते हैं। यह बहुत दुर्भाग्यपूर्ण बात है कि आज भी राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए लोगों की धार्मिक भावनाओं का प्रयोग किया जाता है। भारत में कई राजनीतिक दल ऐसे हैं जिनका गठन धर्म के आधार पर किया गया है। आज भी राजनीति में धर्म का सहारा लिया जाता है। इस प्रकार साम्प्रदायिकता भारतीय राजनीति के समक्ष एक प्रमुख चुनौती बनी हुई है।

XI. **राजनीतिक दलों में अनुशासन का अभाव (Lack of Discipline in Political Parties)-** भारत के लगभग सभी राजनीतिक दलों में अनुशासन का अभाव है। राजनीतिक दलों के सदस्य अपने स्वायों

की पूर्ति के लिए दल में अनुशासन की परवाह नहीं करते। ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जब दल के एक सदस्य को चुनाव के लिए टिकट नहीं मिलता, तो यह दल से त्याग पत्र देकर अपने ही दल के प्रत्याशी के विरुद्ध चुनाव में खड़ा हो जाता है या फिर अपना अलग राजनीतिक दल बना लेता है। राजनीतिक इसों द्वारा ऐसे व्यक्तियों को पार्टी से निकाल दिया जाता है, परन्तु जब ये विद्रोही चुनाव जीत जाते हैं, तो कई बार उन्हें वापस पार्टी में शामिल कर लिया जाता है। इस अनुशासन की कमी के कारण ही भारतीय राजनीति में दल-बदल की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिला है जो भारतीय राजनीति की एक प्रमुख समस्या बनी हुई है।

XII. **राजनीतिक भ्रष्टाचार (Political [Corruption)-**भारतीय राजनीतिक व्यवस्था की एक अन्य उभरती प्रवृत्ति देश में बढ़ता हुआ भ्रष्टाचार है। चुनावों के समय प्रत्येक राजनीतिक दल तथा उम्मीदवारों द्वारा करोड़ों रुपया खर्च किया जाता है और यह पैसा प्रायः अनुचित साधनों से ही जुटाया जाता है। अनेक राजनीतिक नेता अपने स्वायों के लिए अपनी कुर्सी तथा स्थिति का प्रयोग न को इकट्ठा करने के लिए करते हैं। पिछले कुछ वर्षों में सरकार के विभिन्न सदस्यों के अनेक घोटालों में शामिल होने के समाचार प्रकाशित हुए हैं। ऐसे भ्रष्टाचार सम्बन्धी घोटालों का निश्चित रूप से आम नागरिक के जीवन पर भी बहुत बोझ पड़ता है और शोषण की प्रवृत्तियाँ अपनी जड़े जमाती जा रही हैं। इस प्रकार ये प्रवृत्तियाँ भारतीय राजनीति के लिए चिन्तनीय हैं।

XIII. **सत्तारूढ़ दल में असन्तुष्ट गुट (Dissidents in the Ruling Party)-** भारतीय राजनीति में एक नई प्रवृत्ति सत्तारू दत्तों में असन्तुष्ट गुटों का मौजूद होना है। एक सत्तारूढ़ (Ministerealists) गुट तथा दूसरा विक्षुब्ध (Dissidents) गुट सत्ता हथियाने के लिए नेताओं में परस्पर इतनी होड़ जाती है कि गुटबन्दी अत्यधिक जोरों पर काम करती है। भारतीय लोकतन्त्र के लिए एक खतरा बन चुकी हैं। फलतः भारतीय राजनीति में अस्थिरता का खतरा सदैव बना रहता है।

XIV. **कणिक दलीय व्यवस्था (Atomised Party System)-** भारत में बहुदलीय व्यवस्था के साथ-साथ कणिक एवं दलीय व्यवस्था का उदय हो रहा है। यहाँ दलों का संगठित ढाँचा नहीं, कोई ठोस सिद्धान्त, नीतियों या कार्यक्रम नहीं है। किसी दल के सदस्यों की कोई समूह किसी एक व्यक्ति के नेतृत्व में दल के निर्माण की घोषणा कर सकता है, जैसे जनता पार्टी (सुब्रह्मण्यम स्वामी), अरुणाचल कांग्रेस (गंगांग अपांग), राष्ट्रीय जनता पार्टी (आनन्द मोहन), समाजवादी जनता पार्टी हरियाणा इण्डियन नेशनल लोकदल (चौटाला), जनता दल (राजाराम आदि पार्टियों का निर्माण एक व्यक्ति के नेतृत्व के इर्द-गि हुआ है। यहाँ नेतृत्व और लोगों के मध्य घरेलू समूह, जाति समूह, जमींदारों के संगठन अपना सर उठा रहे हैं। यहाँ नेतृत्व और के मध्य घरेलू नेताओं का अभाव है। ये सब तत्व कणिक दलीय व्यवस्था के चिह्न हैं।

XV. **संसदीय वाद-विवाद में गुणात्मक हास (Qualitative Decline in Parliamentary Debates)-** और राज्य विधानमण्डलों की कार्य-प्रणाली का गुणात्मक हास हुआ है, वाद-विवाद का स्तर घटा है। व्यक्ति दोषारोपण और विद्वान्वेषण की बढ़ती हुई प्रवृत्ति के कारण संसदीय मंच का अवमूल्यन हुआ है।

XVI. धन **शक्ति की बढ़ती भूमिका (Increasing Role of Money Power)-** भारतीय राजनीति में यद्यपि प्रारम्भ से पर की शक्ति का बोलबाला रहा है, परन्तु पिछले कुछ दशकों में भारतीय राजनीति में धन की शक्ति की भूमिका निर्णायक हो गई है। भारतीय चुनावों में धन का अन्धाधुन्ध प्रयोग और दुरुपयोग ने भारत की राजनीति को काफी भ्रष्ट किया है। चुनावों में धन की बढ़ती भूमिका भारतीय चुनाव प्रणाली का एक मुख्य दोष बन गया है।

XVII. **राजनीतिक दलों की संख्या तथा स्वरूप (Number and Nature of Political Parties)-** भारत विभिन्न भाषा-भाषियों, जातियों एवं धर्मों की बहुलता की प्रवृत्ति का देश है। विभिन्न वर्ग अपनी

विशिष्टता एवं मौलिकता कायम रखने के लिए राजनीतिक बाद से संगठित होते हैं, परिणामस्वरूप देश में अनेक हितों के प्रतिनिधित्व का दावा करने वाले राजनीतिक दलों का उदय हो गया। इनमें से कई दल धार्मिक तथा भाषायी तथ्यों पर आधारित हैं जो कि राष्ट्रीय एकता के लिए हानिप्रद साबित होते हैं। लगभग सभी राजनीतिक दलों में आन्तरिक गुटबन्दी है तथा यह गुटबन्दी भारतीय संसदीय लोकतन्त्र की सफलता के लिए एक बड़ी बाधा भी बनी हुई है। भारतीय राजनीतिक दलों का जान्तरिक ढाँचा लोकतान्त्रिक सिद्धान्तों तथा मूल्यों पर आधारित नहीं है क्योंकि राजनीतिक दलों के अपने चुनाव वर्षों तक नहीं होते। इस तरह से भारतीय राजनीतिक दल संगठनात्मक समस्या से जूझ रहे हैं। राजनीतिक दल डर पर आधारित दलों के रूप में विकसित नहीं हो पाए हैं। सभी दल चुनावों के समय संगठन में कार्यकताओं की भर्ती शुरू करते है, जिसमें बोगस सदस्यता का विशेष महत्त्व रहता है। इस संगठन के अभाव में ही राजनीतिक दल सुद्ध नहीं हो पाते हैं। भारत में बहुदलीय प्रणाली जहाँ देश में खण्डित जनादेश को जन्म दे रही है, वहीं दलीय व्यवस्था की आन्तरिक कमजोरियों के कारण इसका स्वरूप भारतीय लोकतन्त्र की सफलता के रास्ते में एक रोड़ा बना हुआ है।

XVIII. **भारतीय राजनीति में हिंसा की प्रवृत्ति (Trend of Violence in Indian Politics)-** भारतीय राजनीति में बढ़ती हिंसा की प्रवृत्ति भी भारतीय लोकतन्त्र के लिए एक दुखद संकेत है। भारतीय समाज के कुछ लोग अपने संकीर्ण स्वायों की पूर्ति हेतु हिंसा का सहारा लेते हैं। वे सामान्य नागरिकों में भय उत्पन्न करने हेतु हिंसक घटनाओं में विश्वास करते हैं, हमारे देश में लोकसभा एवं विधानसभा के चुनाव भी हिंसात्मक रूप धारण करते जा रहे हैं जो निश्चित ही देश के लोकतन्त्र के लिए खतरनाक है।

XIX. **सरकार का बाहर से समर्थन करने की प्रवृत्ति (Trends of Supporting the Government from outside)-** राजनीति में सन् 1999 के 9वीं लोकसभा चुनाव के पश्चात् केन्द्र में बनी सरकार को बाहर से समर्थन देने की प्रवृत्ति का उदय हुआ। इस तरह सरकार में शामिल हुए बिना सरकार बाहर से समर्थन देना राजनीतिक अस्थिरता को जन्म देता है। इस तरह की स्थिति राजनीतिक अस्थिरता के अतिरिक्त सरकार की मोरी तथा अवसरवादी राजनीति के लिए उत्तरदायी बनती है। अतः सरकार को बाहर से समर्थन देने की प्रवृत्ति वास्तव में समर्थन देने वाले दलों द्वारा सरकार की मजबूरियों को भुनाने एवं सरकार की असफलता के उत्तरदायित्व से बचने की कोशिश है जो किसी भी शासन-प्रणाली के लिए उचित नहीं कही जा सकती।

XX. **दल-बदल पर पूर्ण मनाही (Complete Prohibition of Defection)**-दल-बदल भारतीय राजनीति की एक प्रमुख है। वैसे तो सन् 1967 से पहले भी भारतीय राजनीति में इसका कई बार प्रयोग किया गया, परन्तु इसका भयंकर रूप सन् 1967 त सन् 1975 के वर्षों के बीच दिखाई दिया। इसके परिणामस्वरूप कई प्रान्तों में सरकारें टूटी तथा बनीं। इस दौरान ही हरियाणा में 'आया राम-गया राम' की संज्ञा भारतीय राजनीति को दी। दल बदल के कारण हो सन् 1929 में केन्द्र में श्री मोरारजी देसाई की सरकार का पतन हुआ। भारतीय राजनीति में दल-बदल की बढ़ती विकराल एवं दूषित प्रवृत्ति के कारण सभी राजनीतिक दलों एवं बुद्धिजीवियों के द्वारा दल-बदल पर अंकुश लगाने की माँग की जाती रही,क्योंकि मन्त्री बनने की इच्छा विधायकों को पार्टी छोड़ने पर मजबूर करती है। अतः दल-बदल एक राजनीतिक बुराई है और किस भी रूप में इसका अस्तित्व हमारे लोकतन्त्र के लिए एक चुनौती हो सकती है।

XXI. **अनिवार्य मतदान सम्बन्धी प्रावधान (Provision Regarding Compulsory Voting)-** देश की लोकतान्त्रिक व्यवस्था को मजबूत करने के लिए यह नितांत आवश्यक है। देश के संविधान में यह

मूल भावना भी है कि हर नागरिक चुनाव में वोट देकर राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्य का निर्वहन करे। यह पाया गया कि वोटरों के कम मतदान के चलते चुनावी नतीजों में लोकतन्त्र की वास्तविक भावना का प्रकटीकरण नहीं हो पाता। इसीलिए विधायी प्रावधानों के द्वारा स्थानीय स्वशासित सरकारों के चुनावों में वोट देने के कर्त्तव्य की वैधानिक व्यवस्था की जा रही है।

उपर्यक्त विवरण से स्पष्ट है कि भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में नित्य नई-नई प्रवृत्तियाँ पैदा हो रही हैं, लेकिन ये सब सकारात्मक की अपेक्षा नकारात्मक ही अधिक हैं जो एक चुनौती के रूप में राष्ट्र के समक्ष खड़ी हैं। भारतीय राजनीति सिद्धान्तहीन एवं अवसरवादी राजनीति हो गई है जिसमें धर्म, जाति, भाषा, क्षेत्र आदि तत्त्वों की महत्त्वपूर्ण भूमिका हो गयी है है तथा राष्ट्रीय हितों की अपेक्षा दल के हितों एवं निजी स्वार्यों को अधिक महत्त्व दिया जा रहा है।

1-5-स्वयं प्रगति जाँच (Check your progress)

I. किस अनुच्छेद के तहत "राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्म-स्थान एवं इनमें से किसी के भी आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा।

II. किस अनुच्छेद के तहत "राज्याधीन नौकरियों या पदों पर नियुक्ति के सम्बन्ध में समस्त नागरिकों के लिए अवसर की समानता होगी। किस अनुच्छेद के तहत "हिन्दुओं के सार्वजनिक धार्मिक स्थल सभी जातियों के लिए खोल दिए गए हैं।

1-6-सारांश (Summary)

भारत में आरक्षण की शुरूआत समाज के पिछड़े वर्गों को सामाजिक और आर्थिक रूप से ऊपर उठाने के लिए की गई थी। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में, आरक्षण का यह उद्देश्य विकृत हो चला है। वर्तमान में आरक्षण के विस्तार में जाति की राजनीति साफ तौर पर दिखाई देती है। जाति के अनुपात में आरक्षण दिए जाने की मांग जोर पकड़ रही है। आरक्षण पर जोर देकर लड़े जाने वाले चुनावों से स्पष्ट है कि ये

केवल जाति की राजनीति के माध्यम से जीत को लक्ष्य बना कर चल रहे हैं। निचले और वंचित तबकों को बराबरी पर लाने के उद्देश्य से आरक्षण की व्यवस्था की गई थी, लेकिन पिछले वर्षों में यह व्यवस्था राजनीतिक तुष्टीकरण का जरिया बन गई। आरक्षण की वर्तमान व्यवस्था शुरू से ही विवाद के केंद्र में रही है। विरोध आरक्षण का नहीं है, अपितु आरक्षण की पात्रता को निर्धारित करने वाले मानकों को लेकर के है। आरक्षण जोकि सामाजिक-आर्थिक विषमता वाले समाज में समानता , समरसता और सामाजिक-न्याय की स्थापना हेतु आवशक साधन के रूप में अपनाया गया था , आज सामाजिक विद्वेष की वजह बन चुका है। समकालीन परिस्थितियाँ किसी भी देश की राज्य व्यवस्था को प्रभावित करती हैं। जैसे-जैसे परिस्थितियों में परिवर्तन आता है, वैसे-वैसे देश की राजनीति तथा राज्य-व्यवस्था में भी परिवर्तन आता है। भारत भी इस प्राकृतिक सिद्धान्त से अलग नहीं है और भारत की परिस्थितियों ने भी राजनीति को बहुत प्रभावित किया है। लगातार भारतीय राजनीति तथा राज्यव्यवस्था में नवीन प्रवृत्तियाँ उभर रही हैं।

1-7-सूचक शब्द (Key Words)

I. आरक्षण: सुरक्षित किया हुआ विशेष व्यक्ति हेतु पहले से निर्धारित किया हुआ पद, स्थान, सीट या कक्ष आदि।

II. उभरती प्रवृत्तियाँ: नई विचारधारा का उदय होना, नई सोच का उदय

III. सत्तारूढ़: यह सत्ता और आरूढ़, दो शब्दों का संयुक्त रूप है। यहाँ सत्ता का मतलब है शक्ति या शासन व्यवस्था और आरूढ़ का अर्थ है, आसीन। अर्थात जो वर्तमान में शासन व्यवस्था में आसीन है, उसे सत्तारूढ़ कहते हैं।

1-8-स्वयं समीक्षा हेतु प्रश्न (Self- Assessment Questions)

I. भारतीय राजनीति में उभरती प्रवृत्तियों का वर्णन कीजिए।

II. आरक्षण से क्या अभिप्राय है? इसके पक्ष एवं विपक्ष में तर्क दीजिए।

III. पिछड़े वर्ग की आरक्षण नीति का भारतीय राजनीति पर क्या प्रभाव पड़ा है?

IV. भारतीय संविधान में दलितों के कल्याण एवं आरक्षण सम्बन्धी प्रावधान का वर्णन कीजिए।

1-9-उतर-स्वयं प्रगति जाँच (Answer to check your progress)

I. अनुच्छेद **15 (Article 15)** के अनुसार

II. अनुच्छेद **16** के अनुसार

III. अनुच्छेद **25** के अनुसार

1-10. संदर्भ ग्रन्थ/निर्देशित पुस्तके (References / Suggested Readings)

I. जैन, पुखराज, राजनीति विज्ञान, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।

II. आर.के. जैन, कला जैन, लक्ष्मीकांत त्रिपाठी, राजनीति विज्ञान, आरोही पब्लिकेशन्स, दिल्ली।

III. डॉ. सुरेश कुमार, सोमनाथ वर्मा, डॉ. गुलशन राय, जे. बी. डी प्रिंटिंग प्रेस, जालंधर ।

NOTES

NOTES

NOTES

NOTES